प्राप्ति स्थान :

(१) श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(२) श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४ बापूनगर, पो० जयपुर (राज०)



तृतीयावृत्ति २०००	वीर नि० सं० २५०३	मूल्य ७)५० [प्लास्टिक कव्हर सहित]



मुद्रक :
पाँचूलाल जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)



पू० श्री कानजी स्वामी स्वाध्याय करते हुए

कि इसमें भट्टारकों द्वारा प्रचारित परम्पराके अनुरूप श्रावकाचारका विवेचन प्रमुखरूपसे हुआ है। २८ मूलगुणोंमें जो षडावश्यक कर्म हैं, पूर्वकालमें व्रती श्रावकोंके लिये वे ही षडावश्यक कर्म देशव्रतके रूपमें स्वीकृत थे। उनमें दूसरे कर्मका नाम चतुर्विंशतिस्तव और तीसरा कर्म वन्दना है। वर्त्तमान कालमें जो दर्शन-पूजनविधि प्रचलित है, यह उन्हीं दो आवश्यक कर्मोंका रूपान्तर है। मूलाचारमें वन्दनाके लौकिक और लोकोत्तर ये दो भेद दृष्टिगोचर होते हैं। उनमेंसे लोकोत्तर वन्दनाको कर्मक्षपणाका हेतु बतलाया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक वन्दना मात्र पुण्य बन्धका हेतु है। इन तथ्यों पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि पूर्वकालमें ऐसी ही लौकिक विधि प्रचलित थी जिसका लोकोत्तर विधिके साथ सुमेल था। इस समय उसमें जो विशेष फेरफार दृष्टिगोचर होता है वह भट्टारकीय युगकी देन है। लाटीसंहिताकी रचना वैराटनगरके श्री दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिरमें बैठकर की गई थी। रचनाकाल वि० सं० १६४१ है। इसकी रचना करानेमें साहू फामन और उनके वंशका प्रमुख हाथ रहा है।

४. चौथा ग्रन्थ अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड है। यह भी कविवरकी रचना मानी जाती है। इसकी रचना अन्य किसी व्यक्तिके निमित्तसे न होकर स्वसंवित्तिको प्रकाशित करनेके अभिप्रायसे की गई है। यही कारण है कि इसमें कविवरने न तो किसी व्यक्ति विशेषका उल्लेख किया है और न अपने संबन्धमें ही कुछ लिखा है। इसके स्वाध्यायसे विदित होता है कि इसकी रचनाके काल तक कविवरने अध्यात्ममें पर्याप्त निपुणता प्राप्त कर ली थी। यह इसीसे स्पष्ट है कि वे इसके दूसरे अध्यायका प्रारम्भ करते हुए यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि पुण्य और पापका आस्रव और बन्ध तत्त्वमें अन्तर्भाव होनेके कारण इन दो तत्त्वोंका अलगसे विवेचन नहीं किया है। विषय प्रतिपादनकी दृष्टिसे जो प्रौढ़ता पंचाध्यायीमें दृष्टिगोचर होती है उसकी इसमें एक प्रकारसे न्यूनता ही कही जायेगी। आश्चर्य नहीं कि यह ग्रन्थ अध्यात्मप्रवेशकी पूर्वपीठिकाके रूपमें लिखा गया हो। अस्तु,

५ से ७ जान पड़ता है कि कविवरने पूर्वोक्त चार ग्रन्थोंके सिवाय तत्त्वार्थसूत्र और समयसार कलशकी टीकाएं लिखनेके बाद पंचाध्यायीकी रचना की होगी। समयसार-कलशकी टीकाका परिचय तो हम आगे करानेवाले हैं, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र टीका हमारे देखनेमें नहीं आई, इसलिए वह कितनी अर्थगर्भ है यह लिखना कठिन है। रहा पंचाध्यायी ग्रंथराज सो इसमें संदेह नहीं कि अपने कालकी संस्कृत रचनाओंमें विषय प्रतिपादन और शैली इन दोनों दृष्टियोंसे यह ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसे तो समाजका दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि कविवरके द्वारा ग्रंथके प्रारम्भमें की गई प्रतिज्ञाके अनुसार पांच अध्यायोंमें पूरा किया जाने वाला यह ग्रन्थराज केवल डेढ़ अध्याय मात्र लिखा जा सका। इसे भगवान् कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्रकी रचनाओंका अविकल दोहन कहना अधिक उपयुक्त है। कविवरने इसमें जिस विषयको स्पर्श किया है उसको आत्माको स्वच्छ दर्पणके समान खोलकर रख दिया है। इसमें प्रतिपादित अध्यात्मनयों और सम्यक्त्वकी प्ररूपणामें जो अद्भुत

विशेषता दृष्टिगोचर होती है उसने ग्रन्थराजकी महिमाको अत्यधिक बढ़ा दिया है इसमें संदेह नहीं।

श्री समयसार परमागम

कविवर और उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें इतना लिखनेके बाद समयसारकलश बालबोध टीकाका प्रकृतमें विशेष विचार करना है। यह कविवरकी अध्यात्मरससे ओतप्रोत तत्सम्बन्धी समस्त विषयों पर सांगोपांग तथा विशद प्रकाश डालनेवाली अपने कालकी कितनी सरल, सरस और अनुपम रचना है यह आगे दिये जानेवाले उसके परिचयसे भलीभांति सुस्पष्ट हो जायगा।

इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं कि श्री समयसार परमागम एक ऐसे आत्मज्ञानी महात्मा की वाणीका सुखद प्रसाद है जिनका आत्मा आत्मानुभूति स्वरूप निश्चय सम्यग्दर्शनसे सुवासित था, जो अपने जीवनकालमें ही निरन्तर पुनः पुनः अप्रमत्त भावको प्राप्त कर ध्यान, ध्याता और ध्येयके विकल्प से रहित परम समाधिरूप आत्मीक सुखका रसास्वादन करते रहते थे, जिन्हें अरिहन्त भट्टारक भगवान् महावीरकी वाणीका सारभूत रहस्य गुरु परम्परासे भले प्रकार अवगत था, जिन्होंने अपने वर्तमान जीवनकालमें ही पूर्वमहाविदेहस्थित भगवान् सीमंधर स्वामीके साक्षात् दर्शनके साथ उनकी दिव्यध्वनिको आत्मसात् किया था तथा अप्रमत्त भावसे प्रमत्तभावमें आने पर जिनका शीतल और विवेकी चित्त करुणाभावसे ओतप्रोत होनेके कारण संसारी प्राणियोंके परमार्थ स्वरूप हितसाधनमें निरन्तर सन्नद्ध रहता था। आचार्यवर्य्यने श्रीसमयसार परमागममें अनादि मिथ्यात्वसे प्लावित चित्तवाले मिथ्यादृष्टियोंके गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्वको छुड़ानेके सदभिप्रायवश द्रव्यकर्म, भाव-कर्म और नोकर्मसे भिन्न एकत्वस्वरूप जिस आत्माके दर्शन कराये हैं और उसकी प्राप्तिका मार्ग सुस्पष्ट किया है वह पूरे जैनशासनका सार है। जिसके प्राप्त होने पर सिद्धस्वरूप आत्माकी साक्षात् प्राप्ति है और जिसके न प्राप्त होने पर भवबन्धनको रखड़ना है।

आत्मख्याति वृत्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार साररूप अपूर्व प्रमेयको सुस्पष्ट करनेवाला यह ग्रन्थ-राज है उसी प्रकार इसके हार्दको सरल, भावमयी और सुमधुर किन्तु सुस्पष्ट रचना द्वारा प्रकाशित करनेवाली तथा बुधजनों द्वारा स्मरणीय आचार्यवर्य्य अमृतचन्द्रकी आत्मख्याति वृत्ति है। यदि इसे वृत्ति न कहकर नय विशेषसे श्रीसमयसार परमागमके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला उसका आत्मभूत लक्षण कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रीसमयसार परमागम की यह वृत्ति किस प्रयोजनसे निबद्ध की गई है इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र तीसरे कलशमें स्वयं लिखते हैं कि इस द्वारा शुद्धचिन्मात्र मूर्तिस्वरूप मेरे अनुभवरूप परिणतिको परम विशुद्धि अर्थात् रागादि विभाव परिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता होओ। स्पष्ट है कि उन द्वारा स्वयं आत्मख्याति वृत्तिके विषयमें ऐसा भाव व्यक्त करना उसी तथ्यको सूचित करता है जिसका हम पूर्वमें निर्देश कर आये हैं। वस्तुतः

आत्मख्यातिवृत्तिका प्रतिपाद्य विषय श्री समयसार परमागममें प्रतिपादित रहस्यको सुस्पष्ट करना है। इसलिए श्रीसमयसार परमागम और आत्मख्यातिवृत्तिमें प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध होनेके कारण आत्मख्यातिवृत्ति द्वारा श्रीसमयसार परमागमका आत्मा ही सुस्पष्ट किया गया है। इसलिये नय विशेषसे इसे श्रीसमयसार परमागमका आत्मभूत लक्षण कहना उचित ही है। इसकी रचनाकी अपनी मौलिक विशेषता है। जहां यह श्रीसमयसार-परमागमकी प्रत्येक गाथाके गूढ़तम अध्यात्म विषयको एकलोलीभावसे आत्मसात् करने में दक्ष है वहां यह बीच बीचमें प्रतिपादित श्री जिन-मन्दिरके कलशस्वरूप कलशोंद्वारा विषयको साररूपमें प्रस्तुत करनेकी क्षमता रखती है। कलश-काव्योंकी रचना आसन्न भव्य जीवोंके हृदयरूपी कुमुदको विकसित करनेवाली चन्द्रिकाके समान इसी मनोहारिणी शैलीका सुपरिणाम है। यह अमृतका निर्भर है और इसे निर्भरित करनेवाले चन्द्रोपम आचार्य अमृतचन्द्र हैं। लोकमें जो अमरता प्रदान करनेवाले अमृतकी प्रसिद्धि है, जान पड़ता है कि अमृतके निर्भर स्वरूप इस आत्मख्यातिवृत्तिसे प्राप्त होनेवाली अमरताको दृष्टिमें रखकर ही उक्त ख्यातिने लोकमें प्रसिद्धि पाई है। धन्य हैं वे भगवान् कुन्दकुन्द, जिन्होंने समग्र परमागमका दोहन कर श्रीसमयसार परमागम द्वारा पूरे जिनशासनका दर्शन कराया; और धन्य हैं वे आचार्य अमृतचन्द्र, जिन्होंने आत्मख्यातिवृत्तिकी रचना कर पूरे जिनशासनके दर्शन करानेमें अपूर्व योगदान प्रदान किया।

समयसारकलश बालबोध टीका—

ऐसे हैं ये दोनों श्री समयसार परमागम और उसके हार्दको सुस्पष्ट करनेवाली आत्मख्याति-वृत्ति। यह अपूर्व योग है कि कविवर राजमल्लजीने परोपदेशपूर्वक या तदनुरूप पूर्व संस्कारवश निसर्गतः उनके हार्दको हृदयंगम करके अपने जीवनकालमें प्राप्त विद्वत्ताका सदुपयोग साररूपसे निबद्ध कलशोंकी बालबोध टीकाको लिपिबद्ध करनेमें किया। यह टीका मोक्षमार्गके अनुरूप अपने स्वरूपको स्वयं प्रकाशित करती है, इसलिए तो प्रमाण है ही। साथ ही वह जिनागम, गुरु-उपदेश, युक्ति और स्वानुभव प्रत्यक्षको प्रमाण कर लिखी गई है, इसलिए भी प्रमाण है; क्योंकि जो स्वरूपसे प्रमाण न हो उसमें परतः प्रमाणता नहीं आती ऐसा न्याय है। यद्यपि यह ढूंढारी भाषामें लिखी गई है, फिर भी गद्यकाव्य सम्बन्धी शैली और पदलालित्य आदि सब विशेषताओंसे ओत-प्रोत होनेके कारण वह भव्यजनोंके चित्तको आह्लाद उत्पन्न करनेमें समर्थ है। वस्तुतः इसकी रचनाशैली और पदलालित्य अपनी विशेषता है।

इसकी रचनामें कविवर सर्व प्रथम कलशगत अनेक पदोंके समुदायरूप वाक्यको स्वीकार कर आगे उसके प्रत्येक पदका या पदगत शब्दका अर्थ स्पष्ट करते हुए उसका मथितार्थ क्या है यह लिपि-बद्ध करनेके अभिप्रायसे 'भावार्थ इस्यो' यह लिखकर उस वाक्यमें निहित रहस्यको स्पष्ट करते हैं। टीकामें यह पद्धति प्रायः सर्वत्र अपनाई गई है। यथा—

है कि सर्वज्ञ वीतराग और दिव्यध्वनि इन दोनोंके मध्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। दिव्यध्वनिकी प्रमाणिकता भी इसी कारण व्यवहार पदवीको प्राप्त होती है। स्वतःसिद्ध इसी भावको व्यक्त करने-वाला कविवर दौलतरामजीका यह वचन ज्ञातव्य है—

भविभागनि वचिजोगे वशाय।

तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय॥

जिनवचसि रमन्ते (क० ४)—इस पदका भाव स्पष्ट करते हुए कविवरने जो कुछ अपूर्व अर्थका उद्घाटन किया है वह हृदयंगम करने योग्य है। वे लिखते हैं—

'वचन पुद्गल है उसकी रुचि करने पर स्वरूपकी प्राप्ति नहीं। इसलिये वचनके द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु उसका अनुभव करने पर फल प्राप्ति है।'

कविवरने 'जिनवचसि रमन्ते' पदका यह अर्थ उसी कलशके उत्तरार्द्धको दृष्टिमें रखकर किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दोनों नयोंके विषयको जानना एक बात है और जानकर निश्चय नयके विषयभूत शुद्ध वस्तुका आश्रय लेकर उसमें रममाण होना दूसरी बात है। कविवरने उक्त शब्दों द्वारा इसी आशयको अभिव्यक्त किया है।

प्राक्पदव्यां (क० ५)—अर्वाचीनपदव्यां[1]—व्यवहारपदव्यां[2]। ज्ञानी जीवकी दो अवस्थाएँ होती हैं—सविकल्प दशा और निर्विकल्प दशा। प्रकृतमें 'प्राक्पदवी' पदका अर्थ 'सविकल्प दशा' है। इस द्वारा यह अर्थ स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि सविकल्प दशामें व्यवहारनय हस्तावलम्ब है, परन्तु अनुभूति अवस्थामें (निर्विकल्प दशामें) उसका कोई प्रयोजन नहीं। इसी भावको कविवर इन शब्दोंमें स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

'जो कोई सहजरूपसे, अज्ञानी (मन्दज्ञानी) हैं, जीवादि पदार्थोंका द्रव्य-गुण पर्याय स्वरूप जाननेके अभिलाषी हैं, उनके लिये गुण-गुणी भेदरूप कथन योग्य है।'

नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति (क० ७)—जीववस्तु नौ तत्त्वरूप होकर भी अपने एकत्वका त्याग नहीं करती इस तथ्यको समझानेका कविवरका दृष्टिकोण अनूठा है। उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये—

'जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है, वह काष्ठ, तृण, कण्डा आदि समस्त दाह्यको दहती है, दहती हुई अग्नि दाह्याकार होती है, पर उसका विचार है कि जो उसे काष्ठ, तृण और कण्डेकी आकृतिमें देखा जाये तो काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसा कहना साँचा ही है। और जो अग्निकी उष्णतामात्र विचारा जाये तो उष्णमात्र है। काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसे समस्त विकल्प झूठे हैं। उसी प्रकार नौ तत्त्वरूप जीवके परिणाम हैं। वे

---

१. पद्मनन्दीपंचविंशतिका एकत्वसप्तति अधिकार श्लोक १६। २. उसकी टीका।

परिणाम कितने ही शुद्धरूप हैं, कितने ही अशुद्धरूप हैं। जो नौ परिणाममें ही देखा जाये तो नौ ही तत्त्व सांचे हैं और जो चेतनामात्र अनुभव किया जाये तो नौ ही विकल्प झूठे हैं।'

इसी तथ्यको कलश ८ में स्वर्ण और वानभेदको दृष्टान्तरूपमें प्रस्तुत कर कविवरने और भी आलङ्कारिक भाषा द्वारा समझाया है। यथा—

'स्वर्णमात्र न देखा जाये, वानभेदमात्र देखा जाय तो वानभेद है; स्वर्णकी शक्ति ऐसी भी है। जो वानभेद न देखा जाय, केवल स्वर्णमात्र देखा जाय तो वानभेद झूठा है। इसी प्रकार जो शुद्ध जीव वस्तुमात्र न देखी जाय, गुण-पर्यायमात्र या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमात्र देखा जाय तो गुण-पर्याय हैं तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; जीव वस्तु ऐसो भी है। जो गुण-पर्याय भेद या उत्पाद व्यय-ध्रौव्य भेद न देखा जाय, वस्तुमात्र देखी जाय तो समस्त भेद झूठा है ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।'

उदयति न नयश्रीः (क० ९)—अनुभव क्या है और अनुभवके कालमें जीवकी कैसी अवस्था होती है उसे स्पष्ट करते हुए कविने जो वचन प्रयोग किया है वह अद्भुत है। रसास्वाद कीजिये—

'अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य-वेदकभावसे आस्वादरूप है और वह अनुभव परसहायसे निरपेक्ष है। ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष है तथापि सम्यक्त्वके साथ अविना-भूत है, क्योंकि यह सम्यग्दृष्टिके होता है, मिथ्यादृष्टिके नहीं होता है ऐसा निश्चय है। ऐसा अनुभव होने पर जीववस्तु अपने शुद्धस्वरूपको प्रत्यक्षरूपसे आस्वादती है, इसलिये जितने कालतक अनुभव होता है उतने कालतक वचन व्यवहार सहज ही बन्द रहता है।'

इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए वे आगे पुन: लिखते हैं—

'जो अनुभवके आने पर प्रमाण-नय-निक्षेप ही झूठा है। वहां रागादि विकल्पोंकी क्या कथा। भावार्थ इस प्रकार है—जो रागादि तो झूठा ही है, जीवस्वरूपसे बाह्य है। प्रमाण-नय-निक्षेपरूप बुद्धिके द्वारा एक ही जीवद्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप भेद किया जाता है, वे समस्त झूठे हैं। इन सबके झूठे होने पर जो कुछ वस्तुका स्वाद है सो अनुभव है।'

इसी तथ्यको कलश १० की टीकामें इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

'समस्त संकल्प-विकल्पसे रहित वस्तुस्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है।'

रागादि परिणाम अथवा सुख-दुःख परिणाम स्वभाव परिणतिसे बाह्य कैसे हैं इसका ज्ञान कराते हुए कलश ११ की टीकामें कविवर कहते हैं—

'यहां पर कोई प्रश्न करता है कि जीवको तो शुद्धस्वरूप कहा और वह ऐसा ही है, परन्तु राग-द्वेष-मोहरूप परिणामोंको अथवा सुख-दुःख आदिरूप परिणामोंको कौन करता है, कौन भोगता

है ? उत्तर इस प्रकार है कि इन परिणामोंको करे तो कौन करता है और भोगे तो कौन भोगता है। परन्तु यह परिणति विभावरूप है, उपाधिरूप है। इस कारण निजस्वरूप विचारनेपर जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा कहा जाता है।'

शुद्धात्मानुभव किसे कहते हैं इसका स्पष्टीकरण कलश १३ की टीकामें पढ़िये—

'निरुपाधिरूपसे जीव द्रव्य जैसा है वैसा ही प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आवे इसका नाम शुद्धात्मानुभव है।'

द्वादशाङ्गज्ञान और शुद्धात्मानुभवमें क्या अन्तर है इसका जिस सुन्दर शब्दोंमें कविवरने कलश १४ की टीकामें स्पष्टीकरण किया है वह जानने योग्य है—

'इस प्रसङ्गमें और भी संशय होता है कि द्वादशाङ्गज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशाङ्गज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है, इसलिये शुद्धात्मानुभूतिके होनेपर शास्त्र पढ़नेकी कुछ अटक नहीं है।'

मोक्ष जानेमें द्रव्यान्तरका सहारा क्यों नहीं है इसका स्पष्टीकरण कविवरने कलश १५ की टीकामें इन शब्दोंमें किया है—

'एक ही जीव द्रव्य कारणरूप भी अपनेमें ही परिणमता है और कार्यरूप भी अपनेमें परिणमता है। इस कारण मोक्ष जानेमें किसी द्रव्यान्तरका सहारा नहीं है, इसलिये शुद्ध आत्माका अनुभव करना चाहिये।'

शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है मात्र ऐसा जानना कार्यकारी नहीं। तो क्या है इसका स्पष्टीकरण कलश २३ की टीकामें पढ़िये—

'शरीर तो अचेतन है, विनश्वर है। शरीरसे भिन्न कोई तो पुरुष है ऐसा जानपना ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवके भी होती है पर साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं। जब जीव द्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप प्रत्यक्ष आस्वाद आता है तब सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र है, सकल कर्मक्षय मोक्ष लक्षण भी है।'

जो शरीर सुख-दुःख रागद्वेष-मोहकी त्यागबुद्धिको कारण और चिद्रूप आत्मानुभवको कार्य मानते हैं उनको समझाते हुए कविवर क० २६ में क्या कहते हैं यह उन्हींके समर्पक शब्दोंमें पढ़िये—

'कोई जानेगा कि जितना भी शरीर, सुख, दुख, राग, द्वेष, मोह है उसकी त्यागबुद्धि कुछ अन्य है—कारणरूप है। तथा शुद्ध चिद्रूपमात्रका अनुभव कुछ अन्य है—कार्यरूप है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि राग, द्वेष, मोह, शरीर, सुख, दुःख आदि विभाव पर्यायरूप परिणति हुए जीवका जिस कालमें ऐसा अशुद्ध परिणामरूप संस्कार छूट जाता है उसी कालमें इसके अनुभव है। उसका विवरण

—जो शुद्धचेतनामात्रका आस्वाद आये बिना अशुद्ध भावरूप परिणाम छूटता नहीं और अशुद्ध संस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूपका अनुभव होता नहीं। इसलिए जो कुछ है सो एक ही काल, एक ही वस्तु, एक ही ज्ञान, एक ही स्वाद है।'

जो समझते हैं कि जैनसिद्धान्तका बारबार अभ्यास करनेसे जो दृढ़ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है। कविवर उनकी इस धारणाको कलश ३० में ठीक न बतलाते हुए लिखते हैं—

'कोई जानेगा कि जैनसिद्धान्तका बारबार अभ्यास करनेसे दृढ़ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है सो ऐसा नहीं है। मिथ्यात्वकर्मका रसपाक मिटने पर मिथ्यात्वभावरूप परिणमन मिटता है तो वस्तुस्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है।'

विधि प्रतिषेधरूपसे जीवका स्वरूप क्या है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ३३ की टीकामें बतलाया है—

'शुद्ध जीव है, टंकोत्कीर्ण है, चिद्रूप है ऐसा कहना विधि कही जाती है। जीवका स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीवके नहीं, भावकर्म जीवका नहीं ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है।'

हेय-उपादेयका ज्ञान कराते हुए कलश ३६ की टीकामें कहा है—

'जितनी कुछ कर्मजाति है वह समस्त हेय है। उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं है।

इसलिये क्या कर्त्तव्य है इस बातको स्पष्ट करते हुए उसीमें बतलाया है—

'जितने भी विभाव परिणाम हैं वे सब जीवके नहीं हैं। शुद्ध चैतन्यमात्र जीव है ऐसा अनुभव कर्त्तव्य है।'

कलश ३७ की टीकामें इसी तथ्यको पुनः स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'वर्णादिक और रागादि विद्यमान दिखलाई पड़ते हैं। तथापि स्वरूप अनुभवने पर स्वरूप-मात्र है, विभाव-परिणतिरूप वस्तु तो कुछ नहीं।'

कर्मबन्ध पर्यायसे जीव कैसे भिन्न है इसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कलश ४४ की टीकामें कहा है—

'जिस प्रकार पानी कीचड़के मिलने पर मैला है। सो वह मैलापन रङ्ग है, सो रंगको अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है सो पानी है। उसी प्रकार जीवकी कर्मबन्ध पर्यायरूप अवस्थामें रागादिभाव रंग है, सो रंगको अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है सो चेतन धातुमात्र वस्तु है। इसीका नाम शुद्ध-स्वरूप अनुभव जानना जो सम्यग्दृष्टिके होता है।'

इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए कलश ४५ की टीकामें लिखा है—

'जिस प्रकार स्वर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं। तथापि अग्निका संयोग जब हो पाते हैं तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जीव और कर्मका

है ? उत्तर इस प्रकार है कि इन परिणामों को करे तो जीव करता है और जीव भोगता है। परन्तु यह परिणति विभावरूप है, उपाधिरूप है। इस कारण निजस्वरूप विचारने पर यह जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा कहा जाता है।'

शुद्धात्मानुभव किसे कहते हैं इसका स्पष्टीकरण कलश १३ की टीकामें पढ़िये—

'निरुपाधिरूपसे जीव द्रव्य जैसा है वैसा ही प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आवे इसका नाम शुद्धात्मानुभव है।'

द्वादशाङ्गज्ञान और शुद्धात्मानुभवमें क्या अन्तर है इसका जिन सुन्दर शब्दोंमें कविवरने कलश १४ की टीकामें स्पष्टीकरण किया है वह ज्ञातव्य है—

'इस प्रसङ्गमें और भी संशय होता है कि द्वादशाङ्गज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशाङ्गज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है, इसलिये शुद्धात्मानुभूतिके होनेपर शास्त्र पढ़नेकी कुछ अटक नहीं है।'

मोक्ष जानेमें द्रव्यान्तरका सहारा क्यों नहीं है इसका स्पष्टीकरण कविवरने कलश १५ की टीकामें इन शब्दोंमें किया है—

'एक ही जीव द्रव्य कारणरूप भी अपनेमें ही परिणमता है और कार्यरूप भी अपनेमें परिणमता है। इस कारण मोक्ष जानेमें किसी द्रव्यान्तरका सहारा नहीं है, इसलिये शुद्ध आत्माका अनुभव करना चाहिये।'

शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है मात्र ऐसा जानना कार्यकारी नहीं। तो क्या है इसका स्पष्टीकरण कलश २३ की टीकामें पढ़िये—

'शरीर तो अचेतन है, विनश्वर है। शरीरसे भिन्न कोई तो पुरुष है ऐसा जानपना ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवके भी होती है पर साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं। जब जीव द्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप प्रत्यक्ष आस्वाद आता है तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, सकल कर्मक्षय मोक्ष लक्षण भी है।'

जो शरीर सुख-दुःख रागद्वेष-मोहकी त्यागबुद्धिको कारण और चिद्रूप आत्मानुभवको कार्य मानते हैं उनको समझाते हुए कविवर क० २९ में क्या कहते हैं यह उन्हींके समर्पक शब्दोंमें पढ़िये—

'कोई जानेगा कि जितना भी शरीर, सुख, दुख, राग, द्वेष, मोह है उसकी त्यागबुद्धि कुछ अन्य है—कारणरूप है। तथा शुद्ध चिद्रूपमात्रका अनुभव कुछ अन्य है—कार्यरूप है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि राग, द्वेष, मोह, शरीर, सुख, दुःख आदि विभाव पर्यायरूप परिणति हुए जीवका जिस कालमें ऐसा अशुद्ध परिणामरूप संस्कार छूट जाता है उसी कालमें इसके अनुभव है। उसका विवरण

—जो शुद्धचेतनामात्रका आस्वाद आये विना अशुद्ध भावरूप परिणाम छूटता नहीं और अशुद्ध संस्कार छूटे विना शुद्ध स्वरूपका अनुभव होता नहीं। इसलिए जो कुछ है सो एक ही काल, एक ही वस्तु, एक ही ज्ञान, एक ही स्वाद है।'

जो समझते हैं कि जैनसिद्धान्तका वारवार अभ्यास करनेसे जो दृढ़ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है। कविवर उनकी इस धारणाको कलश ३० में ठीक न वतलाते हुए लिखते हैं—

'कोई जानेगा कि जैनसिद्धान्तका वारवार अभ्यास करनेसे दृढ़ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है सो ऐसा नहीं है। मिथ्यात्वकर्मका रसपाक मिटने पर मिथ्यात्वभावरूप परिणमन मिटता है तो वस्तुस्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है।'

विधि प्रतिषेधरूपसे जीवका स्वरूप क्या है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ३३ की टीकामें वतलाया है—

'शुद्ध जीव है, टंकोत्कीर्ण है, चिद्रूप है ऐसा कहना विधि कही जाती है। जीवका स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीवके नहीं, भावकर्म जीवका नहीं ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है।'

हेय-उपादेयका ज्ञान कराते हुए कलश ३६ की टीकामें कहा है—

'जितनी कुछ कर्मजाति है वह समस्त हेय है। उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं है।

इसलिये क्या कर्त्तव्य है इस वातको स्पष्ट करते हुए उसीमें वतलाया है—

'जितने भी विभाव परिणाम हैं वे सव जीवके नहीं हैं। शुद्ध चैतन्यमात्र जीव है ऐसा अनुभव कर्त्तव्य है।'

कलश ३७ की टीकामें इसी तथ्यको पुनः स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'वर्णादिक और रागादि विद्यमान दिखलाई पड़ते हैं। तथापि स्वरूप अनुभवने पर स्वरूप-मात्र है, विभाव-परिणतिरूप वस्तु तो कुछ नहीं।'

कर्मवन्ध पर्यायसे जीव कैसे भिन्न है इसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कलश ४४ की टीकामें कहा है—

'जिस प्रकार पानी कीचड़के मिलने पर मैला है। सो वह मैलापन रङ्ग है, सो रंगको अंगीकार न कर वाकी जो कुछ है सो पानी है। उसी प्रकार जीवकी कर्मवन्ध पर्यायरूप अवस्थामें रागादिभाव रंग है, सो रंगको अंगीकार न कर वाकी जो कुछ है सो चेतन धातुमात्र वस्तु है। इसीका नाम शुद्ध-स्वरूप अनुभव जानना जो सम्यग्दृष्टिके होता है।'

इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए कलश ४५ की टीकामें लिखा है—

'जिस प्रकार स्वर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं। तथापि अग्निका संयोग जव हो पाते हैं तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जीव और कर्मका

संयोग अनादिसे चला आ रहा है और जीव कर्म भिन्न-भिन्न हैं। तथापि शुद्धस्वरूप अनुभव विना [illegible] से भिन्न-भिन्न होते नहीं, जिस काल शुद्धस्वरूप अनुभव होता है उस काल भिन्न-भिन्न होते हैं।'

विपरीत बुद्धि और कर्मबन्ध मिटनेके उपायका निर्देश करते हुए कलश ४७ की टीकामें लिखा है—

'जैसे सूर्यका प्रकाश होने पर अंधकारको अवसर नहीं, वैसे शुद्धस्वरूप अनुभव होने पर विपरीतरूप मिथ्यात्व बुद्धिका प्रवेश नहीं। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध ज्ञानका अनुभव होने पर विपरीत बुद्धिमात्र मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है? उत्तर इस प्रकार है कि विपरीत बुद्धि मिटती है, कर्मबन्ध भी मिटता है।'

कर्ता-कर्मका विचार करते हुए कलश ४९ की टीकामें लिखा है—

'जैसे उपचारमात्रसे द्रव्य अपने परिणाममात्रका कर्त्ता है, वही परिणाम द्रव्यका किया हुआ है वैसे [illegible] कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्रसे भी नहीं है, क्योंकि एकसत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व हैं।'

[illegible] और कर्मका परस्पर क्या सम्बन्ध है इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए कलश ५० की टीकामें [illegible]

[illegible] है, पुद्गलकर्म ज्ञेय है ऐसा जीवको कर्मको ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, तथापि [illegible] नहीं है, क्योंकि अत्यन्त भिन्नपना है, एकपना नहीं है।'

[illegible] ज्ञान कराते हुए कलश ५१ की टीकामें पुनः लिखा है—

[illegible] तो इस प्रकार है, इसलिये ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्मका [illegible] कहा है, क्योंकि जीवद्रव्यका और पुद्गलकर्मका एक सत्त्व नहीं; कर्ता- [illegible]

[illegible] ५२-५३ में पुनः स्पष्ट किया है—

[illegible] पुद्गलपिण्ड कर्मका कर्ता जीववस्तु है ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, [illegible] उपचारसे कहा जाता है। भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गल- [illegible]

[illegible] भिन्न स्वभाव है सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर एक सत्तारूप [illegible] हो। सो तो एकरूप होते नहीं, इसलिये जीव-पुद्गलका [illegible]

[illegible] कलश ५८ की टीकामें लिखा है—

[illegible] उछलता है और उछलनेका कर्ता न [illegible] कर्म संयोगसे विभावरूप परिणमता है, इसलिये

विभावपनेका कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञानसे, स्वभाव तो नहीं।'

जीव अपने परिणामका कर्ता क्यों है और पुद्गल कर्मका कर्ता क्यों नहीं इसका स्पष्टीकरण कलश ६१ की टीकामें इस प्रकार किया है—

'जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिये जिस कालमें जिस चेतनारूप परिणमता है उस कालमें उसी चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, इसलिये उस कालमें उसी चेतनाका कर्ता है। तो भी पुद्गल पिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है। इसलिये उसका कर्ता नहीं है।'

जीवके रागादिभाव और कर्म परिणाममें निमित्त-नैमित्तिकभाव क्यों है, कर्ता-कर्मपना क्यों नहीं इसका स्पष्टीकरण कलश ६८ की टीकामें इसप्रकार किया है—

'जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है, जैसे कुम्भकारका परिणाम उसका बाह्य निमित्त कारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य-व्यापकरूप है। तथापि जीवका अशुद्धचेतनारूप मोह, राग, द्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्त कारण है, व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है।'

वस्तुमात्रका अनुभवशीली जीव परम सुखी कैसे है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ६९ की टीकामें कहा है—

'जो एक सत्त्वरूप वस्तु है, उसका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप विचार करनेपर विकल्प होता है, उस विकल्पके होनेपर मन आकुल होता है, आकुलता दुःख है, इसलिये वस्तुमात्रके अनुभवने पर विकल्प मिटता है, विकल्पके मिटनेपर आकुलता मिटती है, आकुलताके मिटनेपर दुःख मिटता है, इससे अनुभवशीली जीव परम सुखी है।'

स्वभाव और कर्मोपाधिमें अन्तरको दिखलाते हुए कलश ९१ की टीकामें लिखा है—

'जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अंधकार फट जाता है उसीप्रकार शुद्ध चैतन्यमात्रका अनुभव होनेपर यावत् समस्त विकल्प मिटते हैं। ऐसी शुद्ध चैतन्यवस्तु है सो मेरा स्वभाव, अन्य समस्त कर्मकी उपाधि है।'

नय विकल्पके मिटनेके उपायका निर्देश करते हुए कलश ९२-९३ की टीकामें लिखा है—

'शुद्ध स्वरूपका अनुभव होनेपर जिसप्रकार नयविकल्प मिटते हैं उसीप्रकार समस्त कर्मके उदय से होनेवाले जितने भाव हैं वे भी अवश्य मिटते हैं ऐसा स्वभाव है।'

'जितना नय है उतना श्रुतज्ञानरूप है, श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है, इसलिये श्रुतज्ञान विना जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभवता है।'

जीव अज्ञान भावका कब कर्ता है और कब अकर्ता है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश ६५ की टीकामें लिखा है—

'कोई ऐसा मानेगा कि जीव द्रव्य सदा ही अकर्ता है उसके प्रति ऐसा समाधान कि जितने काल तक जीवका सम्यक्त्व गुण प्रगट नहीं होता उतने कालतक जीव मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि हो तो अशुद्ध परिणामका कर्ता होता है। सो जब सम्यक्त्व गुण प्रगट होता है तब अशुद्ध परिणाम मिटता है, तब अशुद्ध परिणामका कर्ता नहीं होता।'

अशुभ कर्म बुरा और शुभ कर्म भला ऐसी मान्यता अज्ञानका फल है इसका स्पष्टीकरण करते हुए १०० की टीकामें लिखा है—

'जैसे अशुभकर्म जीवको दुःख करता है उसी प्रकार शुभकर्म भी जीवको दुःख करता है। कर्ममें तो भला कोई नहीं है। अपने मोहको लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मको भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूपका अनुभव हुआ तबसे पाई जाती है।'

शुभोपयोग भला, उससे क्रमसे कर्म निर्जरा होकर मोक्ष प्राप्ति होती है यह मान्यता कैसे झूठी है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश १०१ की टीकामें लिखा है—

'कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रियामें मग्न होता हुआ शुद्धोपयोगको नहीं जानता, केवल यतिक्रियामात्र मग्न है। वह जीव ऐसा जानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर विषय कषाय सामग्रीको छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है। सो विचार करनेपर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है। कर्मबन्धको करता है, कांई भलापन तो नहीं है।'

क्रिया संस्कार छूटनेपर ही शुद्धस्वरूपका अनुभव संभव है इसका स्पष्टीकरण कलश १०४ की टीकामें इसप्रकार किया है—

शुभ-अशुभ क्रियामें मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुःखी है। क्रिया संस्कार छूटकर शुद्धस्वरूपका अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है।'

कैसा अनुभव होनेपर मोक्ष होता है इसका स्पष्टीकरण कलश १०५ की टीकामें इसप्रकार किया है—

'जीवका स्वरूप सदा कर्मसे मुक्त है। उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नहीं।'

स्वरूपाचरण चारित्र क्या है इसका स्पष्टीकरण कलश १०६ की टीकामें इस प्रकार किया है—

'कोई जानेगा कि स्वरूपाचरण चारित्र ऐसा कहा जाता है जो आत्माके शुद्ध स्वरूपको विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्ररूपसे मग्न होकर अनुभवे। सो ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध

होता है, क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरण चारित्र नहीं है। तो स्वरूपाचरण चारित्र कैसा है? जिस प्रकार पन्ना (सुवर्ण पत्र) पकानेसे सुवर्णमेंकी कालिमा जाती है, सुवर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार जीव द्रव्यके अनादिसे अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम था, वह जाता है, शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्ध चेतना-रूप जीव द्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहा जाता है, ऐसा मोक्षमार्ग है।'

शुभ-अशुभ क्रिया आदि बन्धका कारण है इसका निर्देश करते हुए कलश १०७ की टीकामें लिखा है—

'जो शुभ-अशुभ क्रिया, सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प बहि:जल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है वह सब कर्मका उदयरूप परिणमन है, जीवका शुद्ध परिणमन नहीं है, इसलिए समस्त ही आचरण मोक्षका कारण नहीं है, बन्धका कारण है।'

विषय-कषायके समान व्यवहार चारित्र दुष्ट है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश १०८ में लिखा है—

'यहां कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करने योग्य नहीं है उसी प्रकार वर्जन करने योग्य भी नहीं है? उत्तर इस प्रकार है—वर्जन करने योग्य है। कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है।'

(कलश १०९) ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहनेका कारण—

'कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनका मिला हुआ है, यहाँ ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यों कहा? उसका समाधान ऐसा है—शुद्धस्वरूप ज्ञानमें सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं, इसलिए दोष तो कुछ नहीं, गुण है।'

(कलश ११०) मिथ्यादृष्टिके समान सम्यग्दृष्टिका शुभ क्रियारूप यतिपना भी मोक्षका कारण नहीं है इसका खुलासा—

'यहां कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टिका यतिपना क्रियारूप है सो बन्धका कारण है, सम्यग्दृष्टिका है जो यतिपना शुभ क्रियारूप सो मोक्षका कारण है। कारण कि अनुभव ज्ञान तथा दया व्रत तप संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्मका क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं। वहां समाधान ऐसा—जितनी शुभ-अशुभ क्रिया, बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्योंका विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूपका विचार इत्यादि समस्त कर्म बन्धका कारण है। ऐसी क्रियाका ऐसा ही स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिका ऐसा भेद तो कुछ नहीं। ऐसी करतूतिसे ऐसा बन्ध है। शुद्धस्वरूप परिणमनमात्रसे मोक्ष है। यद्यपि एक ही कालमें सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान भी है, क्रियारूप परिणाम भी है। तथापि क्रियारूप है जो परिणाम उससे अकेला बन्ध होता है, कर्मका क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप, सहारा

किसका। उसी समय शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्ञान भी है। [illegible] होता है, पर अंशमात्र भी बन्ध नहीं होता है। वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है।'

(कलश ११२) समस्त क्रियामें ममत्वके त्यागके उपदेशका कथन—

'जितनी क्रिया है वह सब मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा जान समस्त क्रियामें ममत्वका त्यागकर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।'

(कलश ११४) स्वभावप्राप्ति और विभावत्यागका एक ही काल है—

'जिस काल शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति होती है उसी काल मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप जीवका परिणाम मिटता है, इसलिए एक ही काल है, समयका अन्तर नहीं है।'

(कलश ११५) सम्यग्दृष्टि जीवके द्रव्यास्रव और भावास्रवसे रहित होनेके कारणका निर्देश—

'आस्रव दो प्रकारका है। विवरण—एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहने पर कर्मरूप बैठे हैं आत्माके प्रदेशोंमें पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रवसे जीव स्वभाव ही से रहित है। यद्यपि जीवके प्रदेश, कर्मपुद्गलपिण्डके प्रदेश एक ही क्षेत्रमें रहते हैं तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं, अपने अपने द्रव्य-गुण पर्यायरूप रहते हैं इसलिए पुद्गलपिण्डसे जीव भिन्न है। भावास्रव कहनेपर मोह, राग, द्वेषरूप विभाव अशुद्ध चेतन परिणाम सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीवके मिथ्यादृष्टि अवस्थामें विद्यमान ही था तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर अशुद्ध परिणाम मिटा। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रवसे रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है।'

(कलश ११६) सम्यग्दृष्टि कर्मबन्धका कर्ता क्यों नहीं इसका निर्देश—

'कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके चारित्रमोहका उदय तो है, वह उदयमात्र होने पर आगामी ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध होता होगा ? समाधान इस प्रकार है—चारित्रमोहका उदयमात्र होने पर बन्ध नहीं है। उदयके होने पर जो जीवके राग, द्वेष, मोह परिणाम हो तो कर्मबन्ध होता है, अन्यथा सहस्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नहीं होता। राग, द्वेष, मोह परिणाम भी मिथ्यात्व कर्मके उदयके सहारा है, मिथ्यात्वके जाने पर अकेले चारित्रमोहके उदयके सहाराका राग, द्वेष, मोह परिणाम नहीं है। इस कारण सम्यग्दृष्टिके राग, द्वेष, मोह परिणाम होता नहीं, इसलिए कर्मबन्धका कर्त्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता।'

(कलश १२१) सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं है इसका तात्पर्य—

'जब जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तब चारित्रमोहके उदयमें बन्ध होता है, परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए बन्ध नहीं कहलाता।'

(कलश १२४) निर्विकल्पका अर्थ काष्ठके समान जड़ नहीं इस तथ्यका खुलासा—

'शुद्धस्वरूपके अनुभवके काल जीव काष्ठके समान जड़ है ऐसा भी नहीं है, सामान्यतया सविकल्पी जीवके समान विकल्पी भी नहीं है, भावश्रुतज्ञानके द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्रको अवलम्बता है, अवश्य अवलम्बता है ।'

(कलश १२५) शुद्धज्ञानमें जीतपना कैसे घटता है—

'आस्रव तथा संवर परस्पर अति ही वैरी हैं, इसलिए अनन्त कालसे लेकर सर्व जीवराशि विभाव मिथ्यात्वरूप परिणमता है, इस कारण शुद्ध ज्ञानका प्रकाश नहीं है । इसलिए आस्रवके सहारे सर्व जीव हैं । काललब्धि पाकर कोई आसन्न भव्य जीव सम्यक्त्वरूप स्वभाव परिणति परिणमता है, इससे शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है, इससे कर्मका आस्रव मिटता है, इससे शुद्ध ज्ञानका जीतपना घटित होता है ।'

(कलश १३०) भेदज्ञान भी विकल्प है इसका सकारण निर्देश—

'निरन्तर शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर्त्तव्य है । जिस काल सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष होगा उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे । वहां भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है, केवलज्ञानके समान जीवका शुद्ध स्वरूप नहीं है, इसलिए सहज ही विनाशीक है ।'

(कलश १३३) निर्जराका स्वरूप—

'संवरपूर्वक जो निर्जरा सो निर्जरा, क्योंकि जो संवरके विना होती है सब जीवों को उदय देकर कर्मकी निर्जरा सो निर्जरा नहीं है ।'

(कलश १३६) हेयोपादेय विचार—

शुद्ध चिद्रूप उपादेय, अन्य समस्त हेय ।

(कलश १४१) विकल्प का कारण—

'कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञानकी पर्याय है वे समस्त अशुद्धरूप हैं सो ऐसा तो नहीं, कारण कि जिस प्रकार ज्ञान शुद्ध है उसी प्रकार ज्ञानकी पर्याय वस्तुका स्वरूप है, इसलिए शुद्धस्वरूप है । परन्तु एक विशेष—पर्यायमात्रका अवधारण करने पर विकल्प उत्पन्न होता है, अनुभव निर्विकल्प है, इसलिये वस्तुमात्र अनुभवने पर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है, इसलिए ज्ञानमात्र अनुभव योग्य है ।

(कलश १४४) अनुभव ही चिन्तामणि रत्न है—

'जिस प्रकार किसी पुण्यवान् जीवके हाथमें चिंतामणि रत्न होता है, उससे सब मनोरथ पूरा होता है, वह जीव लोहा, तांबा, रूपा ऐसी धातुका संग्रह करता नहीं उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके पास शुद्ध स्वरूप अनुभव ऐसा चिन्तामणि रत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है । परमात्मपद-की प्राप्ति होती है । अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होती है । वह सम्यग्दृष्टि जीव शुभ अशुभरूप अनेक क्रियाविकल्पका संग्रह करता नहीं, कारण कि इनसे कार्यसिद्धि होती नहीं ।'

(कलश १५३) सम्यग्दृष्टिके दृष्टान्त [illegible]

'जिस प्रकार किसीको रोग, शोक, दारिद्र बिना ही वांछाके होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके जो कोई क्रिया होती है सो बिना ही वांछा के होती है।'

(कलश १६३) कर्मबन्धके मेटनेका उपाय--

'जिस प्रकार किसी जीवको मदिरा पिलाकर विकल किया जाता है, सर्वस्व छीन लिया जाता है, पदसे भ्रष्ट कर दिया जाता है उसी प्रकार अनादिकालसे लेकर सर्व जीवराशि राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामसे मतवाली हुई है। इससे ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध होता है। ऐसे बन्धको शुद्ध ज्ञानका अनुभव मेटनशील है, इसलिए शुद्ध ज्ञान उपादेय है।'

(कलश १७५) द्रव्यके परिणामके कारणोंका निर्देश—

'द्रव्यके परिणामका कारण दो प्रकारका है—एक उपादान कारण है, एक निमित्त कारण है। उपादान कारण द्रव्यके अन्तर्गर्भित है अपने परिणाम-पर्यायरूप परिणमनशक्ति वह तो जिस द्रव्य की उसी द्रव्यमें होती है, ऐसा निश्चय है। निमित्त कारण—जिस द्रव्यका संयोग प्राप्त होनेसे अन्य द्रव्य अपनी पर्यायरूप परिणमता है, वह तो जिस द्रव्यको उस द्रव्यमें होती है, अन्य द्रव्यगोचर नहीं होती ऐसा निश्चय है। जैसे मिट्टी घट पर्यायरूप परिणमती है। उसका उपादान कारण है मिट्टीमें घटरूप परिणमनशक्ति। निमित्त कारण है बाह्यरूप कुम्हार, चक्र, दण्ड इत्यादि। वैसे ही जीवद्रव्य अशुद्ध परिणाम मोहराग द्वेषरूप परिणमता है। उसका उपादान कारण है जीवद्रव्यमें अन्तर्गर्भित विभावरूप अशुद्ध परिणामशक्ति।'

(कलश १७६-१७७) अकर्ता-कर्ता विचार

'सम्यग्दृष्टि जीवके रागादि अशुद्ध परिणामोंका स्वामित्वपना नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव कर्ता नहीं है।'

'मिथ्यादृष्टि जीवके रागादि अशुद्ध परिणामोंका स्वामित्वपना है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्ता है।'

(कलश १८०) मात्र भेदज्ञान उपादेय है—

'जिसप्रकार करोंतके वार वार चालू करनेसे पुद्गल वस्तु काष्ठ आदि दो खण्ड हो जाता है उसी प्रकार भेदज्ञानके द्वारा जीव पुद्गलको बार-बार भिन्न-भिन्न अनुभव करने पर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं, इसलिए भेदज्ञान उपादेय है।'

(कलश १८१) जीव कर्मको भिन्न करनेका उपाय—

'जिस प्रकार यद्यपि लोहसारकी छैनी अति पैनी होती है तो भी सन्धिका विचार कर देने पर [illegible]ो कर देती है उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान अत्यन्त तीक्ष्ण है तथापि जीव-

कर्मकी है जो भीतरमें सन्धि उसमें प्रवेश करने पर प्रथम तो बुद्धिगोचर छेदकर दो कर देता है। पश्चात् सकल कर्मका क्षय होनेसे साक्षात् छेदकर भिन्न भिन्न करता है।'

(कलश १९१) मोक्षमार्गका स्वरूप निरूपण—

सर्व अशुद्धपनाके मिटनेसे शुद्धपना होता है। उसके सहाराका है शुद्ध चिद्रूपका अनुभव, ऐसा मोक्षमार्ग है।

(कलश १९३) स्वरूप विचारकी अपेक्षा जीव न बद्ध है न मुक्त है—

'एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रियतक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ द्रव्य स्वरूप विचारकी अपेक्षा बन्ध ऐसे मुक्त ऐसे विकल्पसे रहित है। द्रव्यका स्वरूप जैसा है वैसा ही है।'

(कलश १९६) कर्मका (भावकर्मका) कर्तापन-भोक्तापन जीवका स्वभाव नहीं—

'जिस प्रकार जीवद्रव्यका अनन्तचतुष्टय स्वरूप है उस प्रकार कर्मका कर्तापन भोक्तापन स्वरूप नहीं है। कर्मकी उपाधिसे विभावरूप अशुद्ध परिणतिरूप विकार है। इसलिए विनाशीक है। उस विभाव परिणतिके विनाश होने पर जीव अकर्ता है, अभोक्ता है।'

(कलश २०३) भोक्ता और कर्ताका अन्योन्य सम्बन्ध है—

'जो द्रव्य जिस भावका कर्ता होता है वह उसका भोक्ता भी होता है। ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव कर्म दोनोंने मिलकर किया होवे तो दोनों भोक्ता होंगे सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं ! कारण कि जीव द्रव्य चेतन है तिस कारण सुख दुःखका भोक्ता होवे ऐसा घटित होता है, पुद्गल द्रव्य अचेतन होनेसे सुख दुःखका भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतन परिणमनका अकेला संसारी जीव कर्ता है, भोक्ता भी है।'

(कलश २०९) विकल्प अनुभव करने योग्य नहीं—

'जिस प्रकार कोई पुरुष मोतीकी मालाको पोना जानता है, माला गूँथता हुआ अनेक विकल्प करता है सो वे समस्त विकल्प झूठे हैं, विकल्पोंमें शोभा करनेकी शक्ति नहीं है। शोभा तो मोतीमात्र वस्तु है, उसमें है। इसलिए पहिननेवाला पुरुष मोतीकी माला जानकर पहिनता है, गूँथनेके बहुत विकल्प जानकर नहीं पहिनता है, देखनेवाला भी मोती की माला जानकर शोभा देखता है, गूँथनेके विकल्पोंको नहीं देखता है उसी प्रकार शुद्ध चेतनामात्र सत्ता अनुभव करने योग्य है। उसमें घटते हैं जो अनेक विकल्प उन सबकी सत्ता अनुभव करने योग्य नहीं है।'

(कलश २१२) जानते समय ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं परिणमा—

'जीवद्रव्य समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है ऐसा तो स्वभाव है, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता है, ज्ञेय भी ज्ञानद्रव्यरूप नहीं परिणमता है ऐसी वस्तुकी मर्यादा है।'

(कलश २१४) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता [illegible]

'जीव ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको करता है, भोगता है। [illegible] झूठे व्यवहारसे कहनेको है। द्रव्यके स्वरूपका विचार करनेपर परद्रव्यका कर्ता जीव नहीं है।'

(कलश २२२) ज्ञेयको जानना विकारका कारण नहीं

'कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीव द्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेयको जानता है, इसलिए परद्रव्यको जानते हुए कुछ थोड़ा बहुत रागादि अशुद्ध परिणतिका विकार होता होगा? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्यको जानते हुए तो एक निरंशमात्र भी नहीं है, अपनी विभाव परिणति करनेसे विकार है। अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है।'

इत्यादि रूपसे अनेक तथ्योंका अनुभवपूर्ण वाणी द्वारा स्पष्टीकरण इस टीकामें किया गया है। टीकाका स्वाध्याय करनेसे ज्ञात होता है कि आत्मानुभूति पूर्वक निराकुलता लक्षण सुखका रसास्वादन करते हुए कविवरने यह टीका लिखी है। यह जितनी सुगम और सरल भाषामें लिखी गई है उतनी ही भव्य जनोंके चित्तको आह्लाद उत्पन्न करनेवाली है। कविवर बनारसीदास जी ने उसे बालबोध टीका इस नामसे सम्बोधित किया है। इसमें संदेह नहीं कि यह बालजीवों या अल्पज्ञों को आत्मसाक्षात्कारके सन्मुख करनेके अभिप्रायसे ही लिखी गई है। इसलिए इसका बालबोध यह नाम सार्थक है। कविवर राजमल्लजी और इस टीकाके संबंधमें कविवर बनारसीदासजी लिखते हैं—

'पांडे राजमल्ल जिनधर्मी। समयसार नाटकके मर्मी ॥
तिन्हें ग्रन्थकी टीका कीन्ही। बालबोध सुगम करि दीन्ही ॥
इह विधि बोध वचनिका फैली। समै पाइ अध्यातम सैली ॥
प्रगटी जगत मांहि जिनवाणी, घर घर नाटक कथा बखानी ॥

कविवर बनारसीदासजी ने कविवर राजमल्लजी और उनकी इस टीकाके सम्बन्धमें थोड़े शब्दोंमें जो कुछ कहना था, सब कुछ कह दिया है। कविवर बनारसीदासजी ने छन्दोंमें नाटक समयसारकी रचना इसी टीकाके आधारसे की है। अपने इस भावको व्यक्त करते हुए कविवर स्वयं लिखते हैं—

नाटक समैसार हितजीका, सुगमरूप राजमल टीका।
कवितबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रन्थ पढ़ै सब कोई ॥
तब बनारसी मनमें आनी, कीजे तो प्रगटे जिनवानी।
पंच पुरुसकी आज्ञा लीनी। कवितबन्ध की रचना कीनी ॥

जिन पांच पुरुषोंको साक्षी करके कविवर बनारसी दास जी ने छन्दोंमें नाटक समयसारकी रचना की है। वे हैं—१ पं० रूपचन्दजी, २. चतुर्भुजजी, ३. कविवर भैया भगवतीदासजी, ४. कोर-

पालजी और ५ धर्मदासजी। इनमें पं० रूपचन्दजी और भैया भगवतीदासजी का नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। स्पष्ट है कि इन पाँचों विद्वानोंने कविवर बनारसीदासजी के साथ मिलकर कविवर राजमल्लजी की समयसार कलश बालबोध टीकाका अनेक बार स्वाध्याय किया होगा। यह टीका अध्यात्मके प्रचारमें काफी सहायक हुई यह इसीसे स्पष्ट है। पं० श्री रूपचन्दजी जैसे सिद्धान्ती विद्वान् को यह टीका अक्षरशः मान्य थी यह भी इससे सिद्ध होता है!

यह तो मैं पूर्वमें ही लिख आया हूँ कि यह टीका ढूँढारी भाषामें लिखी गई है। सर्वप्रथम मूलरूपमें इसके प्रचारित करनेका श्रेय श्रीमान् सेठ नेमचन्द बालचन्द जी वकील उसमानाबादवालों को है। यह वीर सं० २४५७ में स्व० श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजी के आग्रहसे प्रकाशित हुई थी। प्रकाशक श्री मूलचन्द किशनदासजी कापड़िया (दि० जैन पुस्तकालय) सूरत हैं। श्रीमान् नेमचन्दजी वकीलसे मेरा निकटका सम्बन्ध था। वे उदाराशय और विद्याव्यासंगी विचारक वकील थे। अध्यात्म में तो उनका प्रवेश था ही, कर्मशास्त्रका भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनकी यह सेवा सराहनीय है। मेरा विश्वास है कि बहुजन प्रचारित हिन्दीमें इसका अनुवाद हो जानेके कारण अध्यात्म जैसे गूढ़तम तत्त्वके प्रचारमें यह टीका अधिक सहायक होगी। विज्ञेषु किमधिकम्।

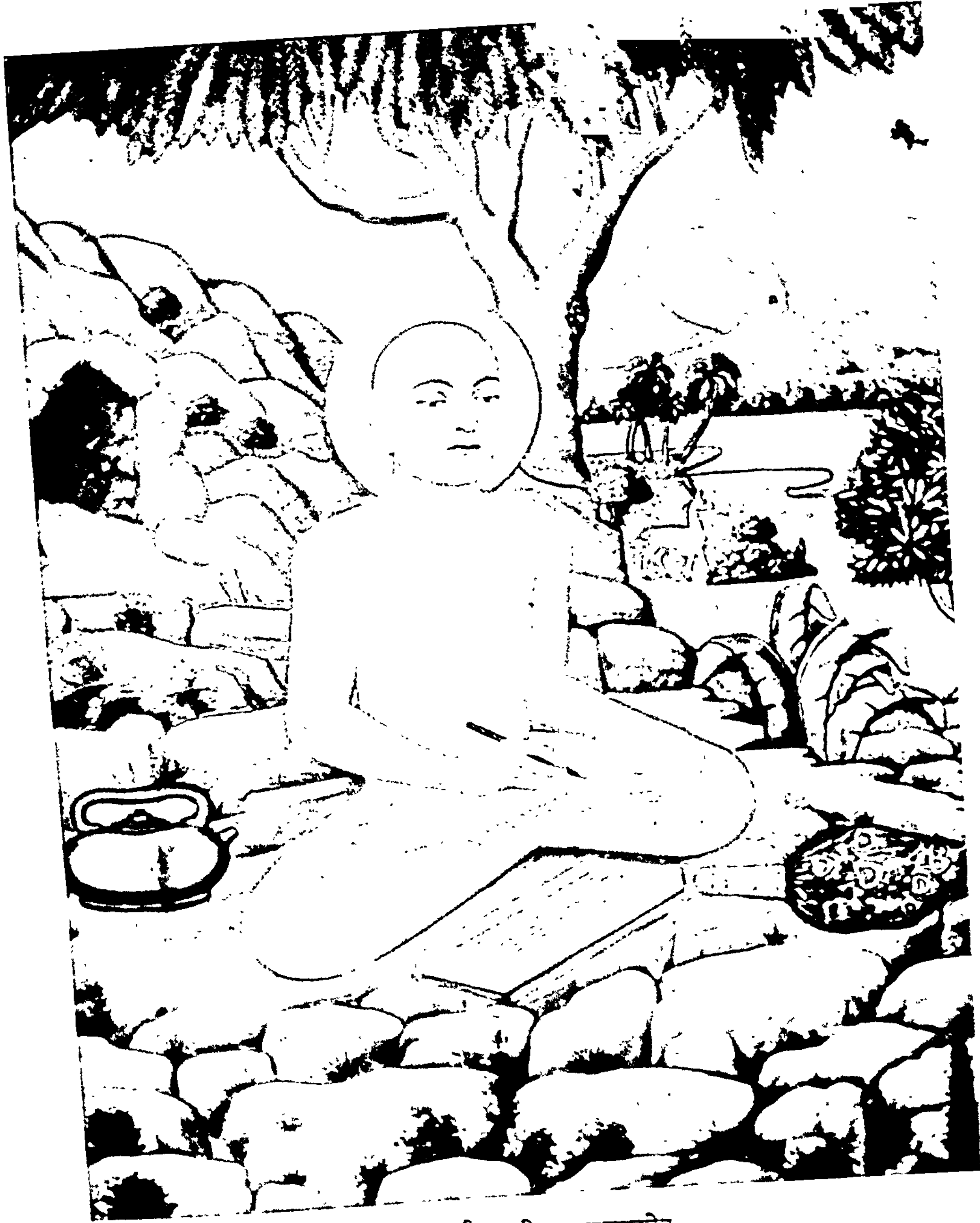
—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

❊ विषय-सूची ❊



श्री समयसार कलश





आचार्यवर श्री अमृतचन्द्रदेव



पण्डितप्रवर श्री राजमल्लजी कृत टीकाके आधुनिक हिन्दी-अनुवाद सहित

श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित

श्री

समयसार-कलश

—१—

जीव-अधिकार

(अनुष्टुप्)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"भावाय नमः" [भावाय] पदार्थ। पदार्थ संज्ञा है सत्त्वस्वरूपकी। उससे यह अर्थ ठहराया—जो कोई शाश्वत वस्तुरूप, उसे मेरा [नमः] नमस्कार। वह वस्तुरूप कैसा है? "चित्स्वभावाय" [चित्] ज्ञान—चेतना वही है [स्वभावाय] स्वभाव—सर्वस्व जिसका, उसको मेरा नमस्कार। यह विशेषण कहने पर दो समाधान होते हैं—एक तो भाव कहने पर पदार्थ; वे पदार्थ कोई चेतन हैं, कोई अचेतन हैं; उनमें चेतन पदार्थ नमस्कार करने योग्य है ऐसा अर्थ उपजता है। दूसरा समाधान ऐसा कि यद्यपि वस्तुका गुण वस्तुमें गर्भित है, वस्तु गुण एक ही सत्त्व है, तथापि भेद उपजाकर कहने योग्य है; विशेषण कहे विना वस्तुका ज्ञान उपजता नहीं। और कैसा है भाव? "समयसाराय" यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ है तथापि इस अवसर पर समय शब्दसे सामान्यतया जीवादि सकल पदार्थ जानने। उनमें जो कोई सार है, सार अर्थात् उपादेय है जीव

वस्तु, उसको मेरा नमस्कार। इस विशेषणका यह भावार्थ—सार पदार्थ जानकर चेतन पदार्थको नमस्कार प्रमाण रखा। असारपना जानकर अचेतन पदार्थको नमस्कार निषेधा। आगे कोई वितर्क करेगा कि सर्व ही पदार्थ अपने अपने गुण-पर्याय विराजमान हैं, स्वाधीन हैं, कोई किसीके आधीन नहीं; जीव पदार्थका सारपना कैसे घटता है? उसका समाधान करनेके लिए दो विशेषण कहते हैं:—और कैसा है भाव? "स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे" [स्वानुभूत्या] इस अवसर पर स्वानुभूति कहनेसे निराकुलत्वलक्षण शुद्धात्मपरिणमनरूप अतीन्द्रिय सुख जानना, उसरूप [चकासते] अवस्था है जिसकी। [सर्वभावान्तरच्छिदे] सर्व भाव अर्थात् अतीत-अनागत-वर्तमान पर्याय सहित अनन्त गुण विराजमान जितने जीवादि पदार्थ, उनका अन्तरछेदी अर्थात् एक समयमें युगपत् प्रत्यक्षरूपसे जाननशील जो कोई शुद्ध जीववस्तु, उसको मेरा नमस्कार। शुद्ध जीवके सारपना घटता है। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुख जानना। कारण कि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालके और संसारी जीवके सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं, और उनका स्वरूप जाननेपर जाननहारे जीवको भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं, इसलिए इनके सारपना घटता नहीं। शुद्ध जीवके सुख है, ज्ञान भी है, उसको जानने-पर—अनुभवनेपर जाननहारे को सुख है, ज्ञान भी है, इसलिए शुद्ध जीवके सारपना घटता है ॥१॥

(अनुष्टुप्)

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ— "नित्यमेव प्रकाशताम्" [नित्यं] सदा त्रिकाल [प्रकाशताम्] प्रकाशको करो। इतना कहकर नमस्कार किया। वह कौन? "अनेकान्तमयी मूर्तिः" [अनेकान्तमयी] न एकान्तः अनेकान्तः। अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद उसमयी अर्थात् वही है [मूर्तिः] स्वरूप जिसका, ऐसी है सर्वज्ञकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि। इस अवसर पर आशंका उपजती है कि कोई कहेगा कि अनेकान्त तो संशय है, संशय मिथ्या है। उसके प्रति ऐसा समाधान करना—अनेकान्त तो संशयको दूरीकरणशील है और वस्तुस्वरूपको साधनशील है। उसका विवरण—जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है वह द्रव्य-गुणात्मक है। उसमें जो सत्ता

अभेदरूपसे द्रव्यरूप कहलाती है वही सत्ता भेदरूपसे गुणरूप कहलाती है। इसका नाम अनेकान्त है। वस्तुस्वरूप अनादि-निधन ऐसा ही है। किसीका सहारा नहीं। इसलिए अनेकान्त प्रमाण है। आगे जिस वाणीको नमस्कार किया वह वाणी कैसी है? "प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यन्ती" [प्रत्यगात्मनः] सर्वज्ञ वीतराग। उसका विवरण-प्रत्यक् अर्थात् भिन्न; भिन्न अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे रहित, ऐसा है आत्मा-जीवद्रव्य जिसका वह कहलाता है प्रत्यगात्मा; उसका [तत्त्वं] स्वरूप, उसको [पश्यन्ती] अनुभवनशील है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई वितर्क करेगा कि दिव्यध्वनि तो पुद्‌गलात्मक है, अचेतन है, अचेतनको नमस्कार निषिद्ध है। उसके प्रति समाधान करनेके निमित्त यह अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है, ऐसा माने विना भी बने नहीं। उसका विवरण—वाणी तो अचेतन है। उसको सुनने पर जीवादि पदार्थका स्वरूपज्ञान जिस प्रकार उपजता है उसी प्रकार जानना—वाणीका पूज्यपना भी है। कैसे हैं सर्वज्ञ वीतराग? "अनन्तधर्मणः" [अनन्त] अति बहुत हैं [धर्मणः] गुण जिनके ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यावादी कहता है कि परमात्मा निर्गुण है, गुण विनाश होनेपर परमात्मपना होता है। सो ऐसा मानना झूठा है, कारण कि गुणोंका विनाश होनेपर द्रव्यका भी विनाश है ॥२॥

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥ ३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मम परमविशुद्धिः भवतु" शास्त्रकर्ता है अमृतचन्द्र-सूरि। वह कहता है-[मम] मुझे [परमविशुद्धिः] शुद्धस्वरूपप्राप्ति। उसका विवरण—परम-सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि-निर्मलता [भवतु] होओ। किससे? "समयसारव्याख्यया" [समयसार] शुद्ध जीव, उसके [व्याख्यया] उपदेशसे हमको शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होओ। भावार्थ इसप्रकार है—यह शास्त्र परमार्थरूप है, वैराग्योत्पादक है। भारत-रामायणके समान रागवर्धक नहीं है। कैसा हूँ मैं? "अनुभूतेः" अनुभूति-अतीन्द्रिय सुख, वही है स्वरूप जिसका ऐसा हूँ। और कैसा हूँ? "शुद्धचिन्मात्रमूर्तेः" [शुद्ध] रागादि-उपाधिरहित [चिन्मात्र] चेतनामात्र [मूर्तेः]

स्वभाव है जिसका ऐसा हूँ। भावार्थ इसप्रकार है—द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यस्वरूप ऐसा ही है। और कैसा हूँ मैं ? "अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः" [अविरतं] निरन्तरपने अनादि सन्तानरूप [अनुभाव्य] विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना, उसके साथ है [व्याप्ति] व्याप्ति अर्थात् उसरूप है विभाव-परिणमन, ऐसा है [कल्माषितायाः] कलंकपना जिसका ऐसा हूँ। भावार्थ इस प्रकार है—पर्यायार्थिकनयसे जीववस्तु अशुद्धरूपसे अनादिकी परिणमी है। उस अशुद्धताके विनाश होने पर जीववस्तु ज्ञान-स्वरूप सुखस्वरूप है। आगे कोई प्रश्न करता है कि जीववस्तु अनादिसे अशुद्धरूप परिणमी है, वहाँ निमित्तमात्र कुछ है कि नहीं है ? उत्तर इसप्रकार—निमित्तमात्र भी है। वह कौन, वही कहते हैं—"मोहनाम्नोऽनुभावात्" [मोहनाम्नः] पुद्गलपिण्ड-रूप आठ कर्मोंमें मोह एक कर्मजाति है, उसका [अनुभावात्] उदय अर्थात् विपाक-अवस्था। भावार्थ इस प्रकार है—रागादि-अशुद्धपरिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्य-व्यापकरूप परिणमे है पुद्गलपिण्डरूप मोहकर्मका उदय निमित्तमात्र है जैसे कोई धतूरा पीनेसे घूमता है, निमित्तमात्र धतूराका उसको है। कैसा है मोहनामक कर्म ? "परपरिणति-हेतोः" [पर] अशुद्ध [परिणति] जीवका परिणाम, जिसका [हेतोः] कारण है। भावार्थ इसप्रकार है—जीवके अशुद्ध परिणामके निमित्त ऐसा रस लेकर मोहकर्म बँधता है, बादमें उदय समयमें निमित्तमात्र होता है ॥३॥

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते समयसारं ईक्षन्ते एव" [ते] आसन्नभव्य जीव [समयसारं] शुद्ध जीवको [ईक्षन्ते एव] प्रत्यक्षपने प्राप्त होते हैं। "सपदि" थोड़े ही कालमें। कैसा है शुद्ध जीव ! "उच्चैः परं ज्योतिः" अतिशयमान ज्ञानज्योति है। और कैसा ? "अनवं" अनादिसिद्ध है। और कैसा है ? "अनयपक्षाक्षुण्णं" [अनयपक्ष] मिथ्यावादसे [अक्षुण्णं] अखण्डित है। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यावादी बौद्धादि झूठी कल्पना बहुत प्रकार करते हैं, तथापि वे ही

झूठे हैं। आत्मतत्त्व जैसा है वैसा ही है। आगे वे भव्य जीव क्या करते हुए शुद्ध स्वरूप पाते हैं, वही कहते हैं—"ये जिनवचसि रमन्ते" [ये] आसन्नभव्य जीव [जिनवचसि] दिव्य-ध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु, उसमें [रमन्ते] सावधानपने रुचि—श्रद्धा—प्रतीति करते हैं। विवरण—शुद्ध जीववस्तुका प्रत्यक्षपने अनुभव करते हैं उसका नाम रुचि—श्रद्धा—प्रतीति है। भावार्थ इस प्रकार है—वचन पुद्गल है, उसकी रुचि करने पर स्वरूपकी प्राप्ति नहीं। इसलिए वचनके द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु, उसका अनुभव करने पर फलप्राप्ति है। कैसा है जिनवचन ? "उभयनयविरोधध्वंसिनि" [उभय] दो [नय] पक्षपात [विरोध] परस्पर वैरभाव। विवरण—एक सत्त्वको द्रव्यार्थिक-नय द्रव्यरूप, उसी सत्त्वको पर्यायार्थिकनय पर्यायरूप कहता है; इसलिए परस्पर विरोध है; उसका [ध्वंसिनि] मेटनशील है। भावार्थ इस प्रकार है—दोनों नय विकल्प हैं, शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव निर्विकल्प है, इसलिए शुद्ध जीववस्तुका अनुभव होनेपर दोनों नयविकल्प झूठे हैं। और कैसा है जिनवचन ? "स्यात्पदाङ्के" [स्यात्पद] स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त—जिसका स्वरूप पीछे कहा है, वही है [अंके] चिह्न जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है—जो कुछ वस्तुमात्र है वह तो निर्भेद है। वह वस्तुमात्र वचनके द्वारा कहनेपर जो कुछ वचन बोला जाता है वही पक्षरूप है। कैसे हैं आसन्नभव्य जीव ? "स्वयं वान्तमोहाः"[स्वयं] सहजपने [वान्त] वमा है [मोहाः] मिथ्यात्व—विपरीतपना, ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त संसार जीवके भ्रमते हुए जाता है। वे संसारी जीव एक भव्यराशि है, एक अभव्यराशि है। उसमें अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जानेके अधिकारी नहीं। भव्य जीवोंमें कितने ही जीव मोक्ष जाने योग्य हैं। उनके मोक्ष पहुँचनेका कालपरिमाण है। विवरण—यह जीव इतना काल बीतनेपर मोक्ष जायेगा ऐसी नोंध केवलज्ञानमें है। वह जीव संसारमें भ्रमते भ्रमते जभी अर्धपुद्गलपरावर्तनमात्र रहता है तभी सम्यक्त्व उपजने योग्य है। इसका नाम काललब्धि कहलाता है। यद्यपि सम्यक्त्व-रूप जीवद्रव्य परिणमता है तथापि काललब्धिके बिना करोड़ उपाय जो किये जायँ तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नहीं ऐसा नियम है। इससे जानना कि सम्यक्त्व-वस्तु यत्नसाध्य नहीं, सहजरूप है ॥४॥

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः ।

तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित् ।५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"व्यवहरणनयः यद्यपि हस्तावलम्बः स्यात्" [व्यवहरण नयः] जितना कथन। उसका विवरण—जीववस्तु निर्विकल्प है। वह तो ज्ञानगोचर है। वही जीववस्तुको कहना चाहें, तब ऐसे ही कहनेमें आता है कि जिसके गुण-दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह जीव। जो कोई बहुत साधिक (अधिक बुद्धिमान्) हो तो भी ऐसे ही कहना पड़े। इतने कहनेका नाम व्यवहार है। यहाँ कोई आशंका करेगा कि वस्तु निर्विकल्प है, उसमें विकल्प उपजाना अयुक्त है। वहाँ समाधान इस प्रकार है कि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है। [हस्तावलम्बः] जैसे कोई नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर ऊपर लेते हैं वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजनेका एक अंग है। उसका विवरण—जीवका लक्षण चेतना इतना कहनेपर पुद्गलादि अचेतन द्रव्यसे भिन्नपनेकी प्रतीति उपजती है। इसलिए जबतक अनुभव होता है तबतक गुण—गुणी भेदरूप कथन ज्ञानका अंग है। व्यवहारनय जिनका हस्तावलम्ब है वे कैसे हैं? "प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां" [इह] विद्यमान ऐसे जो [प्राक्पदव्यां] ज्ञान उत्पन्न होनेपर प्रारम्भिक अवस्था में [निहितपदानां] निहित—रखा है पद—सर्वस्व जिन्होंने ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार [illegible] अज्ञानी हैं, जीवादि पदार्थोका द्रव्य-गुण-पर्याय-स्वरूप जाननेके अभिलाषी हैं, उनके लिए गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। "हन्त तदपि एष न किञ्चित्" यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है तथापि कुछ नहीं, नोंध (ज्ञान, समझ) करनेपर [illegible] कैसे हैं जिनके व्यवहारनय झूठा है? "चिच्चमत्कारमात्रं अर्थं अन्तः पश्यतां" [चित्] चेतना [चमत्कार] प्रकाश [मात्रं] इतनी ही है [अर्थं] शुद्ध जीववस्तु उसको [अंतःपश्यतां] प्रत्यक्षपने अनुभवते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—[illegible] अनुभव होनेपर वचनका व्यवहार सहज ही छूट जाता है। कैसी है वस्तु? "परमं" उत्कृष्ट है उपादेय है। और कैसी है वस्तु? "परविरहितं" [पर] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे [विरहितं] भिन्न है ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् ।

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् नः अयं एकः आत्मा अस्तु" [तत्] इस कारण [नः] हमें [अयं] यह विद्यमान [एकः] शुद्ध [आत्मा] चेतनपदार्थ [अस्तु] होओ। भावार्थ इस प्रकार है—जीववस्तु चेतनालक्षण तो सहज ही है। परन्तु मिथ्यात्वपरिणामके कारण भ्रमित हुआ अपने स्वरूपको नहीं जानता, इससे अज्ञानी ही कहना। अतएव ऐसा कहा कि मिथ्या परिणामके जानेसे यही जीव अपने स्वरूपका अनुभवशीली होओ। क्या करके ? "इमां नवतत्त्वसन्ततिं मुक्त्वा" [इमां] आगे कहे जानेवाले [नवतत्त्व] जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पापके [सन्ततिं] अनादि सम्बन्धको [मुक्त्वा] छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है—संसार-अवस्थामें जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव परिणति है, इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तुका अनुभव मिथ्यात्व है। "यदस्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनं नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनं" [यत्] जिस कारण [अस्यात्मनः] यही जीवद्रव्य [द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्] सकल कर्मोपाधिसे रहित जैसा है [इह दर्शनं] वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव [नियमात्] निश्चयसे [एतदेव सम्यग्दर्शनं] यही सम्यग्दर्शन है। भावार्थ इसप्रकार है—सम्यग्दर्शन जीवका गुण है। वह गुण संसार-अवस्थामें विभावरूप परिणमा है। वही गुण जब स्वभावरूप परिणमे तब मोक्षमार्ग है। विवरण—सम्यक्त्वभाव होनेपर नूतन ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मास्रव मिटता है, पूर्वबद्ध कर्म निर्जरता है; इस कारण मोक्षमार्ग है। यहाँपर कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनोंके मिलनेसे होता है। उत्तर इस प्रकार है—शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करनेपर तीनों ही हैं। कैसा है शुद्ध जीव ? "शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य" [शुद्धनयतः] निर्विकल्प वस्तुमात्रकी दृष्टिसे देखते हुए [एकत्वे] शुद्धपना [नियतस्य] उसरूप है। भावार्थ इसप्रकार है—जीवका लक्षण चेतना है। वह चेतना तीन प्रकारकी है—एक ज्ञानचेतना, एक कर्मचेतना, एक कर्मफलचेतना। उनमेंसे ज्ञानचेतना शुद्ध चेतना है, शेष अशुद्ध चेतना हैं। उनमेंसे अशुद्ध चेतनारूप वस्तुका स्वाद सर्व जीवोंको अनादिसे प्रगट ही है। उसरूप अनुभव सम्यक्त्व नहीं। शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूपका आस्वाद आवे तो सम्यक्त्व है। और कैसी है जीववस्तु ? "व्याप्तुः" अपने गुण पर्यायोंको लिये हुए है इतना कहकर शुद्धपना दृढ़ किया है। कोई आशंका करेगा कि सम्यक्त्व-गुण और जीव-

वस्तुका भेद है कि अभेद है ? उत्तर ऐसा कि अभेद है "आतमा च तावानयम्" [अयम्] यह [आत्मा] जीववस्तु [तावान्] सम्यक्त्व–गुणमात्र है ।६।*

(अनुष्टुप्)

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति ।।७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अतः तत् प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति" [अतः] यहाँसे आगे [तत्] वही [प्रत्यग्ज्योतिः] शुद्ध चेतनामात्र वस्तु [चकास्ति] शब्दों द्वारा युक्तिसे कही जाती है। कैसी है वस्तु ? "शुद्धनयायत्तम्" [शुद्धनय] वस्तुमात्रके [आयत्तम्] आधीन है। भावार्थ इस प्रकार है—जिसका अनुभव करनेपर सम्यक्त्व होता है उस शुद्ध स्वरूपको कहते हैं—"यदेकत्वं न मुञ्चति" [यत्] जो शुद्ध वस्तु [एकत्वं] शुद्धपनेको [न मुञ्चति] नहीं छोड़ती है। यहाँपर कोई आशंका करेगा कि जीववस्तु जब संसारसे [illegible] तब शुद्ध होती है। उत्तर इस प्रकार है—जीववस्तु द्रव्यदृष्टिसे विचार करनेपर [illegible] ही शुद्ध है। वही कहते हैं—"नवतत्त्वगतत्वेऽपि" [नवतत्त्व] जीव-अजीव-[illegible]-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप [गतत्वेऽपि] उसरूप परिणत है तथापि शुद्ध-[illegible] है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है, वह काष्ठ, तृण, [illegible] दहती है, दहती हुई अग्नि दाह्याकार होती है, पर उसका [illegible] जो उसे काष्ठ, तृण और कण्डेकी आकृतिमें देखा जाय तो काष्ठकी अग्नि [illegible] और कण्डेकी अग्नि ऐसा कहना साँचा ही है और जो अग्निकी उष्णता-[illegible] तो उष्णमात्र है। काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि [illegible] झूठे है। उसीप्रकार नौ तत्त्वरूप जीवके परिणाम हैं। वे परिणाम [illegible] हैं किन्तु हैं ही अशुद्धरूप हैं। जो नौ परिणाममें ही देखा जाय तो नौ ही [illegible] और जो चेतनामात्र अनुभव किया जाय तो नौ ही विकल्प झूठे हैं।७।

(मालिनी)

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे ।

अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मज्योतिर्दृश्यताम्" [आत्मज्योतिः] जीवद्रव्यका शुद्ध ज्ञानमात्र, [दृश्यतां] सर्वथा अनुभवरूप हो। कैसी है आत्मज्योति ? "चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नं अथ सततविविक्तं" इस अवसर पर नाट्यरसके समान एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समयमें दिखलाई देती है। इसी कारणसे इस शास्त्रका नाम नाटक समयसार है। वही कहते हैं—[चिरं] अमर्याद कालसे [इति] जो विभावरूप रागादि परिणाम–पर्यायमात्र विचारा जाय तो ज्ञानवस्तु [**नवतत्त्वच्छन्नं**] पूर्वोक्त जीवादि नौ तत्त्वरूपसे आच्छादित है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु अनादि कालसे धातु और पाषाणके संयोगके समान कर्म पर्यायसे मिली ही चली आ रही है सो मिली हुई होकर वह रागादि विभाव परिणामोंके साथ व्याप्य-व्यापक रूपसे स्वयं परिणमन कर रही है। वह परिणमन देखा जाय, जीवका स्वरूप न देखा जाय तो जीववस्तु नौ तत्त्वरूप है ऐसा दृष्टि में आता है। ऐसा भी है, सर्वथा झूठ नहीं है, क्योंकि विभावरूप रागादि परिणाम शक्ति जीवमें ही है। "अथ" अब 'अथ' पद द्वारा दूसरा पक्ष दिखलाते हैं—वही जीववस्तु द्रव्यरूप है, अपने गुण-पर्यायोंमें विराजमान है। जो शुद्ध द्रव्यस्वरूप देखा जाय, पर्यायस्वरूप न देखा जाय तो वह कैसी है ? "सततविविक्तम्" [सतत] निरन्तर [विविक्तं] नौ तत्त्वोंके विकल्पसे रहित है, शुद्ध वस्तुमात्र है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है। और कैसी है वह आत्मज्योति ? "वर्णमालाकलापे कनकमिव निमग्नं" [वर्णमाला] पदके दो अर्थ हैं—एक तो बनवारी* और दूसरा भेदपंक्ति। भावार्थ इस प्रकार है कि गुण-गुणीके भेदरूप भेदप्रकाश। 'कलाप' का अर्थ समूह है। इसलिये ऐसा अर्थ निष्पन्न हुआ कि जैसे एक ही सोना वानभेदसे अनेकरूप कहा जाता है वैसे एक ही जीववस्तु द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे अनेकरूप कही जाती है। "अथ" अब 'अथ' पद द्वारा पुनः दूसरा पक्ष दिखलाते हैं—"प्रतिपदं एकरूपं" [प्रतिपदं] गुण-पर्यायरूप, अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा दृष्टांतकी अपेक्षा वानभेदरूप जितने भेद हैं उन सब भेदोंमें भी [एकरूपं] आप (एक) ही है। वस्तुका विचार करनेपर भेदरूप भी वस्तु

---

*: बनवारी—सोनाकी मूंठ।

(मालिनी)

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम् ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्
अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्मिन् धाम्नि अनुभवमुपयाते द्वैतमेव न भाति" [अस्मिन्] इस—स्वयंसिद्ध [धाम्नि] चेतनात्मक जीव वस्तुका [अनुभवं] प्रत्यक्षरूप आस्वाद [उपयाते] आनेपर [द्वैतमेव] सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प और बहिर्जल्परूप सभी विकल्प [न भाति] नहीं शोभते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य-वेदकभावसे आस्वादरूप है और वह अनुभव परसहायसे निरपेक्ष है। ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष है तथापि सम्यक्त्वके साथ अविनाभूत है, क्योंकि यह सम्यग्दृष्टिके होता है, मिथ्यादृष्टिके नहीं होता है ऐसा निश्चय है। ऐसा अनुभव होनेपर जीववस्तु अपने शुद्धस्वरूपको प्रत्यक्षरूपसे आस्वादती है। इसलिये जितने कालतक अनुभव होता है उतने कालतक वचनव्यवहार सहज ही बन्द रहता है, क्योंकि वचन व्यवहार तो परोक्षरूपसे कथक है। यह जीव तो प्रत्यक्षरूप अनुभवशील है, इसलिये (अनुभवकालमें) वचनव्यवहार पर्यन्त कुछ रहा नहीं। कैसी वस्तु?

"सर्वकषे" [सर्वं] सब प्रकारके विकल्पोंका [कषे] क्षयकरणशील (क्षय करनेरूप स्वभाववाली) है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यप्रकाश अन्धकारसे सहज ही भिन्न है वैसे अनुभव भी समस्त विकल्पोंसे रहित ही है। यहाँ पर कोई प्रश्न करेगा कि अनुभवके होनेपर कोई विकल्प रहता है कि जिनका नाम विकल्प है वे समस्त ही मिटते हैं ? उत्तर इस प्रकार है कि समस्त ही विकल्प मिट जाते हैं, उसीको कहते हैं—"नयश्रीरपि न उदयति, प्रमाणमपि अस्तमेति, न विद्मः निक्षेपचक्रमपि क्वचित् याति, अपरं किं अभिदध्मः" जो अनुभवके आनेपर प्रमाण-नय-निक्षेप ही झूठा है। वहाँ रागादि विकल्पोंकी क्या कथा ? भावार्थ इस प्रकार है—जो रागादि तो झूठा ही है, जीवस्वरूपसे बाह्य है। प्रमाणनय-निक्षेपरूप बुद्धिके द्वारा एक ही जीव द्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप भेद किया जाता है, वे समस्त झूठे हैं। इन सबके झूठे होनेपर जो कुछ वस्तुका स्वाद है सो अनुभव है। (प्रमाण) युगपत् अनेक धर्मग्राहक ज्ञान, वह भी विकल्प है, (नय) वस्तुके किसी एक गुणका ग्राहक ज्ञान वह भी विकल्प है और (निक्षेप) उपचार घटनारूप ज्ञान, वह भी विकल्प है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिकालसे जीव अज्ञानी है, जीवस्वरूपको नहीं जानता है। वह सब जीवसत्त्वकी प्रतीति आनी चाहे तब जैसे ही प्रतीति आवे तैसे ही वस्तु-स्वरूप साधा जाता है। सो साधना गुण-गुणीज्ञान द्वारा होती है, दूसरा उपाय तो कोई नहीं है। इसलिये वस्तुस्वरूपका गुण-गुणीभेदरूप विचार करनेपर प्रमाण-नय-निक्षेपरूप विकल्प उत्पन्न होते हैं। वे विकल्प प्रथम अवस्थामें भले ही हैं, तथापि स्वरूप मात्र अनुभवनेपर झूठे हैं।९।

(उपजाति)

आत्मस्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम् ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं-
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"शुद्धनयः अभ्युदेति" [शुद्धनय] निरुपाधि जीव-वस्तुस्वरूपका उपदेश [अभ्युदेति] प्रगट होता है। क्या करता हुआ प्रगट होता है ? "एकं प्रकाशयन्" [एकं] शुद्धस्वरूप जीववस्तुको [प्रकाशयन्] निरूपण करता हुआ।

कैसा है शुद्ध जीवस्वरूप ? "आद्यन्तविमुक्तं" [आद्यन्त] समस्त पिछले और आगामी कालसे [विमुक्तं] रहित है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीववस्तुकी आदि भी नहीं है, अन्त भी नहीं है। जो ऐसे स्वरूपको सूचित करता है उसका नाम शुद्धनय है। पुनः कैसी है जीववस्तु ? "विलीनसंकल्पविकल्पजालं" [विलीन] विलयको प्राप्त हो गया है [संकल्प] रागादि परिणाम और [विकल्प] अनेक नयविकल्परूप ज्ञानकी पर्याय जिसके ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त संकल्प-विकल्पसे रहित वस्तुस्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है। पुनः कैसी है शुद्ध जीववस्तु ? "परभावभिन्न" रागादि भावोंसे भिन्न है। और कैसी है ? "आपूर्ण" अपने गुणोंसे परिपूर्ण है। और कैसी है ? "आत्मस्वभावं" आत्माका निज भाव है ॥१०॥

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जगत् तमेव स्वभावं सम्यक् अनुभवतु" [जगत्] सर्व जीवराशि [तमेव] निश्चयसे पूर्वोक्त [स्वभावं] शुद्ध जीववस्तुको [सम्यक्] जैसी है वैसी [अनुभवतु] प्रत्यक्षपनेसे स्वसंवेदनरूप आस्वादो। कैसी होकर आस्वादे ? "अपगतमोहीभूय" [अपगत] चली गई है [मोहीभूय] शरीरादि परद्रव्यसम्बन्धी एकत्वबुद्धि जिसकी ऐसी होकर। भावार्थ इस प्रकार है कि संसारी जीवको संसारमें बसते हुए अनन्तकाल गया। शरीरादि परद्रव्य स्वभाव था, परन्तु यह जीव अपना ही जानकर प्रवृत्त हुआ, सो जभी यह विपरीत बुद्धि छूटती है तभी यह जीव शुद्धस्वरूपका अनुभव करनेके योग्य होता है। कैसा है शुद्धस्वरूप ? "समन्तात् द्योतमानं" [समन्तात्] सब प्रकारसे [द्योतमानं] प्रकाशमान है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनुभवगोचर होनेपर कुछ भ्रान्ति नहीं रहती। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि जीवको तो शुद्ध-स्वरूप कहा और वह ऐसा ही है, परन्तु राग-द्वेष-मोहरूप परिणामोंको अथवा सुख-दुःख आदिरूप परिणामोंको कौन करता है, कौन भोगता है ? उत्तर इस प्रकार है कि इन परिणामोंको करे तो जीव करता है और जीव भोक्ता है परन्तु यह परिणति

विभावरूप है, उपाधिरूप है। इस कारण निजस्वरूप विचारनेपर यह जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा कहा जाता है। कैसा है शुद्धस्वरूप ? "यत्र अमी बद्धस्पृष्टभावादयः प्रतिष्ठां न हि विदधति" [यत्र] जिस शुद्धात्मस्वरूपमें [अमी] विद्यमान [बद्ध] अशुद्ध रागादिभाव, [स्पृष्ट] परस्पर पिण्डरूप एक क्षेत्रावगाह और [भावादयः] आदि शब्दसे गृहीत अन्यभाव, अनियतभाव, विशेषभाव और संयुक्तभाव इत्यादि जो विभावपरिणाम हैं वे समस्त भाव शुद्धस्वरूपमें [प्रतिष्ठां] शोभाको [न हि विदधति] नहीं धारण करते हैं। नर, नारक, तिर्यञ्च और देवपर्यायरूप भावका नाम अन्यभाव है। असंख्यात प्रदेशसम्बन्धी संकोच और विस्ताररूप परिणमनका नाम अनियतभाव है। दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप भेदकथनका नाम विशेषभाव है तथा रागादि उपाधि सहितका नाम संयुक्तभाव है। भावार्थ इस प्रकार है कि बद्ध, स्पृष्ट, अन्य, अनियत, विशेष और संयुक्त ऐसे जो छह विभाव परिणाम हैं वे समस्त संसार अवस्थायुक्त जीवके हैं, शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करनेपर जीवके नहीं हैं। कैसे हैं बद्ध-स्पृष्ट आदि विभावभाव ? "स्फुटं" प्रगटरूपसे "एत्य अपि" उत्पन्न होते हुए विद्यमान ही हैं तथापि "उपरि तरन्तः" ऊपर ही ऊपर रहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका ज्ञानगुण त्रिकालगोचर है उस प्रकार रागादि विभावभाव जीववस्तुमें त्रिकालगोचर नहीं है। यद्यपि संसार अवस्थामें विद्यमान ही हैं तथापि मोक्ष अवस्थामें सर्वथा नहीं हैं, इसलिए ऐसा निश्चय है कि रागादि जीवस्वरूप नहीं हैं ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भूतं भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधी-
र्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्यमोहं हठात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्य कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं आत्मा व्यक्तः आस्ते" [अयं] इस प्रकार [आत्मा] चेतनालक्षण जीव [व्यक्तः] स्वस्वभावरूप [आस्ते] होता है। कैसा होता है ? "नित्यं कर्मकलंकपंकविकलः" [नित्यं] त्रिकालगोचर [कर्म] अशुद्धतारूप [कलंकपंक] कलुषता-कीचड़से [विकलः] सर्वथा भिन्न होता है। और कैसा है ? "ध्रुवं" चार गतिमें भ्रमता हुआ रह (रुक) गया। और कैसा है ? "देवः" त्रैलोक्यने

पूज्य है। और कैसा है ? "स्वयं शाश्वतः" द्रव्यरूप विद्यमान ही है। और कैसा होता है ? "आत्मानुभवैकगम्यमहिमा" [आत्मा] चेतन वस्तुके [अनुभव] प्रत्यक्ष-आस्वादके द्वारा [एक] अद्वितीय [गम्य] गोचर है [महिमा] बड़ाई जिसकी ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका जिस प्रकार एक ज्ञानगुण है उसी प्रकार एक अतीन्द्रिय सुखगुण है सो सुखगुण संसार अवस्थामें अशुद्धपनेसे प्रगट आस्वादरूप नहीं है। अशुद्धपनाके जानेपर प्रगट होता है। वह सुख अतीन्द्रिय परमात्माके होता है। उस सुखको कहनेके लिये कोई दृष्टांत चारों गतियोंमें नहीं है, क्योंकि चारों ही गतियाँ दुःखरूप हैं, इसलिये ऐसा कहा कि जिसको शुद्धस्वरूपका अनुभव है सो जीव परमात्मारूप जीवके सुखको जाननेके योग्य है। क्योंकि शुद्धस्वरूप अनुभवनेपर अतीन्द्रिय सुख है—ऐसा भाव सूचित किया है। कोई प्रश्न करता है कि कैसा कारण करनेसे जीव शुद्ध होता है ? उत्तर इस प्रकार है कि शुद्धका अनुभव करनेसे जीव शुद्ध होता है। "किल यदि कोऽपि सुधीः अन्तः कलयति" [किल] निश्चयसे [यदि] जो [कोऽपि] कोई जीव [अन्तः कलयति] शुद्धस्वरूपको निरन्तर अनुभवता है। कैसा है जीव ? "सुधीः" शुद्ध है बुद्धि जिसकी। क्या करके अनुभवता है ? "रभसा बन्धं निर्भिद्य" [रभसा] उसी काल [बन्धं] द्रव्यपिण्डरूप मिथ्यात्व कर्मके [निर्भिद्य] उदयको मेट करके अथवा मूलसे सत्ता मेट करके, तथा "हठात् मोहं व्याहत्य" [हठात्] बलसे [मोहं] मिथ्यात्वरूप जीवके परिणामको [व्याहत्य] समूल नाश करके। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादि कालका मिथ्यादृष्टि ही जीव काललब्धिके प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वके ग्रहणकालके पूर्व तीन करण करता है। वे तीन करण अन्तर्मुहूर्तमें होते हैं। करण करनेपर द्रव्यपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिटती है। उस शक्तिके मिटनेपर भावमिथ्यात्वरूप जीवका परिणाम मिटता है। जिस प्रकार धतूराके रसका पाक मिटनेपर गहलपना मिटता है। कैसा है बन्ध अथवा मोह ? "भूतं भान्तं अभूतं एव" [एव] निश्चयसे [भूतं] अतीत काल सम्बन्धी, [भान्तं] वर्तमान काल सम्बन्धी, [अभूतं] आगामी कालसम्बन्धी। भावार्थ इस प्रकार है—त्रिकाल संस्काररूप है जो शरीरादिमें आत्मबुद्धि उसके मिटनेपर जो जीव शुद्ध जीवको अनुभवता है वह जीव निश्चयसे कर्मोंसे मुक्त होता है ॥१२॥

(वसन्ततिलका)

आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा सुनिष्प्रकम्पं एकोऽस्ति" [आत्मा] चेतन द्रव्य [सुनिष्प्रकम्पं] अशुद्ध परिणमनसे रहित [एकः] शुद्ध [अस्ति] होता है। कैसा है आत्मा ? "नित्यं समन्तात् अवबोधघनः" [नित्यं] सदाकाल [समन्तात्] सर्वाङ्ग [अवबोधघनः] ज्ञानगुणका समूह है—ज्ञानपुञ्ज है। क्या करके आत्मा शुद्ध होता है ? "आत्मना आत्मनि निवेश्य" [आत्मना] अपनेसे [आत्मनि] अपने ही में [निवेश्य] प्रविष्ट होकर। भावार्थ इस प्रकार है कि आत्मानुभव परद्रव्यकी सहायतासे रहित है। इस कारण अपने ही में अपनेसे आत्मा शुद्ध होता है। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि इस अवसरपर तो ऐसा कहा कि आत्मानुभव करनेपर आत्मा शुद्ध होता है और कहींपर यह कहा है कि ज्ञानगुण-मात्र अनुभव करनेपर आत्मा शुद्ध होता है सो इसमें विशेषता क्या है ? उत्तर इस प्रकार है कि विशेषता तो कुछ भी नहीं है। वही कहते हैं—"या शुद्धनयात्मिका आत्मानुभूतिः इति किल इयं एव ज्ञानानुभूतिः इति बुद्ध्वा" [या] जो [आत्मानुभूतिः] आत्मद्रव्यका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद है। कैसी है अनुभूति ? [शुद्धनयात्मिका] शुद्धनय अर्थात् शुद्धवस्तु सो ही है आत्मा अर्थात् स्वभाव जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है—निरुपाधिरूपसे जीवद्रव्य जैसा है वैसा ही प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आवे इसका नाम शुद्धात्मानुभव है। [किल] निश्चयसे [इयं एव ज्ञानानुभूतिः] यह जो आत्मानुभूति कही वही ज्ञानानुभूति है [इतिबुद्ध्वा] इतनामात्र जानकर। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तुका जो प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद, उसको नामसे आत्मानुभव ऐसा कहा जाय अथवा ज्ञानानुभव ऐसा कहा जाय। नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है। ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंगमें और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशाङ्ग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशाङ्गज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है, इसलिए शुद्धात्मानुभूतिके होनेपर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं है ॥१३॥

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा ।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ॥१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् महः नः अस्तु" [तत्] वही [महः] शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु [नः] हमारे [अस्तु] हो। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूपका अनुभव उपादेय है, अन्य समस्त हेय है। कैसा है वह 'महः' ? "परमं" उत्कृष्ट है। और कैसा है 'महः' ? "अखण्डितं" खण्डित नहीं है—परिपूर्ण है। भावार्थ इस प्रकार है कि इन्द्रियज्ञान खण्डित है सो यद्यपि वर्तमान कालमें उसरूप परिणत हुआ है तथापि स्वरूपसे ज्ञान अतीन्द्रिय है। और कैसा है ? "अनाकुलं" आकुलतासे रहित है। भावार्थ इस प्रकार है कि यद्यपि संसार अवस्थामें कर्मजनित सुख-दुःखरूप परिणमता है तथापि स्वाभाविक सुखस्वरूप है। * और कैसा है ? "अन्तर्बहिः ज्वलत्" [अन्तः] भीतर [बहिः] बाहर [ज्वलत्] प्रकाशरूप परिणत हो रहा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु असंख्यातप्रदेशी है, ज्ञानगुण सब प्रदेशोंमें एक समान परिणम रहा है। कोई प्रदेशमें घट-बढ़ नहीं है। और कैसा है ? "सहजं" स्वयंसिद्ध है। और कैसा है ? "उद्विलासं" अपने गुण-पर्यायसे धाराप्रवाहरूप परिणमता है। और कैसा है ? "यत् (महः) सकलकालं एकरसं आलम्बते" [यत्] जो [महः] ज्ञानपुञ्ज [सकलकालं] त्रिकाल ही [एकरसं] चेतनास्वरूपको [आलम्बते] आधारभूत है। कैसा है एकरस ? "चिदुच्छलननिर्भरं" [चित्] ज्ञान [उच्छलन] परिणमन उससे [निर्भरं] भरितावस्थ है। और कैसा है एकरस ? "लवणखिल्यलीलायितं" [लवण] क्षाररसकी [खिल्य] काँकरीकी [लीलायितं] परिणतिके समान जिसका स्वभाव है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार नमककी काँकरी सर्वांग ही क्षार है उसी प्रकार चेतनद्रव्य सर्वांग ही चेतन है ॥१४॥

(अनुष्टुप्)

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः ।
साध्य-साधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

---

* पं० श्रीराजमल्लजीकी टीकामें यहाँ "अनंतम" पदका अर्थ करना रह गया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सिद्धिमभीप्सुभिः एष आत्मा नित्यं समु पास्यताम्" [सिद्धिं] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षको [अभीप्सुभिः] उपादेयरूपसे अनुभव करनेवाले जीवों को [एष आत्मा] उपादेय ऐसा अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य [नित्यं] सदाकाल [समुपास्यताम्] अनुभवना। कैसा है आत्मा ? "ज्ञानघनः" [ज्ञान] स्व-परग्राहक शक्तिका [घनः] पुञ्ज है। और कैसा है ? "एकः" समस्त विकल्प रहित है। और कैसा है ? "साध्य-साधकभावेन द्विधा" [साध्य] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष [साधक] मोक्षका कारण शुद्धोपयोगलक्षण शुद्धात्मानुभव [भावेन] ऐसी जो दो अवस्था उनके भेदसे [द्विधा] दो प्रकारका है। भावार्थ इस प्रकार है कि एक ही जीवद्रव्य कारण-रूप भी अपनेमें ही परिणमता है और कार्यरूप भी अपनेमें ही परिणमता है। इस कारण मोक्ष जानेमें किसी द्रव्यान्तरका सहारा नहीं है, इसलिये शुद्ध आत्माका अनुभव करना चाहिये ॥१५॥

(अनुष्टुप्)

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा मेचकः" [आत्मा] चेतन द्रव्य [मेचकः] मलिन है। किसकी अपेक्षा मलिन है ? "दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वात्" सामान्यरूपसे अर्थग्राहक शक्तिका नाम दर्शन है, विशेषरूपसे अर्थग्राहक शक्तिका नाम ज्ञान है और शुद्धत्वशक्तिका नाम चारित्र है। इस प्रकार शक्तिभेद करनेपर एक जीव तीन प्रकार होता है। इससे मलिन कहनेका व्यवहार है। "आत्मा अमेचकः" [आत्मा] चेतन द्रव्य [अमेचकः] निर्मल है। किसकी अपेक्षा निर्मल है ? "स्वयं एकत्वतः" [स्वयं] द्रव्यका सहज [एकत्वतः] निर्भेदपना होनेसे, ऐसा निश्चयनय कहा जाता है। "आत्मा प्रमाणतः समं मेचकः अमेचकोऽपि च" [आत्मा] चेतनद्रव्य [समं] एक ही काल [मेचकः अमेचकोऽपि च] मलिन भी है और निर्मल भी है। किसकी अपेक्षा ? [प्रमाणतः] युगपत् अनेक धर्मग्राहक ज्ञानकी अपेक्षा। इसलिये प्रमाणदृष्टिसे देखनेपर एक ही काल जीवद्रव्य भेदरूप भी है, अभेदरूप भी है ॥१६॥

(अनुष्टुप्)

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एकोऽपि व्यवहारेण मेचकः" [एकोऽपि] द्रव्य-दृष्टिसे यद्यपि जीवद्रव्य शुद्ध है तो भी [व्यवहारेण] गुण-गुणीरूप भेद-दृष्टिसे [मेचकः] मलिन है। सो भी किसकी अपेक्षा ? "त्रिस्वभावत्वात्" [त्रि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन हैं [**स्वभावत्वात्**] सहजगुण जिसके, ऐसा होनेसे। वह भी कैसा होनेसे ? "दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः त्रिभिः परिणतत्वतः" क्योंकि वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन गुणरूप परिणमता है, इसलिये भेदबुद्धि भी घटित होती है ॥१७॥

(अनुष्टुप्)

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः ।
सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तु परमार्थेन एककः अमेचकः" [तु] पद द्वारा दूसरा पक्ष क्या है यह व्यक्त किया है। [**परमार्थेन**] शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे [एककः] शुद्ध जीववस्तु [**अमेचकः**] निर्मल है–निर्विकल्प है। कैसा है परमार्थ ? "व्यक्तज्ञातृत्व-ज्योतिषा" [**व्यक्त**] प्रगट है [ज्ञातृत्व] ज्ञानमात्र [**ज्योतिषा**] प्रकाश-स्वरूप जिसमें ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध-निर्भेद वस्तुमात्रग्राहक ज्ञान निश्चयनय कहा जाता है। उस निश्चयनयसे जीवपदार्थ सर्वभेदरहित शुद्ध है। और कैसा होनेसे शुद्ध है ? "सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वात्" [**सर्व**] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म अथवा ज्ञेयरूप परद्रव्य ऐसे जो [**भावान्तर**] उपाधिरूप विभावभाव उनका [**ध्वंसि**] मेटनशील है [**स्वभावत्वात्**] निंज स्वरूप जिसका, ऐसा स्वभाव होनेसे शुद्ध है ॥१८॥

(अनुष्टुप्)

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मेचकामेचकत्वयोः आत्मनः चिन्तया एव अलं" आत्मा [**मेचक**] मलिन है और [**अमेचक**] निर्मल है, इस प्रकार ये दोनों नय पक्षपातरूप हैं। [**आत्मनः**] चेतनद्रव्यके ऐसे [**चिन्तया**] विचारसे [**अलं**] बस हो। ऐसा विचार करनेसे तो साध्यकी सिद्धि नहीं होती [**एव**] ऐसा निश्चय जानना। भावार्थ इस प्रकार है कि श्रुतज्ञानसे आत्मस्वरूप विचारनेपर बहुत विकल्प उत्पन्न होते हैं। एक पक्षसे विचारनेपर आत्मा अनेक रूप है, दूसरे पक्षसे विचारनेपर आत्मा अभेदरूप है। ऐसे विचारते हुए तो स्वरूप अनुभव नहीं। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि विचारते

हुए तो अनुभव नहीं, तो अनुभव कहाँ है ? उत्तर इस प्रकार है कि प्रत्यक्षरूपसे वस्तुको आस्वादते हुए अनुभव है । वही कहते हैं—"दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः साध्यसिद्धिः" [**दर्शन**] शुद्धस्वरूपका अवलोकन, [**ज्ञान**] शुद्धस्वरूपका प्रत्यक्ष जानपना, [**चारित्र**] शुद्धस्वरूपका आचरण ऐसे कारण करनेसे [**साध्य**] सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षकी [**सिद्धिः**] प्राप्ति होती है । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूपका अनुभव करनेपर मोक्षकी प्राप्ति है । कोई प्रश्न करता है कि इतना ही मोक्षमार्ग है कि कुछ और भी मोक्षमार्ग है । उत्तर इस प्रकार है कि इतना ही मोक्षमार्ग है । "न चान्यथा" [**च**] पुनः [**अन्यथा**] अन्य प्रकारसे [**न**] साध्यसिद्धि नहीं होती ॥१९॥

(मालिनी)

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकतायाः
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदं आत्मज्योतिः सततं अनुभवामः" [**इदं**] प्रगट [**आत्मज्योतिः**] चैतन्यप्रकाशको [**सततं**] निरन्तर [**अनुभवामः**] प्रत्यक्षरूपसे हम आस्वादते हैं । कैसी है आत्मज्योति ? "कथमपि समुपात्तत्रित्वं अपि एकतायाः अपतितं" [**कथमपि**] व्यवहारदृष्टिसे [**समुपात्तत्रित्वं**] ग्रहण किया है तीन भेदोंको जिसने ऐसी है तथापि [**एकतायाः**] शुद्धतासे [**अपतितं**] गिरती नहीं है । और कैसी है आत्मज्योति ? "उद्गच्छत्" प्रकाशरूप परिणमती है । और कैसी है ? "अच्छं" निर्मल है । और कैसी है ? "अनन्तचैतन्यचिह्नं" [**अनन्त**] अतिबहुत [**चैतन्य**] ज्ञान है [**चिह्नं**] लक्षण जिसका ऐसी है । कोई आशंका करता है कि अनुभवको बहुतकर दृढ़ किया सो किस कारण ? वही कहते हैं—"यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धिः न खलु न खलु" [**यस्मात्**] जिस कारण [**अन्यथा**] अन्य प्रकार [**साध्यसिद्धिः**] स्वरूपकी प्राप्ति [**न खलु न खलु**] नहीं होती नहीं होती, ऐसा निश्चय है ॥२०॥

(मालिनी)

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।

प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः सन्ततं स्युस्त एव ॥२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये अनुभूतिं लभन्ते" [ये] जो कोई निकट संसारी जीव [अनुभूतिं] शुद्ध जीववस्तुके आस्वादको [लभन्ते] प्राप्त करते हैं। कैसी है अनुभूति ? "भेदविज्ञानमूलां" [भेद] स्वस्वरूप-परस्वरूपको द्विधा करना ऐसा जो [विज्ञान] जानपना वही है [मूलां] सर्वस्व जिसका ऐसी है। और कैसी है ? "अचलितं" स्थिरतारूप है। ऐसी अनुभूति कैसे प्राप्त होती है, वही कहते हैं—कथमपि स्वतो वा अन्यतो वा" [कथमपि] अनन्त संसारमें भ्रमण करते हुए कैसे ही करके [illegible] प्राप्त होती है तब सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। तब अनुभव होता है; [स्वतो वा] [illegible] कर्मका उपशम होनेपर उपदेशके बिना ही अनुभव होता है, अथवा [अन्यतो वा] अन्तरङ्गमें मिथ्यात्व कर्मका उपशम होनेपर और बहिरंगमें गुरुके समीप [illegible] मिलनेपर अनुभव होता है। कोई प्रश्न करता है कि जो अनुभवको प्राप्त [illegible] अनुभवको प्राप्त करनेसे कैसे होते हैं ? उत्तर इस प्रकार है कि वे निर्विकार [illegible]—"त एव सन्ततं मुकुरवत् अविकाराः स्युः" [ते एव] अर्थात् वे [illegible] [सन्ततं] निरन्तर [मुकुरवत्] दर्पणके समान [अविकाराः] रागद्वेष रहित [illegible] हैं ? । "प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैः" [प्रतिफलन] [illegible] [निमग्न] गर्भित जो [अनन्तभाव] सकल द्रव्योंके [स्वभावैः] गुण-[illegible] है। भावार्थ इस प्रकार है—जो जीव के शुद्ध स्वरूप का अनुभव [illegible] पदार्थ उद्दीप्त होते हैं, उसके भाव अर्थात् गुण-पर्याय, [illegible] ॥२१॥

(मालिनी)

[illegible] जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं
[illegible] रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि [illegible] साकमेकः
[illegible] क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

[illegible] [जगत] [illegible] [[illegible]] [illegible] । [illegible]

"इदानीं" तत्काल । भावार्थ इस प्रकार है कि शरीरादि पर द्रव्योंके साथ जीवकी एकत्वबुद्धि विद्यमान है, वह सूक्ष्म कालमात्र भी आदर करने योग्य नहीं है। कैसा है मोह ? "आजन्मलीढं" [आजन्म] अनादिकालसे [लीढं] लगा हुआ है। "ज्ञानं रसयतु" [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [रसयतु] स्वानुभव प्रत्यक्षरूपसे आस्वादो । कैसा है ज्ञान ? "रसिकानां रोचनं" [रसिकानां] शुद्ध स्वरूपके अनुभवशील सम्यग्दृष्टि जीवोंको [रोचनं] अत्यन्त सुखकारी है । और कैसा है ज्ञान ? "उद्यत्" त्रिकाल ही प्रकाशरूप है । कोई प्रश्न करता है कि ऐसा करने पर कार्यसिद्धि कैसी होती है । उत्तर कहते हैं—"इह किल एकः आत्मा अनात्मना साकं तादात्म्यवृत्तिं क्वापि काले कथमपि न कलयति" [इह] मोहका त्याग, ज्ञान वस्तुका अनुभव—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेपर [किल] निःसन्देह [एकः] शुद्ध [आत्मा] चेतनद्रव्य [अनात्मना] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आदि समस्त विभाव परिणामोंके [साकं] साथ [तादात्म्यवृत्तिं] जीव और कर्मके बन्धात्मक एकक्षेत्रसम्बन्धरूप [क्वापि] किसी अतीत, अनागत और वर्तमान सम्बन्धी [काले] समय-घड़ी-प्रहर-दिन-वर्षमें [कथमपि] किसी भी तरह [न कलयति] नहीं ठहरता है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य धातु और पाषाणके संयोगके समान पुद्गलकर्मके साथ मिला हुआ चला आ रहा है और मिला हुआ होनेसे मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप विभाव चेतन परिणामसे परिणमता ही आ रहा है । ऐसे परि-णमते हुए ऐसी दशा निपजी कि जीव द्रव्यका निजस्वरूप जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख और केवलवीर्य, उससे यह जीवद्रव्य भ्रष्ट हुआ तथा मिथ्यात्वरूप विभाव-परिणामसे परिणमते हुए ज्ञानपना भी छूट गया । जीवका निजस्वरूप अनन्तचतुष्टय है, शरीर, सुख, दुःख, मोह, राग, द्वेष इत्यादि समस्त पुद्गलकर्मकी उपाधि है, जीवका स्वरूप नहीं ऐसी प्रतीति भी छूट गई । प्रतीति छूटने पर जीव मिथ्यादृष्टि हुआ । मिथ्या-दृष्टि होता हुआ ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करणशील हुआ । उस कर्मबन्धका उदय होनेपर जीव चारों गतियोंमें भ्रमता है । इसप्रकार संसारकी परिपाटी है । इस संसारमें भ्रमण करते हुए किसी भव्यजीवका जब निकट संसार आ जाता है तब जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करता है । सम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्मोंका उदय मिटता है तथा मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटता है विभावपरिणामके मिटनेपर शुद्धस्वरूपका अनुभव होता है । ऐसी सामग्री मिलनेपर जीवद्रव्य पुद्गलकर्मसे तथा विभाव परिणामसे सर्वथा भिन्न होता है । जीवद्रव्य अपने अनन्त चतुष्टयको प्राप्त होता

है । दृष्टांत ऐसा है कि जिस प्रकार सुवर्णधातु पाषाणमें ही मिली चली आरही है तथापि अग्निका संयोग पाकर पाषाणसे सुवर्ण जुदा होता है ॥२२॥

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् ।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयि मूर्तेः पार्श्ववर्ती भव, अथ मुहूर्तं पृथक् अनुभव" [**अयि**] हे भव्यजीव ! [**मूर्तेः**] शरीरसे [**पार्श्ववर्ती**] भिन्नस्वरूप [**भव**] हो । भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिकालसे जीवद्रव्य (शरीर के साथ) एक संस्काररूप होकर चला आरहा है, इसलिये जीवको ऐसा कहकर प्रतिबोधित किया जाता है कि भो जीव ! ये जितनी शरीरादि पर्याय हैं वे सब पुद्गलकर्मकी हैं तेरी नहीं । इसलिये इन पर्यायोंसे अपने को भिन्न जान । [**अथ**] भिन्न जानकर [**मुहूर्तं**] थोड़े ही काल [**पृथक्**] शरीरसे भिन्न चेतन द्रव्यरूप [**अनुभव**] प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद ले । भावार्थ इस प्रकार है कि शरीर तो अचेतन है, विनश्वर है । शरीरसे भिन्न कोई तो पुरुष है ऐसा जानपना—ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवके भी होती है पर साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं । जब जीवद्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप प्रत्यक्ष आस्वाद आता है तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष भी है । कैसा है अनुभवशील जीव ? "तत्त्वकौतूहली सन्" [**तत्त्व**] शुद्धचैतन्य वस्तुका [**कौतूहली सन्**] स्वरूपको देखना चाहता है, ऐसा होता हुआ । और कैसा होकर ? "कथमपि मृत्वा" [**कथमपि**] किसी प्रकार–किसी उपायसे [**मृत्वा**] मरकरके भी शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करो । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चैतन्यका अनुभव तो सहज साध्य है, यत्नसाध्य तो नहीं है पर इतना कहकर अत्यन्त उपादेयपनेको दृढ़ किया है, यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि अनुभव तो ज्ञानमात्र है, उससे क्या कुछ कार्यसिद्धि है ? वह भी उपदेश द्वारा कहते हैं—"येन मूर्त्या साकं एकत्वमोहं झगिति त्यजसि" [**येन**] जिस शुद्ध चैतन्यके अनुभव-द्वारा [**मूर्त्या साकं**] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मात्मक समस्त कर्मरूप पर्यायके साथ [**एकत्व मोहं**] एक संस्काररूप-'मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यच हूँ, मैं नारकी हूँ

आदि; मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ आदि; मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ आदि तथा मैं यति हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदिरूप प्रतीति' ऐसा है मोह अर्थात् विपरीतपना, उसको [झगिति] अनुभवने मात्रपर [त्यजसि] भो जीव ! अपनी बुद्धिसे तू ही छोड़ेगा। भावार्थ इस प्रकार है कि अनुभव ज्ञानमात्र वस्तु है, एकत्वमोह मिथ्यात्वरूप द्रव्यका विभाव परिणाम है तो भी इनको (अनुभवको और मिथ्यात्वके मिटनेको) आपसमें कारण-कार्यपना है। उसका विवरण—जिसकाल जीवको अनुभव होता है उस काल मिथ्यात्व परिणमन मिटता है, सर्वथा अवश्य मिटता है। जिस काल मिथ्यात्व परिणमन मिटता है, उसकाल अवश्य अनुभवशक्ति होती है। मिथ्यात्व परिणमन जिस प्रकार मिटता है उसीको कहते हैं—"स्वं समालोक्य" [स्वं] अपनी शुद्ध चैतन्य वस्तुका [समालोक्य] स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद कर। कैसा है शुद्धचेतन ? "विलसन्तं" अनादिनिधन प्रगटरूपसे चेतनारूप परिणाम रहा है ॥२३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दश दिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥२४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ पर कोई मिथ्यादृष्टि कुवादी मतान्तरको स्थापता है कि जीव और शरीर एक ही वस्तु है। जैसा कि जैन मानते हैं कि शरीरसे जीवद्रव्य भिन्न है वैसा नहीं है, एक ही है, क्योंकि शरीरका स्तवन करनेपर आत्मा का स्तवन होता है ऐसा जैन भी मानते हैं। उसीको बतलाते हैं—"ते तीर्थेश्वराः वन्द्याः" [ते] अवश्य विद्यमान हैं ऐसे, [तीर्थेश्वराः] तीर्थंकरदेव [वन्द्याः] त्रिकाल नमस्कार करने योग्य हैं। कैसे हैं वे तीर्थंकर ? "ये कान्त्या एव दश दिशः स्नपयन्ति" [ये] तीर्थंकर [कान्त्या] शरीरकी दीप्तिद्वारा [एव] निश्चयसे [दश दिशः] पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण ये चार दिशा, चार कोणरूप विदिशा तथा ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा इन दस दिशाओंको [स्नपयन्ति] प्रक्षालते हैं—पवित्र करते हैं। ऐसे है जो तीर्थंकर उनको नमस्कार है। (जैनों के यहाँ) ऐसा जो कहा सो तो शरीरका वर्णन किया, इसलिये हमें

हैं—"भरेण विभ्रमतिरस्करिणीं आप्लाव्य" [भरेण] मूलसे उखाड़कर दूर किया। सो कौन ? [विभ्रम] विपरीत अनुभव-मिथ्यात्वरूप परिणाम वही है [तिरस्करिणीं] शुद्धस्वरूपको आच्छादनशील अन्तर्जवनिका (अन्दर का परदा) उसको, [आप्लाव्य] मूलसे ही दूर करके। भावार्थ इस प्रकार है कि अखाड़ेमें प्रथम ही अन्तर्जवनिका कपड़े की होती है। उसे दूरकर शुद्धाङ्ग नाचता है, यहाँ भी अनादि कालसे मिथ्यात्व परिणति है। उसके छूटनेपर शुद्धस्वरूप परिणमता है। शुद्धस्वरूप प्रगट होनेपर जो कुछ है वही कहते हैं—"अमी समस्ताः लोकाः शांतरसे समं एव मज्जन्तु" [अमी] जो विद्यमान हैं ऐसे [समस्ताः] जितने [लोकाः] जीव [शान्तरसे] जो अतीन्द्रिय सुख गर्भित है शुद्धस्वरूपका अनुभव उसमें [समं एव] एक ही काल [मज्जन्तु] मग्न होओ—तन्मय होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि अखाड़ेमें तो शुद्धाङ्ग दिखाता है। वहाँ जितने देखनेवाले हैं वे सब एक ही साथ मग्न होकर देखते हैं उसी प्रकार जीवका स्वरूप शुद्धरूप दिखलाया होने पर सर्व ही जीवोंके द्वारा अनुभव करने योग्य है। कैसा है शान्तरस ? "आलोकमुच्छलति" [आलोकं] समस्त त्रैलोक्यमें [उच्छलति] सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है अथवा लोकालोकका ज्ञाता है। अब अनुभव जिस प्रकारका है उस प्रकार कहते हैं। "निर्भरं" अति ही मग्नस्वरूप है ॥३२॥



अजीव अधिकार

(शार्दूल विक्रीडित)

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा-
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत् ॥१-३३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानं विलसति" [ज्ञानं] जीव द्रव्य [विलसति] जैसा है वैसा प्रगट होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि अबतक विधिरूपसे शुद्धांग [illegible] जीवका निरूपण किया अब आगे उसी जीवका प्रतिषेधरूपसे निरूपण करते हैं । उसका विवरण—शुद्ध जीव है, टङ्कोत्कीर्ण है, चिद्रूप है ऐसा कहना विधि कही जाती है । जीवका स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीवके नहीं, भावकर्म जीवका नहीं ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है । कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "मनो ह्लादयत्" [मनः] [illegible] [illegible]न्द्रियको [ह्लादयत्] आनन्दरूप करता हुआ और कैसा होता हुआ ? [illegible] [illegible] कर्मोंसे रहितपनेकर स्वस्वरूपसे परिणत हुआ । और कैसा होता हुआ ? [illegible] [illegible] प्रत्यक्ष होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "आत्मारामं" [[illegible]] [illegible] ही है [आरामं] क्रीड़ावन जिसका ऐसा होता हुआ । और कैसा [illegible] "अनन्तधाम" [अनन्त] मर्यादासे रहित है [धाम] तेजपुञ्ज जिसका [illegible] होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "अध्यक्षेण महसा नित्योदितं" [अध्यक्षेण] [illegible] [महसा] चैतन्यशक्तिके द्वारा [नित्योदितं] त्रिकाल शाश्वत है [illegible] होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "धीरोदात्तं" [धीर] अडोल [illegible] [उदात्तं] [illegible] होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "अनाकुलं" [illegible] रहित अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ । ऐसा जीव

जैसे प्रगट हुआ उसे कहते हैं—"आसंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसात्" [आसंसार] अनादि-कालसे [निबद्ध] जीवसे मिली हुई चली आई है ऐसी [बन्धनविधि] ज्ञानावरणकर्म, दर्शनावरणकर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे हैं जो द्रव्यपिण्डरूप आठकर्म तथा भावकर्मरूप हैं जो राग, द्वेष, मोह परिणाम इत्यादि हैं बहुत विकल्प उनका [ध्वंसात्] विनाश से जीवस्वरूप जैसा कहा है वैसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जल और कीचड़ जिस कालमें एकत्र मिले हुए हैं उसी काल जो स्वरूपका अनुभव किया जाय तो कीचड़ जलसे भिन्न है, जल अपने स्वरूप है, उसी प्रकार संसार अवस्थामें जीव कर्मबन्ध पर्याय रूपसे एक क्षेत्रमें मिला है। उसी अवस्था में जो शुद्ध स्वरूपका अनुभव किया जाय तो समस्त कर्म जीव स्वरूपसे भिन्न हैं। जीव द्रव्य स्वच्छ स्वरूपरूप जैसा कहा वैसा है। ऐसी बुद्धि जिस प्रकारसे उत्पन्न हुई उसीको कहते हैं—"यत्पार्षदान् प्रत्याययत्" [यत्] जिस कारणसे [पार्षदान्] गणधर मुनीश्वरोंको [प्रत्याययत्] प्रतीति उत्पन्न कराकर। किस कारणसे प्रतीति उत्पन्न हुई वही कहते हैं—"जीवाजीव विवेकपुष्कलदृशा" [जीव] चेतनद्रव्य, [अजीव] जड़कर्म-नोकर्म-भावकर्म उनके [विवेक] भिन्नभिन्नपनेसे [पुष्कल] विस्तीर्ण [दृशा] ज्ञानदृष्टिके द्वारा। जीव और कर्मका भिन्न-भिन्न अनुभव करनेपर जीव जैसा कहा गया है वैसा है ॥१-३३॥

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२-३४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"विरम अपरेण अकार्यकोलाहलेन किं" [विरम] भो जीव ! विरक्त हो, हठ मतकार [अपरेण] मिथ्यात्वरूप है [अकार्य] कर्मबन्धको करते हैं [कोलाहलेन किं] ऐसे जो झूठे विकल्प उनसे क्या। उसका विवरण—कोई मिथ्यादृष्टि जीव शरीरको जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव आठ कर्मोंको जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसायको जीव कहता है इत्यादि रूपसे नाना प्रकारके बहुत विकल्प करता है। भो जीव ! इन समस्त ही विकल्पोंको छोड़, क्योंकि वे झूठे हैं। "निभृतः सन् स्वयं एकं पश्य" [निभृतः] एकाग्ररूप [सन्]

होता हुआ [एकं] शुद्धचिद्रूपमात्रका [स्वयं] स्वसंवेदन प्रत्यक्ष रूपसे [पश्य] अनुभव कर। "षण्मासं" विपरीतपना जिस प्रकार छूटे उसी प्रकार छोड़कर "अपि" वारम्वार बहुत क्या कहें। ऐसा अनुभव करनेपर स्वरूप प्राप्ति है इसीको कहते हैं—"ननु हृदय सरसि पुंसः अनुपलब्धिः किं भाति" [ननु] भो जीव! [हृदयसरसि] मनरूपी सरोवरमें है [पुंसः] जो जीवद्रव्य उसकी [अनुपलब्धिः] अप्राप्ति [किंभाति] शोभती है क्या? भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव करनेपर स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा तो नहीं है। "च उपलब्धिः" [च] है तो ऐसा ही है कि [उपलब्धिः] अवश्य प्राप्ति होती है। कैसा है जीव द्रव्य? "पुद्गलात् भिन्नधाम्नः" [पुद्गलात्] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे [भिन्नधाम्नः] भिन्न है चेतनरूप है तेजःपुञ्ज जिसका ऐसा है ॥२–३४॥

(अनुष्टुप्)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥३-३५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं जीवः इयान्" [अयं] विद्यमान है ऐसा [जीवः] चेतनद्रव्य [इयान्] इतना ही है। कैसा है? "चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारः" [चिच्छक्ति] चेतना मात्रसे [व्याप्त] मिला है [सर्वस्वसारः] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण जिसके ऐसा है। "अमी सर्वे अपि पौद्गलिकाः भावाः अतः अतिरिक्ताः" [अमी] विद्यमान हैं ऐसे [सर्वे अपि] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप जितने हैं उन सव [पौद्गलिकाः] अचेतन पुद्गलद्रव्योंसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे [भावाः] अशुद्ध रागादिरूप समस्त विभाव परिणाम [अतः] शुद्धचेतनामात्र जीव वस्तुसे [अतिरिक्ताः] अति ही भिन्न हैं। ऐसे ज्ञानका नाम अनुभव कहते हैं ॥३–३५॥

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम् ॥४-३६॥*

* मुद्रित "आत्मख्याति" टीकामें श्लोक नं० ३५ और ३६ आगे पीछे आया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा आत्मनि इमं आत्मानं कलयतु" [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मनि] अपनेमें [इमं आत्मानं] अपनेको [कलयतु] निरन्तर अनुभवो। कैसा है अनुभव योग्य आत्मा ? "विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तं" [विश्वस्य] समस्त त्रैलोक्यमें [उपरिचरन्तं] सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है। (साक्षात्) ऐसा ही है। बड़ाई करके नहीं कह रहे हैं। और कैसा है ? "चारु" सुख स्वरूप है। और कैसा ? "परं" शुद्ध-स्वरूप है। और कैसा है ? "अनन्तं" शाश्वत है। अब जैसे अनुभव होता है वही कहते हैं—"चिच्छक्तिरिक्तं सकलं अपि अन्हाय विहाय" [चिच्छक्तिरिक्तं] ज्ञानगुणसे शून्य ऐसे [सकलं अपि] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मको [अन्हाय] मूलसे [विहाय] छोड़कर। भावार्थ इस प्रकारहै कि जितनी कुछ कर्मजाति है वह समस्त हेय है। उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं ह। और अनुभव जैसे होता है वही कहते हैं—"चिच्छ-क्तिमात्रं स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य" [चिच्छक्तिमात्रं] ज्ञानगुण ही है स्वरूप जिसका ऐसे [स्वं च] अपनेको [स्फुटतरं] प्रत्यक्ष रूपसे [अवगाह्य] आस्वादकर। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणाम हैं वे सब जीवके नहीं हैं। शुद्धचैतन्यमात्र जीव है ऐसा अनुभव कर्तव्य है ॥४-३६॥

(शालिनी)

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५-३७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य पुंसः सर्व एव भावाः भिन्नाः" [अस्य] विद्यमान है ऐसे [पुंसः] शुद्ध चैतन्य द्रव्यसे [सर्वे] जितने हैं वे सब [भावाः] अशुद्धविभाव परिणाम [एव] निश्चयसे [भिन्नाः] भिन्न है—जीव स्वरूपसे निराले हैं। वे कौनसे भाव ? "वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा" [वर्णाद्या] एक- कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप है वे तो जीवके स्वरूपसे निराले ही हैं [वा] एक तो ऐसा है कि [रागमोहादयः] विभावरूप अशुद्धरूप हैं, देखनेपर चेतन जैसे दीखते है, ऐसे जो राग-द्वेष-मोहरूप जीवसम्बन्धी परिणाम वे भी शुद्धजीव स्वरूपको अनुभवनेपर जीवस्वरूपसे भिन्न हैं। यहां पर कोई प्रश्न करता है कि विभाव परिणामको जीवस्वरूपसे भिन्न

कहा सो भिन्नका भावार्थ तो मैं समझा नहीं। भिन्न कहनेपर, भिन्न हैं। सो वस्तुरूप हैं कि भिन्न हैं सो अवस्तुरूप हैं ? उत्तर इस प्रकार है कि अवस्तुरूप हैं। "तेन एव अन्तस्तत्त्वत: पश्यत: अमी दृष्टा: नो स्यु:" [**तेन एव**] उसी कारणसे [**अन्तस्तत्त्वत: पश्यत:**] शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील है जो जीव उसको [**अमी**] विभाव परिणाम [**दृष्टा:**] दृष्टिगोचर [**नो स्यु:**] नहीं होते। "परं एकं दृष्टं स्यात्" [**परं**] उत्कृष्ट है ऐसा [**एकं**] शुद्ध चैतन्य द्रव्य [**दृष्टं**] दृष्टिगोचर [**स्यात्**] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि वर्णादिक और रागादिक विद्यमान दिखलाई पड़ते हैं तथापि स्वरूप अनुभवनेपर स्वरूपमात्र है, विभावपरिणति रूप वस्तु तो कुछ नहीं ॥५-३७॥

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किञ्चि-
त्तदेव तत्स्यान्न कथं च नान्यत् ।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिम् ॥६-३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत्र येन यत् किञ्चित् निर्वर्त्यते तत् तत् एव स्यात् कथञ्चन न अन्यत्" [**अत्र**] वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर [**येन**] मूलकारणरूप वस्तुसे [**यत्किञ्चित्**] जो कुछ कार्य-निष्पत्तिरूप वस्तुका परिणाम [**निर्वर्त्यते**] पर्याय-रूप निपजता है, [**तत्**] जो निपजा है वह पर्याय [**तत् एवस्यात्**] निपजता हुआ जिस द्रव्यसे निपजा है वही द्रव्य है [**कथञ्चन न अन्यत्**] निश्चयसे अन्य द्रव्यरूप नहीं हुआ है। वही दृष्टांत द्वारा कहते हैं। यथा—"इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्त" [**इह**] प्रत्यक्ष है कि [**रुक्मेण**] चाँदी धातुसे [**असिकोशं**] तलवारकी म्यान [**निर्वृत्तं**] उत्पन्न मौजूद थी सो "रुक्मं पश्यन्ति कथञ्चन न असिं" [**रुक्मं**] जो म्यान मौजूद हुई वह वस्तु तो चाँदी ही है ऐसा [**पश्यन्ति**] प्रत्यक्षरूपसे सर्वलोक देखता है और मानता है [**कथञ्चन**] चाँदी की तलवार ऐसा कहने में तो कहा जाता है तथापि [**न असिं**] चाँदी की तलवार नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि चाँदीकी म्यान में तलवार रहती है। इस कारण 'चाँदीकी तलवार' ऐसा कहनेमें आता है¹। तथापि चाँदीकी म्यान है, तलवार लोहेकी है, चाँदीकी तलवार नहीं है ॥६-३८॥

१—[illegible] की तलवार म्यान माहे धारी रहे छे एवी कहावत छे, तिहितें रूपाको धांडो कहतां एवो [illegible]

(उपजाति)

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७-३९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"हि इदं वर्णादिसामग्र्यं एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदन्तु" [हि] निश्चयसे [इदं] विद्यमान [वर्णादिसामग्र्यं] गुणस्थान, मार्गणास्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं वे समस्त ही [एकस्य पुद्गलस्य] अकेले पुद्गल द्रव्यका [निर्माणं] कार्य अर्थात् पुद्गल द्रव्यका चित्राम जैसा है ऐसा [विदन्तु] भो जीव ! निःसन्देहरूपसे जानो । "ततः इदं पुद्गल एव अस्तु न आत्मा" [ततः] उस कारणसे [इदं] शरीरादि सामग्री [पुद्गलः] जिस पुद्गल द्रव्यसे हुई है वही पुद्गल द्रव्य है । [एव] निश्चयसे [अस्तु] वही है । [न आत्मा] आत्मा अजीव द्रव्यरूप नहीं हुआ । "यतः सः विज्ञानघनः" [यतः] जिस कारणसे [सः] जीवद्रव्य [विज्ञानघनः] ज्ञान गुणका समूह है । "ततः अन्यः" [ततः] उस कारणसे [अन्यः] जीवद्रव्य भिन्न है, शरीरादि पर द्रव्य भिन्न हैं । भावार्थ इस प्रकार है कि लक्षण भेदसे वस्तुका भेद होता है, इसलिये चैतन्यलक्षणसे जीववस्तु भिन्न है, अचेतनलक्षणसे शरीरादि भिन्न हैं । यहां पर कोई आशंका करता है कि कहनेमें तो ऐसा ही कहा जाता है कि एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव इत्यादि; देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि; रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि । उत्तर इस प्रकार है कि कहनेमें तो व्यवहारसे ऐसा ही कहा जाता है, निश्चयसे ऐसा कहना झूठा है । सो कहते हैं ॥७-३९॥

(अनुष्टुप्)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८-४०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—दृष्टांत कहते हैं—"चेत् कुम्भः घृतमयः न" [चेत्] जो ऐसा है कि [कुम्भः] घड़ा [घृतमयो न] घीका तो नहीं है, मिट्टीका है ।

[आलोच्य] विचारकर [चैतन्यं] चेतनमात्रका [आलम्ब्यता] अनुभव करो। कैसा है चैतन्य? "समुचितं" अनुभव करने योग्य है। और कैसा है? "अव्यापि न" जीव द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होता है। "अतिव्यापि न" जीवसे अन्य हैं जो पाँच द्रव्य उनसे अन्य है। और कैसा है? "व्यक्तं" प्रगट है। और कैसा है? "व्यंजितजीवतत्त्वं" [व्यंजित] प्रगट किया है [जीवतत्त्वं] जीवके स्वरूपको जिसने, ऐसा है। और कैसा है? "अचलं" प्रदेशकम्पसे रहित है। "ततः जगत् जीवस्य तत्त्वं अमूर्तत्वं उपास्य न पश्यति" [ततः] उस कारणसे [जगत्] सब जीवराशि [जीवस्य तत्त्वं] जीवके निज स्वरूपको [अमूर्तत्वं] स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणसे रहितपना [उपास्य] मानकर [न पश्यति] नहीं अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि 'जीव अमूर्त' ऐसा जानकर अनुभव किया जाता है सो ऐसे तो अनुभव नहीं। जीव अमूर्त तो है परन्तु अनुभव कालमें ऐसा अनुभवता है कि 'जीव चैतन्यलक्षण'। "यतः अजीवः द्वेधा अस्ति" [यतः] जिस कारणसे [अजीवः] अचेतन द्रव्य [द्वेधा अस्ति] दो प्रकारका है। वे दो प्रकार कौनसे हैं? "वर्णाद्यैः सहितः तथा विरहितः" [वर्णाद्यैः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शसे [सहितः] संयुक्त है, क्योंकि एक पुद्गलद्रव्य ऐसा भी है। तथा [विरहितः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित भी है, क्योंकि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य और आकाशद्रव्य ये चार द्रव्य और भी है, वे अमूर्तद्रव्य कहे जाते हैं। वह अमूर्तपना अचेतन द्रव्यको भी है। इसलिये अमूर्तपना जानकर जीवका अनुभव नहीं किया जाता, चेतन जानकर जीवका अनुभव किया जाता है ॥१०-४२॥

(वसन्ततिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो वत नानटीति ॥११-४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी जनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्वयं अनुभवति" [ज्ञानी जनः] सम्यग्दृष्टि जीव [लक्षणतः] जीवका लक्षण चेतना तथा अजीवका लक्षण जड़ ऐसे बड़ा भेद है, इसलिये [जीवात्] जीवसे [अजीवं] पुद्गल आदि [विभिन्नं] सहज ही भिन्न है [इति] इस प्रकार [स्वयं] स्वानुभव

तमः भिन्दन्" [ज्ञानीभूय] अनादिसे मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, जीव-कर्मकी एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था सो छूटा, शुद्ध चेतन-अनुभव हुआ, ऐसा होनेपर [तमः] मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको [भिन्दन्] छेदता हुआ। किसके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अंधकार छूटा ? "इति उद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण" [इति] जो कहा है [उद्दाम] बलवान् है ऐसा [विवेक] भेदज्ञानरूपी [घस्मरमहोभारेण] सूर्यके तेजके समूह द्वारा। आगे जैसा विचार करनेपर भेदज्ञान होता है वही कहते हैं—"व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेत्" [व्याप्य] समस्त गुणरूप वा पर्यायरूप भेद-विकल्प तथा [व्यापकता] एक द्रव्यरूप वस्तु [तदात्मनि] एक सत्त्वरूप वस्तुमें [भवेत्] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सुवर्ण पीला, भारी, चिकना ऐसा कहनेका है, परन्तु एक सत्त्व है वैसे जीव द्रव्य ज्ञाता, दृष्टा ऐसा कहनेका है, परन्तु एक सत्त्व है। ऐसे एक सत्त्वमें व्याप्य-व्यापकता भवेत् अर्थात् भेदबुद्धि की जाय तो व्याप्य-व्यापकता होती है। विवरण—व्यापक अर्थात् द्रव्य परिणामी अपने परिणामका कर्ता होता है। व्याप्य अर्थात् वह परिणाम द्रव्यने किया। जिसमें ऐसा भेद किया जाय तो होता है, नहीं किया जाय तो नहीं होता। "अतदात्मनि अपि न एव" [अतदात्मनि] जीव सत्त्वसे पुद्गल द्रव्यका सत्त्व भिन्न है, [अपि] निश्चयसे [न एव] व्याप्य-व्यापकता नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे उपचारमात्रसे द्रव्य अपने परिणामका कर्ता है, वही परिणाम द्रव्यका किया हुआ है वैसे अन्य द्रव्यका कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्रसे भी नहीं है, क्योंकि एक सत्त्व नहीं, भिन्नसत्त्व हैं। "व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते कर्तृ-कर्मस्थितिः का" [व्याप्य-व्यापकभाव] परिणाम-परिणामीमात्र भेदकी [सम्भवं] उत्पत्तिके [ऋते] विना [कर्तृ-कर्मस्थितिः का] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मका कर्ता जीवद्रव्य ऐसा अनुभव घटता नहीं। कारण कि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक सत्ता नहीं, भिन्न सत्ता है। ऐसे ज्ञान सूर्यके द्वारा मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटता है और जीव सम्यग्दृष्टि होता है ॥४८-४९॥

(स्रग्धरा)

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृ-कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥५-५०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यावत् विज्ञानार्चिः न चकास्ति तावत् अनयोः कर्तृ-कर्मभ्रममतिः अज्ञानात् भाति" [यावत्] जितने काल [विज्ञानार्चिः] भेदज्ञानरूप अनुभव [न चकास्ति] नहीं प्रगट होता है [तावत्] उतने काल [अनयोः] जीव-पुद्गलमें [कर्तृ-कर्मभ्रममतिः] ज्ञानावरणादिका कर्ता जीवद्रव्य ऐसी है जो मिथ्या प्रतीति वह [अज्ञानात् भाति] अज्ञानपनेसे है। वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नहीं है। कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव सो अज्ञानपना है, सो क्यों है ? "ज्ञानी पुद्गलः च व्याप्तृ-व्याप्यत्वं अन्तः कलयितुं असहौ" [ज्ञानी] जीववस्तु [च] और [पुद्गलः] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [व्याप्तृ-व्याप्यत्वं] परिणामी-परिणामभावरूपसे [अन्तः कलयितुं] एक संक्रमणरूप होनेको [असहौ] असमर्थ हैं, क्योंकि "नित्यं अत्यन्तभेदात्" [नित्यं] द्रव्यस्वभावसे [अत्यन्तभेदात्] अति ही भेद है। विवरण—जीवद्रव्यके भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव, पुद्गलद्रव्यके भिन्न प्रदेश अचेतन स्वभाव ऐसे भेद घना। कैसा है ज्ञानी ? "इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि" [इमां] प्रसिद्ध है ऐसे [स्व] अपने और [पर] समस्त ज्ञेय-वस्तुके [परिणतिं] द्रव्य-गुण-पर्यायका अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका [जानन्] ज्ञाता है। [अपि] (जीव तो) ऐसा है। तो फिर कैसा है पुद्गल ? वही कहते है—"इमां स्व-परपरिणतिं अजानन्" [इमां] प्रगट है ऐसे [स्व] अपने और [पर] अन्य समस्त पर द्रव्योंके [परिणतिं] द्रव्य-गुण-पर्याय आदिको [अजानन्] नहीं जानता है, ऐसा है पुद्गलद्रव्य। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञाता है, पुद्गलकर्म ज्ञेय है ऐसा जीवको कर्मको ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध है, तथापि व्याप्य-व्यापकसम्बन्ध नहीं है; द्रव्योंका अत्यन्त भिन्नपना है, एकपना नहीं है। कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव ? "अयं क्रकचवत् सद्यः भेदं उत्पाद्य" जिसने करौंतके समान शीघ्र ही जीव और पुद्गलका भेद उत्पन्न किया है ॥५-५०॥

(आर्या)

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥६-५१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः परिणमति स कर्ता भवेत्" [यः] जो कोई सत्तामात्र वस्तु [परिणमति] जो कोई अवस्था है उसरूप आप ही है, इस कारण [स कर्ता भवेत्] उस अवस्थाका सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है। और ऐसा कहना

विरुद्ध भी नहीं है, कारण कि अवस्था भी है । "यः परिणामः तत्कर्म" [**यः परिणामः**] उस द्रव्यका जो कुछ स्वभावपरिणाम है [**तत् कर्म**] वह द्रव्यका परिणाम कर्म इस नामसे कहा जाता है । "या परिणतिः सा क्रिया" [**या परिणतिः**] द्रव्यका जो कुछ पूर्व अवस्थासे उत्तर अवस्थारूप होना है [**सा क्रिया**] उसका नाम क्रिया कहा जाता है । जैसे मृत्तिका घटरूप होती है, इसलिये मृत्तिका कर्ता कहलाती है, उत्पन्न हुआ घड़ा कर्म कहलाता है तथा मृत्तिका पिण्डसे घटरूप होना क्रिया कहलाती है । वैसे ही सत्त्वरूप वस्तु कर्ता कहा जाता है, उस द्रव्यका उत्पन्न हुआ परिणाम कर्म कहा जाता है और उस क्रियारूप होना क्रिया कही जाती है । "वस्तुतया त्रयं अपि न भिन्नं" [**वस्तुतया**] सत्तामात्र वस्तुके स्वरूपका अनुभव करनेपर [**त्रयं**] कर्ता-कर्म-क्रिया ऐसे तीन भेद [**अपि**] निश्चयसे [**न भिन्नं**] तीन सत्त्व तो नहीं, एक ही सत्त्व है । भावार्थ इस प्रकार है कि कर्ता-कर्म-क्रियाका स्वरूप तो इस प्रकार है, इसलिये ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्मका कर्ता जीवद्रव्य है ऐसा जानना झूठा है, क्योंकि जीवद्रव्यका और पुद्गलद्रव्यका एक सत्त्व नहीं; कर्ता-कर्म-क्रियाकी कौन घटना ? ॥६-५१॥

(आर्या)

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य ।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥७-५२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सदा एकः परिणमति" [**सदा**] त्रिकालमें [**एकः**] सत्तामात्र वस्तु [**परिणमति**] अपनेमें अवस्थान्तररूप होती है । "सदा एकस्य परिणामः जायते" [**सदा**] त्रिकालगोचर [**एकस्य**] सत्तामात्र है वस्तु उसकी [**परिणामः जायते**] अवस्था वस्तुरूप है । भावार्थ इस प्रकार है कि यथा सत्तामात्र वस्तु अवस्थारूप है तथा अवस्था भी वस्तुरूप है । "परिणतिः एकस्य स्यात्" [**परिणतिः**] क्रिया [**एकस्य स्यात्**] सो भी सत्तामात्र वस्तुकी है । भावार्थ इस प्रकार है कि क्रिया भी वस्तुमात्र है, वस्तुसे भिन्न सत्त्व नहीं । "यतः अनेकं अपि एकं एव" [**यतः**] जिस कारणसे [**अनेकं**] एक सत्त्वके कर्ता-कर्म-क्रियारूप तीन भेद [**अपि**] यद्यपि इस प्रकार भी हैं तथापि [**एकं एव**] सत्तामात्र वस्तु है । तीन ही विकल्प झूठे हैं । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गलपिण्ड कर्मका कर्ता जीववस्तु है ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, क्योंकि एक सत्त्वमें कर्ता-कर्म-क्रिया उपचारसे कहा जाता है ।

भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य उनको कर्ता-कर्म-क्रिया कहाँ से घटेगा ? ॥७-५२॥

(आर्या)

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत ।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव स्यात् ॥८-५३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"खलु उभौ न परिणमतः" [**खलु**] ऐसा निश्चय है कि [**उभौ**] एक चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य [**न परिणमतः**] मिलकर एक परिणामरूप नहीं परिणमते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन लक्षणरूप शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप अपनेमें व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। वस्तुका स्वरूप ऐसे तो है। परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है राग-द्वेषरूप परिणाम उनसे परिणमते हैं ऐसा तो नहीं है। "उभयोः परिणामः न प्रजायेत" [**उभयोः**] जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य उनके [**परिणामः**] दोनों मिलकर एक पर्यायरूप परिणाम [**न प्रजायेत**] नहीं होते हैं। "उभयोः परिणतिः न स्यात्" [**उभयोः**] जीव और पुद्गलकी [**परिणतिः**] मिलकर एक क्रिया [**न स्यात्**] नहीं होती है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है। "यतः अनेकं अनेकं एव सदा" [**यतः**] जिस कारणसे [**अनेकं**] भिन्न सत्तारूप है जीव-पुद्गल [**अनेकं एव सदा**] वे तो जीव-पुद्गल सदा ही भिन्नरूप हैं, एकरूप कैसे हो सकते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य भिन्न सत्तारूप हैं सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर एक सत्तारूप होवें तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो। सो तो एकरूप होते नहीं, इसलिये जीव-पुद्गलका आपसमें कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नहीं होता ॥८-५३॥

(आर्या)

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥९-५४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ पर कोई मतान्तर निरूपण करेगा कि द्रव्यकी अनन्त शक्तियाँ हैं सो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि एक द्रव्य दो द्रव्योंके परिणामको

(वसन्ततिलका)

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः ।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धया
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥१२-५७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः अज्ञानतः तु रज्यते" [**यः**] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [**अज्ञानतः तु**] मिथ्या दृष्टिसे ही [**रज्यते**] कर्मकी विचित्रतामें अपनापन जानकर रंजायमान होता है। वह जीव कैसा है ? "सतृणाभ्यवहारकारी" [**सतृण**] घासके साथ [**अभ्यवहारकारी**] आहार करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे हाथी अन्न-घास मिला ही खाकर [illegible] जाता है, घासका और अन्नका विवेक नहीं करता है, वैसे मिथ्यादृष्टि जीव कर्मकी सामग्रीको अपनी जानता है। जीवका और कर्मका विवेक [illegible] "किल स्वयं ज्ञानं भवन् अपि" [**किल स्वयं**] निश्चयसे [illegible] [**ज्ञानं भवन् अपि**] यद्यपि ज्ञानस्वरूप है। और जीव कैसा है ? [illegible]" [**असौ**] वह है जो विद्यमान जीव [[illegible]] [illegible] [**रसालं**] शिखरणीको [**पीत्वा**] पीकर ऐसा मानता है कि [**गां** [illegible]] [illegible] पीता है। क्या करके? 'दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धया' [[illegible]] [illegible] [**मधुराम्लरस**] मीठे और खट्टे स्वादकी [**अतिगृद्धया**] अति [illegible] कि स्वादलम्पट हुआ शिखरणी पीता है, स्वाद-[illegible], जैसा गायके दूधको पीते हुए निर्भेदपना [illegible]

शुद्धस्वरूप हैं [अपि] तथापि [अज्ञानात्] मिथ्या दृष्टिसे [आकुलाः] आकुलित होते हुए [कर्त्रीभवन्ति] बलात्कार ही कर्ता होते हैं। किस कारणसे ? "विकल्पचक्र-करणात्" [विकल्प] अनेक रागादिके [चक्र] समूहके [करणात्] करनेसे। किसके समान ? "वातोत्तरंगाब्धिवत्" [वात] वायुसे [उत्तरंग] डोलते-उछलते हुए [अब्धिवत्] समुद्रके समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे समुद्रका स्वरूप निश्चल है, वायुसे प्रेरित होकर उछलता है और उछलनेका कर्ता भी होता है, वैसे ही जीवद्रव्य स्वरूपसे अकर्ता है। कर्मसंयोगसे विभावरूप परिणमता है, इसलिए विभावपनेका कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञानसे, स्वभाव तो नहीं। दृष्टांत कहते हैं—"मृगाः मृगतृष्णिकां अज्ञानात् जलधिया पातुं धावन्ति" [मृगाः] जिस प्रकार हरिण [मृगतृष्णिकां] मरीचिकाको [अज्ञानात्] मिथ्या भ्रान्तिके कारण [जलधिया] पानीकी बुद्धिसे [पातुं धावन्ति] पीनेके लिये दौड़ते हैं। "जनाः रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजगाध्यासेन द्रवन्ति" [जनाः] जिस प्रकार मनुष्य जीव [रज्जौ] रस्सीमें [तमसि] अन्धकारके होनेपर [अज्ञानात्] भ्रान्तिके कारण [भुजगाध्यासेन] सर्पकी बुद्धिसे [द्रवन्ति] डरते हैं ॥१३-५८॥

(वसन्ततिलका)

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः-पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि ॥१४-५९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः तु परात्मनोः विशेषं जानाति" [यः तु] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [पर] द्रव्यकर्मपिण्ड [आत्मनोः] शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका [विशेषं] भिन्नपना [जानाति] अनुभवता है। कैसा करके अनुभवता है ? "ज्ञानात् विवेचकतया" [ज्ञानात्] सम्यग्ज्ञान द्वारा [विवेचकतया] लक्षणभेद कर। उसका विवरण—शुद्ध चैतन्यमात्र जीवका लक्षण, अचेतनपना पुद्गलका लक्षण; इससे जीव पुद्गल भिन्न भिन्न हैं ऐसा भेद भेदज्ञान कहता। दृष्टांत कहते हैं—"वाः-पयसोः हंस इव" [वाः] पानी [पयसोः] दूध [हंस इव] हंसके समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार हंस दूध पानी भिन्न भिन्न करता है उस प्रकार जो कोई जीव-पुद्गलको भिन्न

भिन्न अनुभवता है। "स हि जानीत एव किञ्चनापि न करोति" [सः हि] वह जीव [जानीत एव] ज्ञायक तो है, [किञ्चनापि] परमाणुमात्र भी [न करोति] करता तो नहीं है। कैसा है ज्ञानी जीव ? "स सदा अचलं चैतन्यधातुं अधिरूढ़:" वह सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्माके स्वरूपमें दृढ़तासे रहा है ॥१४-५९॥

(मन्दाक्रान्ता)

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ।१५-६०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति" [**ज्ञानात् एव**] शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तुको अनुभवन करते ही [**स्वरस**] चेतनस्वरूप, उससे [**विकसत्**] प्रकाशमान है [**नित्य**] अविनश्वर ऐसा जो [**चैतन्यधातोः**] शुद्ध जीवस्वरूपका (और) [**क्रोधादेश्च**] जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणामका [**भिदा**] भिन्नपना [**प्रभवति**] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि साम्प्रत (-वर्तमान में) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है, सो तो ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है; सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है। उत्तर इस प्रकार है कि साँचा ही कठिन है, पर वस्तुका शुद्धस्वरूप विचारनेपर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है। कैसा है भिदा (-भिन्नपना) ? "कर्तृभावं भिन्दती" [**कर्तृभावं**] कर्मका कर्ता जीव ऐसी भ्रान्ति, उसको [**भिन्दती**] मूलसे दूर करता है। दृष्टांत कहते हैं—"एव ज्वलनपयसोः औष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानात् उल्लसति" [**एव**] जिस प्रकार [**ज्वलन**] अग्नि [**पयसोः**] पानी, उनका [**औष्ण्य**] उष्णपना [**शैत्य**] शीतपना, उनका [**व्यवस्था**] भेद [**ज्ञानात्**] निजस्वरूपग्राही ज्ञानके द्वारा [**उल्लसति**] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि संयोगसे पानी ताता (उष्ण) किया जाता है, फिर 'ताता पानी' ऐसा कहा जाता है तथापि स्वभाव विचारनेपर उष्णपना अग्निका है, पानी तो स्वभावसे शीला (ठंडा) है ऐसा भेदज्ञान विचारनेपर उपजता है। और दृष्टांत—"एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात्

उल्लसति" [एव] जिस प्रकार [लवण] खारा रस, उसका [स्वादभेद] व्यंजनसे भिन्नपनेके द्वारा खारा लवणका स्वभाव ऐसा जानपना, उससे [व्युदासः] व्यंजन खारा ऐसा कहा जाता था, जाना जाता था सो छूटा। (ऐसा) [ज्ञानात्] निज स्वरूपका जानपना उसके द्वारा [उल्लसति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार लवणके संयोगसे व्यंजन संभारते हैं तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है; स्वरूप विचारनेपर खारा लवण, व्यंजन जैसा है वैसा ही है ॥१५-६०॥

(अनुष्टुप्)

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥१६-६१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं आत्मा आत्मभावस्य कर्ता स्यात्" [एवं] सर्वथा प्रकार [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मभावस्य कर्ता स्यात्] अपने परिणामका कर्ता होता है। "परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्" [परभावस्य] कर्मरूप अचेतन पुद्गल-द्रव्यका [कर्ता क्वचित् न स्यात्] कभी तीनों कालमें कर्ता नहीं होता। कैसा है आत्मा ? "ज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्" [ज्ञानं] शुद्ध चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्धअवस्था [अपि] उस रूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। और कैसा है ? "अज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्" [अज्ञानं] अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम [अपि] उसरूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिये जिस कालमें जिस चेतनारूप परिणमता है उस कालमें उसी चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, इसलिए उस कालमें उसी चेतनाका कर्ता है। तो भी पुद्गलपिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है, इसलिए उसका कर्ता नहीं है। "अञ्जसा" समस्तरूपसे ऐसा अर्थ है ॥१६-६१॥

(अनुष्टुप्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥१७-६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा ज्ञानं करोति" [आत्मा] चेतनद्रव्य [ज्ञानं] चेतनामात्र परिणामको [करोति] करता है। कैसा होता हुआ ? "स्वयं ज्ञानं" जिस

कारणसे आत्मा स्वयं चेतना परिणाममात्र स्वरूप है। "ज्ञानात् अन्यत् करोति किं" [ज्ञानात् अन्यत्] चेतन परिणामसे भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणामरूप कर्म उसको [किं करोति] करता है क्या ? अपि तु न करोति—सर्वथा नहीं करता है। "आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणां मोहः" [आत्मा] चेतनद्रव्य [परभावस्य कर्ता] ज्ञानावरणादि कर्मको करता है [अयं] ऐसा जानपना, ऐसा कहना [व्यवहारिणां मोहः] मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है। भावार्थ इस प्रकार है कि कहनेमें ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव है सो कहना भी झूठा है ।।१७-६२।।

(वसन्ततिलका)

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव ।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय
संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ।।१८-६३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"पुद्गलकर्म कर्तृ संकीर्त्यते" [पुद्गलकर्म] द्रव्य-पिण्डरूप आठ कर्म उसका [कर्तृ] कर्ता [संकीर्त्यते] जैसा है वैसा कहते हैं। "शृणुत" सावधान होकर तुम सुनो। प्रयोजन कहते हैं—"एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय" [एतर्हि] इस समय [तीव्ररय] दुर्निवार उदय है जिसका ऐसा जो [मोह] विपरीत ज्ञान उसको [निवर्हणाय] मूलसे दूर करनेके निमित्त। विपरीतपना कैसा करके जाना जाता है। "इति अभिशङ्कया एव" [इति] जैसी करते हैं [अभिशङ्कया] आशंका उसके द्वारा [एव] ही। वह आशंका कैसी है ? "यदि जीव एव पुद्गलकर्म न करोति तर्हि कः तत् कुरुते" [यदि] जो [जीव एव] चेतनद्रव्य [पुद्गलकर्म] पिण्डरूप आठ कर्मको [न करोति] नहीं करता है [तर्हि] तो [कः तत् कुरुते] उसे कौन करता है। भावार्थ इस प्रकार है—जो जीवके करनेपर ज्ञानावरणादि कर्म होता है ऐसी भ्रांति उपजती है उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि पुद्गलद्रव्य परिणामी है, स्वयं सहज ही कर्मरूप परिणमता है ।।१८-६३।।

(उपजाति)

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य
स्वभावभूता परिणामशक्तिः ।

तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१९-६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इति खलु पुद्गलस्य परिणामशक्तिः स्थिता" [इति] इस प्रकार [खलु] निश्चयसे [पुद्गलस्य] मूर्त द्रव्यका [परिणामशक्तिः] परिणमनस्वरूप स्वभाव [स्थिता] अनादिनिधन विद्यमान है। कैसा है? "स्वभावभूता" सहजरूप है। और कैसा है? "अविघ्ना" निर्विघ्नरूप है। "तस्यां स्थितायां सः आत्मनः यं भावं करोति स तस्य कर्ता भवेत्" [तस्यां स्थितायां] उस परिणामशक्तिके रहते हुए [सः] पुद्गलद्रव्य [आत्मनः] अपने अचेतन द्रव्यसम्बन्धी [यं भावं करोति] जिस परिणामको करता है [सः] पुद्गलद्रव्य [तस्य कर्ता भवेत्] उस परिणामका कर्ता होता है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणमता है उस भावका कर्ता फिर पुद्गलद्रव्य होता है ॥१९-६४॥

(उपजाति)

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया
स्वभावभूता परिणामशक्तिः ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यं स्वस्य तस्यैव भवेत् स कर्ता ॥२०-६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जीवस्य परिणामशक्तिः स्थिता इति" [जीवस्य] चेतनद्रव्यकी [परिणामशक्तिः] परिणमनरूप सामर्थ्य [स्थिता] अनादिसे विद्यमान है। [इति] ऐसा द्रव्यका सहज है। "स्वभावभूता" जो शक्ति [स्वभावभूता] सहजरूप है। और कैसी है? "निरन्तराया" प्रवाहरूप है, एक समयमात्र खण्ड नहीं है। "तस्यां स्थितायां" उस परिणामशक्तिके होते हुए "स स्वस्य यं भावं करोति" [सः] जीववस्तु [स्वस्य] आपसम्बन्धी [यं भावं] जिस किसी शुद्ध चेतनारूप अशुद्ध चेतनारूप परिणामको [करोति] करता है "तस्य एव स कर्ता भवेत्" [तस्य] उस परिणामका [एव] निश्चयसे [सः] जीववस्तु [कर्ता] करनशील [भवेत्] होता है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्यकी अनादिनिधन परिणमनशक्ति है ॥२०-६५॥

(आर्या)

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥२१-६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँपर कोई प्रश्न करता है—"ज्ञानिनः ज्ञानमय एव :ः कुतो भवेत् पुनः न अन्यः" [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टिके [ज्ञानमय एव भावः] ज्ञानस्वरूप परिणाम [कुतो भवेत्] किस कारणसे होता है [न पुनः अन्यः] अज्ञान- नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव कर्मके उदयको भोगनेपर चेत्र रागादिरूप परिणमता है सो ज्ञानभावका कर्ता है और [उसके] ज्ञानभाव है, ानभाव नहीं है सो कैसे है ऐसा कोई बूझता है। "अयं सर्वः अज्ञानिनः अज्ञानमयः : न अन्यः" [अयं] परिणाम [सर्वः] सबका सब परिणमन [अज्ञानिनः] थ्यादृष्टिके [अज्ञानमयः] अशुद्ध चेतनारूप बन्धका कारण होता है। [कुतः] ... न करता है ऐसा है सो कैसे है, [न अन्यः] ज्ञानजातिका कैसे नहीं होता। भावार्थ प्रकार है—मिथ्यादृष्टिके जो कुछ परिणाम होता है वह बन्धका कारण है ॥२१-६६॥

(अनुष्टुप्)

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२-६७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"हि ज्ञानिनः सर्वे भावाः ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति" [हि] श्चयसे [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टिके [सर्वे भावाः] जितने परिणाम हैं [ज्ञाननिर्वृत्ताः न्ति] ज्ञानस्वरूप होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टिका द्रव्य शुद्धत्वरूप रिणमा है, इसलिये सम्यग्दृष्टिका जो कोई परिणाम होता है वह ज्ञानमय शुद्धत्व ातिरूप होता है, कर्मका अबन्धक होता है। "तु ते सर्वे अपि अज्ञानिनः अज्ञाननिर्वृत्ताः वन्ति" [तु] यों भी है कि [ते] जितने परिणाम [सर्वे अपि] शुभोपयोगरूप थवा अशुभोपयोगरूप हैं वे सब [अज्ञानिनः] मिथ्यादृष्टिके [अज्ञाननिर्वृत्ताः] शुद्धत्वसे निपजे हैं। [भवन्ति] विद्यमान हैं। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि ीवकी और मिथ्यादृष्टि जीवकी क्रिया तो एकसी है, क्रियासम्बन्धी विषय कषाय भी कसी है; परन्तु द्रव्यका परिणमनभेद है। विवरण—सम्यग्दृष्टिका द्रव्य शुद्धत्वरूप रिणमा है, इसलिये जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप है अथवा विचाररूप है थवा व्रत-क्रियारूप है अथवा भोगाभिलाषरूप है अथवा चारित्रमोहके दय क्रोध, मान, माया, लोभरूप है वह सभी परिणाम ज्ञानजातिमें घटता है। ारण कि जो कोई परिणाम है वह संवर-निर्जराका कारण है, ऐसा ही कोई द्रव्य- रिणमनका विशेष है। मिथ्यादृष्टिका द्रव्य अशुद्धरूप परिणमा है, इसलिये जो कोई

मिथ्यादृष्टिका परिणाम अनुभवरूप तो होता ही नहीं। इस कारण सूत्रसिद्धान्तके पाठरूप है अथवा व्रत-तपश्चरणरूप है अथवा दान, पूजा, दया, शीलरूप है अथवा भोगाभिलाष-रूप है अथवा क्रोध, मान, माया, लोभरूप है ऐसा समस्त परिणाम अज्ञानजातिका है, क्योंकि बन्धका कारण है, संवर-निर्जराका कारण नहीं है। द्रव्यका ऐसा ही परिणमन-विशेष है ॥२२-६७॥

(अनुष्टुप्)

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः ।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥२३-६८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि जीवकी बाह्य क्रिया तो एकसी है परन्तु द्रव्य परिणमनविशेष है सो विशेषके अनुसार दिखलाते हैं। सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है। "अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानां हेतुतां एति" [अज्ञानी] मिथ्यादृष्टि जीव [द्रव्यकर्म] धाराप्रवाहरूप निरन्तर बँधते हैं—पुद्गलद्रव्यकी पर्यायरूप कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप बँधते हैं जीवके प्रदेशके साथ एक क्षेत्रावगाही हैं, परस्पर बन्ध्यबन्धकभाव भी है। उनके [निमित्तानां] बाह्य कारणरूप हैं [भावानां] मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप अशुद्ध परिणाम। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है, जैसे कुम्भकारका परिणाम उसका बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञाना-वरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य-व्यापकरूप है। तथापि जीवका अशुद्ध चेतनारूप मोह, राग, द्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है। उस परिणामके [हेतुतां] कारणरूप [एति] स्वयं परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जीवद्रव्य तो शुद्ध है, उपचारमात्र कर्मबन्धका कारण होता है सो ऐसा तो नहीं है। आप स्वयं मोह, राग, द्वेष अशुद्ध चेतना परिणामरूप परिणमता है, इसलिये कर्मका कारण है। मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्धरूप जिस प्रकार परिणमता है उसी प्रकार कहते हैं—"अज्ञानमयभावानां भूमिकाः व्याप्य" [अज्ञानमय] मिथ्यात्व जाति ऐसे हैं [भावानां] कर्मके उदयकी अवस्था उनकी [भूमिकाः] जिनके पाकेसे अशुद्ध परिणाम होते हैं ऐसी संगतिको [व्याप्य] प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध परिणामरूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्यकर्म अनेक प्रकारका है, उसका उदय अनेक प्रकारका है। [illegible] जिसके उदय [illegible] होता है

कर्म ऐसा है जिसके उदय मन, वचन, काय होता है, एक कर्म ऐसा है जिसके उदय सुख, दुःख होता है। ऐसे अनेक प्रकारके कर्मका उदय होनेपर मिथ्यादृष्टि जीव कर्मके उदयको आपरूप अनुभवता है, इससे राग, द्वेष, मोह परिणाम होते हैं, उनके द्वारा नूतन कर्मबन्ध होता है। इस कारण मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध चेतन परिणामका कर्ता है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके शुद्धस्वरूपका अनुभव नहीं है, इसलिये कर्मके उदय कार्यको आपरूप अनुभवता है। जिस प्रकार मिथ्यादृष्टिके कर्मका उदय है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिके भी है, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्धस्वरूपका अनुभव है, इस कारण कर्मके उदयको कर्मजातिरूप अनुभवता है, आपको शुद्धस्वरूप अनुभवता है। इसलिये कर्मके उदयमें नहीं रंजायमान होता है, इसलिये मोह, राग, द्वेषरूप नहीं परिणमता है, इसलिये कर्मबन्ध नहीं होता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि अशुद्ध परिणामका कर्ता नहीं है। ऐसा [illegible] है ॥२३-६८॥

(उपेन्द्रवज्रा)

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४-६९॥

[illegible] सहित अर्थ—"ये एव नित्यं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति ते एव साक्षात् [illegible] [ये एव] जो कोई जीव [नित्यं] निरन्तर [स्वरूप] शुद्ध [illegible] [गुप्ताः] [illegible] है [निवसन्ति] तिष्ठते हैं [ते एव] वे ही जीव [illegible] [पिबन्ति] आस्वाद करते हैं। क्या करके? [illegible] [नय] [illegible] विकल्पबुद्धि, उसके [पक्षपातं] [illegible] [मुक्त्वा] छोड़कर। कैसे है वे जीव? "विकल्पजालच्युत- [illegible] [विकल्पजाल] [illegible] विचार, उससे [च्युत] रहित [शान्तचित्ताः] [illegible] है। भावार्थ इस प्रकार [illegible] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप विचार [illegible] होता है, [illegible] निरन्तर आकुलता

(उपजाति)

एकस्य मूढो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६-७१॥

अर्थ—जीव मूढ़ (मोही) है ऐसा एक नयका पक्ष है और वह मूढ़ नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है (अर्थात् उसे चित्स्वरूप जीव जैसा है वैसा ही निरन्तर अनुभवमें आता है) ॥२६-७१॥

(उपजाति)

एकस्य रक्तो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२७-७२॥

अर्थ—जीव रागी है ऐसा एक नयका पक्ष है और वह रागी नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२७-७२॥

(उपजाति)

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८-७३॥

अर्थ—जीव द्वेषी है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव द्वेषी नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित हैं उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२८-७३॥

(उपजाति)

एकस्य कर्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२९-७४॥

अर्थ—जीव कर्ता है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव कर्ता नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२९-७४॥

(उपजाति)

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३०-७५॥

अर्थ—जीव भोक्ता है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भोक्ता नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३०-७५॥

(उपजाति)

एकस्य जीवो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३१-७६॥

(उपजाति)

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३२-७७॥

अर्थ—जीव सूक्ष्म है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव सूक्ष्म नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३२-७७॥

(उपजाति)

एकस्य हेतुर्न न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३३-७८॥

अर्थ—जीव हेतु (कारण) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव हेतु (कारण) नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३३-७८॥

(उपजाति)

एकस्य कार्यं न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३४-७९॥

अर्थ—जीव कार्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव कार्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३४-७९॥

(उपजाति)

एकस्य भावो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३५-८०॥

अर्थ—जीव भाव है (अर्थात् भावरूप है) ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भाव नहीं है (अर्थात् अभावरूप है) ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३५-८०॥

(उपजाति)

एकस्य चैको न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३६-८१॥

अर्थ—जीव एक है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव एक नहीं है (अनेक है) ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३६-८१॥

(उपजाति)

एकस्य सांतो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३७-८२॥

अर्थ—जीव सांत है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव सांत नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३७-८२॥

(उपजाति)

एकस्य नित्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।३८-८३।।

अर्थ—जीव नित्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नित्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।३८-८३।।

(उपजाति)

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।३९-८४।।

अर्थ—जीव वाच्य (अर्थात् वचनसे कहा जा सके ऐसा) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव वाच्य (वचनगोचर) नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।३९-८४।।

(उपजाति)

एकस्य नाना न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।४०-८५।।

अर्थ—जीव नानारूप है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नानारूप नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।४०-८५।।

(उपजाति)

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४१-८६॥

अर्थ—जीव चेत्य (जाननेयोग्य) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव चेत्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४१-८६॥

(उपजाति)

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४२-८७॥

अर्थ—जीव दृश्य (देखनेयोग्य) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव दृश्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४२-८७॥

(उपजाति)

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-

(उपजाति)

एकस्य भातो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।४४-८६।।

अर्थ—जीव भात (प्रकाशमान अर्थात् वर्तमान प्रत्यक्ष) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भात नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।४४-८६।।

भावार्थ—वद्ध अवद्ध, मूढ़ अमूढ़, रागी अरागी, द्वेषी अद्वेषी, कर्त्ता अकर्त्ता, भोक्ता अभोक्ता, जीव अजीव, सूक्ष्म स्थूल, कारण अकारण, कार्य अकार्य, भाव अभाव, एक अनेक, सांत अनन्त, नित्य अनित्य, वाच्य अवाच्य, नाना अनाना, चेत्य अचेत्य, दृश्य अदृश्य, वेद्य अवेद्य, भात अभात इत्यादि नयोंके पक्षपात हैं। जो पुरुष नयोंके कथनानुसार यथा योग्य विवक्षापूर्वक तत्त्वका—वस्तुस्वरूपका निर्णय करके नयोंके पक्षपातको छोड़ता है उसे चित्स्वरूप जीवका चित्स्वरूप अनुभव होता है।

जीवमें अनेक साधारण धर्म हैं, परन्तु चित्स्वभाव उसका प्रगट अनुभवगोचर असाधारण धर्म है; इसलिये उसे मुख्य करके यहाँ जीवको चित्स्वरूप कहा है ।।४४-८६।।

(वसन्ततिलका)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ।।४५-६०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं स तत्त्ववेदी एकं स्वं भावं उपयाति" [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [सः] सम्यग्दृष्टि जीव—[तत्त्ववेदी] शुद्धस्वरूपका अनुभवशील, [एकं स्वं भावं उपयाति] एक शुद्धस्वरूप चिद्रूप आत्माको आस्वादता है। कैसा है आत्मा ? "अन्तर्वहिःसमरसैकरसस्वभावं" [अन्तः] भीतर [वहिः] वाहर [समरस] तुल्यरूप ऐसी [एकरस] चेतनशक्ति ऐसा है [स्वभावं] सहजरूप जिसका ऐसा है।

किं कृत्वा—क्या करके शुद्धस्वरूप पाता है ? "नयपक्षकक्षां व्यतीत्य" [नय] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद, उनका [पक्ष] अंगीकार, उसकी [कक्षां] समूह है—अनन्त नयविकल्प हैं, उनको [व्यतीत्य] दूरसे ही छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है—अनुभव निर्विकल्प है। उस अनुभवके कालमें समस्त विकल्प छूट जाते हैं। (नयपक्षकक्षा) कैसी है ? "महतीं" जितने बाह्य-अभ्यंतर बुद्धिके विकल्प उतने ही नयभेद ऐसी है। और कैसी है ? "स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालां" [स्वेच्छा] बिना ही उपजाए गये [समुच्छलत्] उपजते हैं ऐसे जो [अनल्प] अति बहु [विकल्प] निर्भेद वस्तुमें भेदकल्पना, उनका [जालां] समूह है जिसमें ऐसी है। कैसा है आत्मस्वरूप ? "अनुभूतिमात्रं" अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है ॥४५-९०॥

(रथोद्धता)

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६-९१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् चिन्महः अस्मि" मैं ऐसा ज्ञानस्वरूप हूँ, "यस्य विस्फुरणं" जिसका प्रकाशमात्र होने पर "इदं कृत्स्नं इन्द्रजालं तत्क्षणं एव अस्यति" [इदं] विद्यमान अनेक नयविकल्प जो [कृत्स्नं] अति बहुत हैं [इन्द्रजालं] झूठा है पर विद्यमान है, वह [तत्क्षणं] जिस कालमें शुद्ध चिद्रूप अनुभव होता है उसी कालमें [एव] निश्चयसे [अस्यति] विनश जाता है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अन्धकार फट जाता है उसी प्रकार शुद्ध चैतन्यमात्रका अनुभव होनेपर यावत् समस्त विकल्प मिटते हैं ऐसी शुद्ध चैतन्य वस्तु है सो मेरा स्वभाव, अन्य समस्त कर्मकी उपाधि है। कैसा है इन्द्रजाल ? "पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः उच्छलत्" [पुष्कल] अति बहुत [उच्चल] अति स्थूल ऐसे जो [विकल्प] भेद कल्पना ऐसी जो [वीचिभिः] तरंगावली उस द्वारा [उच्छलत्] आकुलतारूप है, इसलिए हेय है, उपादेय नहीं है ॥४६-९१॥

(रथोद्धता)

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम् ।

बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम् ॥४७-९२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"समयसारं चेतये" शुद्ध चैतन्यका अनुभव करना कार्यसिद्धि है। कैसा है? "अपारं" अनादि-अनन्त है। और कैसा है? "एकं" शुद्धस्वरूप है। कैसा करके शुद्धस्वरूप है? "चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतया एकं" [चित्स्वभाव] ज्ञानगुण, उसका [भर] अर्थग्रहण व्यापार उसके द्वारा [भावित] होते हैं [भाव] उत्पाद [अभाव] विनाश [भाव] ध्रौव्य ऐसे तीन भेद उनके द्वारा [परमार्थतया एकं] साधा है एक अस्तित्व जिसका। किं कृत्वा—क्या करके? "समस्तां बन्धपद्धतिं अपास्य" [समस्तां] जितनी असंख्यात लोकमात्र भेदरूप है ऐसी जो [बन्धपद्धतिं] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धरचना, उसका [अपास्य] ममत्व छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्धस्वरूपका अनुभव होनेपर जिस प्रकार नयविकल्प मिटते हैं उसी प्रकार समस्त कर्मके उदयसे होनेवाले जितने भाव हैं वे भी अवश्य मिटते हैं ऐसा स्वभाव है ॥४७-९२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम् ॥४८-९३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः समयस्य सारः भाति" [यः] जो [समयस्य सारः] शुद्धस्वरूप आत्मा [भाति] अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणमता है। जैसा परिणमता है वैसा कहते हैं—"नयानां पक्षैः विना अचलं अविकल्पभावं आक्रामन्" [नयानां] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे जो अनेक विकल्प उनके [पक्षैः विना] पक्षपात विना किये [अचलं] त्रिकाल ही एक रूप है ऐसी [अविकल्पभावं] निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु, उस रूप [आक्रामन्] जिस प्रकार शुद्धस्वरूप है उस प्रकार परिणमता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जितना नय है उतना श्रुतज्ञान है, श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है, इसलिए श्रुतज्ञान विना जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभवता है। इस कारण प्रत्यक्ष-रूपसे अनुभवता हुआ जो कोई शुद्धस्वरूप आत्मा "स विज्ञानैकरसः" वही ज्ञानपुञ्ज वस्तु है ऐसा कहा जाता है। "स भगवान्" वही परब्रह्म परमेश्वर ऐसा कहा जाता है।

"एषः पुण्यः" वही पवित्र पदार्थ ऐसा भी कहा जाता है। "एषः पुराणः" वही अनादि-निधन वस्तु ऐसा भी कहा जाता है। "एषः पुमान्" वही अनन्त गुण विराजमान पुरुष ऐसा भी कहा जाता है। "अयं ज्ञानं दर्शनं अपि" वही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ऐसा भी कहा जाता है। "अथवा किं" अथवा बहुत क्या कहें "अयं एकः यत् किञ्चन अपि" [अयं एकः] यह जो है शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति [यत् किञ्चन अपि] उसे जो कुछ कहा जाय वही है जैसी भी कही जाय वैसी ही है। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध चैतन्य-मात्र वस्तुप्रकाश निर्विकल्प एकरूप है, उसके नामकी महिमा की जाय तो अनन्त नाम कहे जाँय तो उतने ही घटित हो जाँय, वस्तु तो एकरूप है। कैसा है वह शुद्ध स्वरूप आत्मा? "निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः" निश्चल ज्ञानी पुरुषोंके द्वारा आप स्वयं अनुभवशील है ॥४८-९३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥४९-९४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं आत्मा गतानुगततां आयाति तोयवत्" [अयं] द्रव्यरूप विद्यमान है ऐसा [आत्मा] चेतन पदार्थ [गतानुगततां] स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ था सो फिर उस स्वरूपको प्राप्त हुआ, ऐसे भावको [आयाति] प्राप्त होता है। दृष्टान्त [तोयवत्] पानीके समान। क्या करके? "आत्मानं आत्मनि सदा आहरन्" आपको आपमें निरन्तर अनुभवता हुआ। कैसा है आत्मा? "तदेकरसिनां विज्ञानैकरसः" [तदेकरसिनां] अनुभवरसिक हैं जो पुरुष उनको [विज्ञानैकरसः] ज्ञानगुण आस्वादरूप है। कैसा हुआ है? "निजौघात् च्युतः" [निजौघात्] जिस प्रकार पानीका शीत, स्वच्छ, द्रवत्व स्वभाव है, उस स्वभावसे कभी च्युत होता है, अपने स्वभावको छोड़ता है उसी प्रकार जीव द्रव्यका स्वभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख इत्यादि अनन्त गुण-स्वरूप है, उससे [च्युतः] अनादिकालसे लेकर भ्रष्ट हुआ है, विभावरूप परिणमा है। भ्रष्टपना जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं—"दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्"

[दूरं] अनादि कालसे लेकर [भूरि] अति बहुत हैं [विकल्प] कर्मजनित जितने भाव, उनमें आत्मरूप संस्कारबुद्धि, उसका [जाल] समूह, वही है [गहने] अटवीवन, उसमें [भ्राम्यन्] भ्रमता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी अपने स्वादसे भ्रष्ट हुआ नाना वृक्षरूप परिणमता है उसी प्रकार जीव द्रव्य अपने शुद्ध स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ नाना प्रकार चतुर्गति पर्यायरूप अपनेको आस्वादता है । हुआ तो कैसा हुआ ? "बलात् निजौघं नीतः" [बलात्] बलजोरीसे [निजौघं] अपने शुद्धस्वरूपलक्षण निष्कर्म अवस्था [नीतः] उसरूप परिणमा है । ऐसा जिस कारणसे हुआ वही कहते हैं— "दूरात् एव" अनन्त काल फिरते हुए प्राप्त हुआ ऐसा जो "विवेकनिम्नगमनात्" [विवेक] शुद्धस्वरूपका अनुभव, ऐसा जो [निम्नगमनात्] नीचा मार्ग, उस कारणसे जीव द्रव्यका जैसा स्वरूप था वैसा प्रगट हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी अपने स्वरूपसे भ्रष्ट होता है, काल निमित्त पाकर पुनः जलरूप होता है, नीचे मार्गसे ढलकता हुआ पुञ्जरूप भी होता है उसी प्रकार जीव द्रव्य अनादिसे स्वरूपसे भ्रष्ट है । शुद्ध-स्वरूपलक्षण सम्यक्त्व गुणके प्रगट होने पर मुक्त होता है, ऐसा द्रव्यका परिणाम है ॥४९-९४॥

(अनुष्टुप्)

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥५०-९५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सविकल्पस्य कर्तृ-कर्मत्वं जातु न नश्यति" [सविकल्पस्य] [illegible] अशुद्ध रागादि भाव, उनको आपरूप जानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके [कर्तृकर्मत्वं] [illegible] [जातु] सर्व काल [न नश्यति] नहीं मिटता है । [illegible] केवलं विकल्पः कर्म" [परं] एतावन्मात्र [विकल्पकः] [illegible] परिणमता है जो जीव वह [कर्ता] जिस भावरूप [illegible] है । [केवलं] एतावन्मात्र [विकल्पः] मिथ्यात्व [illegible] [कर्म] जीवकी करतूति जानना । भावार्थ इस [illegible] अकर्ता है उसके भी । ऐसा समाधान [illegible] [illegible] [illegible] होता है [illegible]

गुण प्रगट होता है तब अशुद्ध परिणाम मिटता है, तब अशुद्ध परिणामका कर्ता नहीं होता ॥५०-९५॥

(रथोद्धता)

य करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम् ।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१-९६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इस समय सम्यग्दृष्टि जीवका व मिथ्यादृष्टि जीवका परिणाम भेद बहुत है वही कहते हैं—"यः करोति स केवलं करोति" [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [करोति] मिथ्यात्व रागादि परिणामरूप परिणमता है [स केवलं करोति] वह वैसे ही परिणामका कर्ता होता है। "तु यः वेत्ति" जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूपके अनुभवरूप परिणमता है "स केवलं वेत्ति" वह जीव ज्ञानपरिणामरूप है, इसलिए केवल ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। "यः करोति स क्वचित् न वेत्ति" जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व रागादि रूप परिणमता है वह शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील एक ही काल तो नहीं होता। "यः तु वेत्ति स क्वचित् न करोति" जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है वह जीव मिथ्यात्व रागादि भावका परिणमनशील नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यक्त्व मिथ्यात्वके परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाश होते हुए अन्धकार नहीं होता, अन्धकार होते हुए प्रकाश नहीं होता इसीप्रकार सम्यक्त्व के परिणाम होते हुए मिथ्यात्व परिणमन नहीं होता। इस कारण एक कालमें एक परिणामरूप जीव द्रव्य परिणमता है, अतः उस परिणामका कर्ता होता है इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मका कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव कर्मका अकर्ता ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ ॥ ५१-९६ ॥

(इन्द्रवज्रा)

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।

ज्ञप्ति करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥५२-९७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अन्तः" सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टिसे "ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासते" [ज्ञप्तिः] ज्ञानगुण [करोतौ] मिथ्यात्व रागादिरूप चिक्कणता इनमें [न हि भासते] एकत्वपना नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है—संसार अवस्था [रूप] मिथ्यादृष्टि जीवके ज्ञानगुण भी है और रागादि चिक्कणता भी है, कर्मबन्ध होता है सो रागादि सचिक्कणतासे होता है। ज्ञानगुणके परिणमनसे नहीं होता ऐसा वस्तुका स्वरूप है। तथा "ज्प्तौ करोतिः अन्तः न भासते" [ज्ञप्तौ] ज्ञानगुणमें [करोतिः] अशुद्धरागादि परिणमनका [अन्तः न भासते] अन्तरंगमें एकत्वपना नहीं है। "ततः ज्ञप्तिः करोतिश्च विभिन्ने" [ततः] उस कारणसे [ज्ञप्तिः] ज्ञानगुण [करोतिः] अशुद्धपना [विभिन्ने] भिन्न-भिन्न हैं, एकरूप तो नहीं हैं। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञान—गुण, अशुद्धपना देखने पर तो मिलेके समान दिखता है, परन्तु स्वरूपसे भिन्न-भिन्न है। विवरण—ज्ञानपना मात्र ज्ञानगुण है, उसमें गर्भित यही दिखता है। सचिक्कणपना जो रागादि है, उससे अशुद्धपना कहा जाता है। "ततः स्थितं ज्ञाता न कर्त्ता" [ततः] इस कारणसे [स्थितं] ऐसा सिद्धान्त निष्पन्न हुआ—[ज्ञाता] सम्यग्दृष्टि पुरुष [न कर्ता] रागादि अशुद्ध परिणामका कर्ता नहीं होता। भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्यके स्वभावसे ज्ञानगुण कर्ता नहीं है, अशुद्धपना कर्ता है। सो सम्यग्दृष्टिके अशुद्धपना नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं है ॥ ५२–९७ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥५३-९८॥

खण्डान्वय सहित अर्थः—"कर्ता कर्मणि नियतं नास्ति" [कर्ता] मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध [illegible] परिणत जीव [कर्मणि] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डमें [नियतं] निश्चयसे [नास्ति] नहीं है अर्थात् इन दोनोंमें एक द्रव्यपना नहीं है। "तत् कर्म अपि [illegible] कर्तरि" [तत् कर्म अपि] वह भी ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड [कर्तरि] अशुद्ध

भाव परिणत मिथ्यादृष्टि जीवमें [नास्ति] नहीं है अर्थात् इन दोनोंमें एक द्रव्यपना नहीं है। "यदि द्वन्द्वं विप्रतिपिध्यते तदा कर्तृ-कर्मस्थितिः का" [यदि] जो [द्वन्द्वं] जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यके एकत्वपनेका [विप्रतिपिध्यते] निषेध किया [तदा] तो [कर्तृ-कर्मस्थितिः का] जीवकर्त्ता ज्ञानावरणादि कर्म ऐसी व्यवस्था कैसे घटती है, अपितु नहीं घटती है। "ज्ञाता ज्ञातरि" जीवद्रव्य अपने द्रव्यत्वसे एकत्वको लिए हुए है। "सदा" सर्व ही काल ऐसा वस्तुका स्वरूप है। "कर्म कर्मणि" ज्ञानावरणादि पुद्गल-पिण्ड अपने पुद्गलपिण्डरूप है। "इति वस्तुस्थितिः व्यक्ता" [इति] इसरूप [वस्तुस्थितिः] द्रव्यका स्वरूप [व्यक्ता] अनादिनिधनपने प्रगट है। "तथापि एषः मोहः नेपथ्ये बत कथं रभसा नानटीति" [तथापि] स्वरूप तो वस्तुका ऐसा है, जैसा कहा वैसा, फिर भी [एषः मोहः] यह है जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यकी एकत्वरूप बुद्धि, वह [नेपथ्ये] मिथ्यामार्गमें [बत] इस बातका अचम्भा है कि [रभसा] निरन्तर [कथं नानटीति] क्यों प्रवर्तती है। इस प्रकार बातका विचार क्यों है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न भिन्न है, मिथ्यात्वरूप परिणमा हुआ जीव एकरूप जानता है इसका घना अचम्भा है ॥ ५३–९८ ॥

आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानो तथापि जीव पुद्गल भिन्न भिन्न हैं ऐसा कहते हैं—

(मन्दाक्रान्ता)

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४-९९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानज्योतिः तथा ज्वलितं" [एतत् ज्ञानज्योतिः] विद्यमान शुद्ध चैतन्यप्रकाश [तथा ज्वलितं] जैसा था वैसा प्रगट हुआ। कैसा है ? "अचलं" [illegible] नहीं होता। और कैसा है ? "व्यक्तं [illegible]" [illegible] प्रदेशोंमें प्रगट है। और कैसा है ? "उच्चैः [illegible]" [illegible] है। फिर कैसा है ? "चिच्छक्तीनां निकरभरतः" [चिच्छक्तीनां] [illegible]

[**निकरभरतः**] अनन्तानन्त समूह होते हैं, उनसे अत्यन्त गम्भीर है। आगे ज्ञान-गुणका प्रकाश होने पर कैसे फलसिद्धि है वही कहते हैं—"यथा कर्ता कर्ता न भवति" [**यथा**] ज्ञानगुण ऐसा प्रगट हुआ। जैसे [**कर्ता**] अज्ञानपनाको लिए हुए जीव मिथ्यात्व परिणामका कर्ता होता था सो तो [**कर्ता न भवति**] ज्ञान प्रकाश होने पर अज्ञान भावका कर्ता नहीं होता। "कर्म अपि कर्म एव न"—[**कर्म अपि**] मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी [**कर्म एव न भवति**] रागादिरूप नहीं होता। "यथा च" जैसे कि "ज्ञानं ज्ञानं भवति" जो शक्ति विभाव परिणमनरूप परिणमी थी वही फिर अपने स्वभावरूप हुई। "यथा" जिस प्रकार "पुद्गलः अपि पुद्गलः" [**पुद्गलः अपि**] ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमा था जो पुद्गल द्रव्य वही [**पुद्गलः**] कर्म-पर्यायको छोड़कर पुद्गल द्रव्य हुआ ॥५४-६६॥



पुण्य-पाप-अधिकार

(द्रुतविलम्बित)

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो
द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१-१००॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं अवबोधः सुधाप्लवः स्वयं उदेति" [अयं] विद्यमान [अवबोधः] शुद्ध ज्ञानप्रकाश, वही है [सुधाप्लवः] चन्द्रमा [स्वयं उदेति] जैसा है वैसा अपने तेजपुञ्जके द्वारा प्रगट होता है। कैसा है ? "ग्लपितनिर्भरमोहरजा" [ग्लपित] दूर किया है [निर्भर] अतिशय रूपसे [मोहरजा] मिथ्यात्व अन्धकार जिसने, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है—चन्द्रमाका उदय होने पर अन्धकार मिटता है, शुद्ध ज्ञान प्रकाश होने पर मिथ्यात्व परिणमन मिटता है। ऐसा ज्ञानरूप चन्द्रमा उदय करता है—"अथ तत् कर्म ऐक्यं उपानयन्" [अथ] यहाँ से लेकर [तत् कर्म] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामरूप अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल पिण्डरूप कर्म, उसका [ऐक्यं उपानयन्] एकत्वपना साधता हुआ। कैसा है कर्म ? "द्वितयतां गत" दोपना करता है। कैसा दोपना ? "शुभाशुभभेदतः" [शुभ] भला [अशुभ] बुरा ऐसा [भेदतः] भेद करता है। भावार्थ इस प्रकार है—किसी मिथ्यादृष्टि जीवका अभिप्राय ऐसा है जो दया, व्रत, तप, शील, संयम आदिसे लेकर जितनी है शुभ क्रिया और शुभ क्रियाके अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोगरूप परिणाम तथा उन परिणामोंके निमित्तसे बंधता है जो सातावेदनीय आदिसे लेकर पुद्गलपिण्ड पुण्यरूप [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आदिसे लेकर पाप बन्धरूप पुद्गलपिण्ड, वे बुरे हैं, जीवको दुःखकर्ता हैं। ऐसा कोई जीव मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि जैसे अशुभ कर्म जीवको दुःख करता है उसी प्रकार शुभ कर्म भी जीवको दुःख करता है। कर्ममें तो भला कोई नहीं है। अपने मोहको लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मको भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूपका अनुभव हुआ तबसे पायी जाती है ॥१-१००॥

ऐसा जो कहा कि कर्म एकरूप है उसके प्रति दृष्टांत कहते हैं—

(मन्दाक्रान्ता)

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२-१०१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ" [द्वौ अपि] विद्यमान दोनों [एतौ] ऐसे हैं—[साक्षात्] निःसन्देहपने [शूद्रौ] दोनों चंडाल हैं। कैसा होनेसे ? "शूद्रिकायाः उदरात् युगपत् निर्गतौ"—जिस कारणसे [शूद्रिकायाः उदरात्] चाण्डालीके पेटसे [युगपत् निर्गतौ] एक ही बार जन्मे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—किसी चाण्डालीने युगल दो पुत्रोंको एक ही बार जन्मा। कर्मके योगसे एक पुत्र ब्राह्मणका प्रतिपाल हुआ सो तो ब्राह्मणकी क्रिया करने लगा। दूसरा पुत्र चाण्डालीका प्रतिपाल हुआ सो तो चाण्डालकी क्रिया करने लगा। अब जो दोनोंके वंशकी उत्पत्ति विचारिये तो दोनों चाण्डाल हैं। उसी प्रकार कोई जीव दया, व्रत, शील, संयममें मग्न हैं, उनके शुभ कर्मबंध भी होता है। कोई जीव हिंसा विषय कषाय में मग्न हैं, उनके पापबन्ध भी होता है। सो दोनों अपनी अपनी क्रियामें मग्न हैं। मिथ्यादृष्टिसे ऐसा मानते हैं कि शुभ कर्म भला, अशुभ कर्म बुरा। सो ऐसे दोनों जीव मिथ्यादृष्टि हैं, दोनों जीव कर्मबन्ध करणशील हैं। कैसे हैं वे ? "अथ च जातिभेदभ्रमेण चरतः" [अथ च] दोनों चाण्डाल हैं तो भी [जातिभेद] ब्राह्मण शूद्र ऐसा वर्णभेद उसरूप है [भ्रमेण] परमार्थ शून्य अभिमान-मात्र, उस रूपसे [चरतः] प्रवर्तते हैं। कैसा है जातिभेदभ्रम ? "एकः मदिरां दूरात् त्यजति" [एकः] चाण्डालीके पेटसे उपजा है पर प्रतिपाल ब्राह्मणके घर हुआ है ऐसा जो है वह [मदिरां] सुरापानको [दूरात् त्यजति] अत्यन्त त्याग करता है, छूता भी

नहीं है, नाम भी नहीं लेता है ऐसा विरक्त है । किस कारणसे ? "ब्राह्मणत्वाभिमानात्" [ब्राह्मणत्व] अहं ब्राह्मणः ऐसा संस्कार, उसका [अभिमानात्] पक्षपातसे । भावार्थ इस प्रकार है—शूद्रीके पेटसे उपजा हूँ ऐसे मर्मको नहीं जानता है, 'मैं ब्राह्मण, मेरे कुलमें मदिरा निषिद्ध है' ऐसा जानकर मदिराको छोड़ा है, सो भी विचार करने पर, चाण्डाल है; इसी प्रकार कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रियामें मग्न होता हुआ—शुद्धोपयोगको नहीं जानता, केवल यतिक्रियामात्र मग्न है, वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है । ऐसा जानकर विषय-कषाय-सामग्रीको छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है; मोक्षमार्ग मानता है, सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्धको करता है, कोई भलापन तो नहीं है । "अन्यः तया एव नित्यं स्नाति" [अन्यः] शूद्रीके पेटसे उपजा है, शूद्रका प्रतिपालन हुआ है, ऐसा जीव [तया] मदिरासे [एव] अवश्य ही [नित्यं स्नाति] नित्य स्नान करता हो पीता है । क्या जानकर पीता है ? "स्वयं शूद्रः इति" 'मैं शूद्र, हमारे कुल मदिरा योग्य है,' ऐसा जानकर । ऐसा जीव विचार करने पर चाण्डाल है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यादृष्टि जीव अशुभोपयोगी है, गृहस्थ क्रियामें रत है, 'हम गृहस्थ, मेरे विषय-कषाय क्रिया योग्य है' ऐसा जानकर विषय-कषाय सेवता है सो भी जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध करता है, क्योंकि कर्मजनित पर्यायमात्रको आपरूप जानता है, जीवके शुद्ध स्वरूपका अनुभव नहीं है ।८-१०१।

(उपजाति)

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां
सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः ।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥८-१०२॥

विवरण—अशुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है—पुद्गल कर्मवर्गणा भिन्न है; शुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है—पुद्गलकर्म वर्गणा भी भिन्न है। अनुभव अर्थात् कर्मका रस, सो भी रसभेद है। विवरण—अशुभ कर्मके उदयमें जीव नारकी होता है अथवा तिर्यंच होता है अथवा हीन मनुष्य होता है; वहां अनिष्ट विषयसंयोगरूप दुःखको पाता है; अशुभ कर्मका स्वाद ऐसा है। शुभ कर्मके उदयमें जीव देव होता है अथवा उत्तम मनुष्य होता है; वहां इष्ट विषयसंयोगरूप सुखको पाता है; शुभ कर्मका स्वाद ऐसा है। इसलिए स्वादभेद भी है। आश्रय अर्थात् फलकी निष्पत्ति ऐसा भी भेद है। विवरण—अशुभ कर्मके उदयमें हीन पर्याय होती है, वहाँ अधिक संक्लेश होता है, उससे संसारकी परिपाटी होती है; शुभ कर्मके उदयमें उत्तम पर्याय होती है, वहाँ धर्मकी सामग्री मिलती है, उस धर्मकी सामग्रीसे जीव मोक्ष जाता है, इसलिए मोक्षकी परिपाटी शुभ कर्म है—ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। उसके प्रति उत्तर ऐसा जो "कर्मभेदः न हि" कोई कर्म शुभरूप, कोई कर्म अशुभरूप—ऐसा भेद तो नहीं है। किस कारणसे? "हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदा अपि अभेदात्" [हेतु] कर्मवन्धके कारण विशुद्धपरिणाम संक्लेशपरिणाम ऐसे दोनों परिणाम अशुद्धरूप हैं, अज्ञानरूप हैं; इससे कारणभेद भी नहीं है, कारण एक ही है। [**स्वभाव**] शुभकर्म अशुभकर्म ऐसे दोनों कर्म पुद्गल पिण्डरूप हैं, इस कारण एक ही स्वभाव है, स्वभावभेद तो नहीं। (अनुभव) रस भी तो एक ही है, रसभेद तो नहीं। विवरण—शुभ कर्मके उदयसे जीव वँधा है, सुखी है; अशुभ कर्मके उदयसे जीव वँधा है, दुखी है; विशेष तो कुछ नहीं। [आश्रय] फलकी निष्पत्ति, वह भी एक ही है, विशेष तो कुछ नहीं। विवरण—शुभ कर्मके उदय संसार, त्यों ही अशुभ कर्मके उदय संसार; विशेष तो कुछ नहीं। इससे ऐसा अर्थ निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला, कोई कर्म वुरा ऐसा तो नहीं, सव ही कर्म दुःखरूप हैं। 'तत् एकं वन्धमार्गाश्रितं इष्टं" [तत्] कर्म [एकं] निःसन्देह [वन्धमार्गाश्रित] वन्धको करता है, [इष्टं] गणधरदेवने ऐसा माना है। किस कारणसे? जिस कारण "खलु समस्तं स्वयं वन्धहेतुः" [खलु] निश्चयसे [समस्त] सव कर्म जाति [स्वयं वन्धहेतुः] आप भी वन्धरूप है। भावार्थ इस प्रकार है—आप मुक्तस्वरूप होवे तो कदाचित् मुक्तिको करे; कर्मजाति आप स्वयं वन्ध पर्यायरूप पुद्गलपिण्ड वँधी है सो मुक्ति कैसे करेगी। इससे कर्म सर्वथा वन्धमार्ग है ॥ ३–१०२ ॥

(स्वागता)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥४-१०३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् सर्वविदः सर्वं अपि कर्म अविशेषात् बंधसाधनं उशन्ति" [यत्] जिस कारण [सर्वविदः] सर्वज्ञ वीतराग [सर्वं अपि कर्म] जितनी शुभरूप व्रत, संयम, तप, शील, उपवास इत्यादि क्रिया अथवा विषय-कषाय, असंयम इत्यादि क्रिया उसको [अविशेषात्] एकसी दृष्टिकर [बन्धसाधनं उशन्ति] बन्धका कारण कहते हैं; भावार्थ इस प्रकार है—जैसे जीवको अशुभ क्रिया करते हुए बंध होता है वैसे ही शुभ क्रिया करते हुए जीवको बन्ध होता है, बन्धनमें तो विशेष कुछ नहीं. "तेन तत् सर्वं अपि प्रतिषिद्धं" [तेन] इस कारण [तत्] कर्म [सर्वं अपि] शुभरूप अथवा अशुभरूप, (उसमें) [प्रतिषिद्धं] कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रियाको मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता है सो निषेध किया, ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। "एव ज्ञानं शिवहेतुः विहितं" [एव ज्ञानं] [illegible] [शिवहेतुः] मोक्षमार्ग है, [विहितं] अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है ॥४-१०३॥

(शिखरिणी)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥४-१०४॥

खण्डान्वय सहित अर्थः—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि शुभ क्रिया अथवा अशुभ क्रिया सर्व निषिद्ध की, [illegible] ——"सर्वस्मिन् सुकृत-दुरिते कर्मणि किल निषिद्धे" [सर्वस्मिन्] [illegible] [सुकृत] [illegible] [दुरिते] [illegible] [कर्मणि] [illegible] [निषिद्धे] [illegible] [किल] [illegible] [नैष्कर्म्ये]

[illegible]

(शिखरिणी)

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम् ॥६-१०५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवस्य हेतुः" [यत् एतत्] जो कोई [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण ऐसा [भवनं] सत्तास्वरूप वस्तु [ध्रुवं अचलं] निश्चयसे स्थिर होकर [आभाति] प्रत्यक्षरूपसे स्वरूपका आस्वादक कहा है [अयं] यही [शिवस्य हेतुः] मोक्षका मार्ग है । किस कारणसे ? "यतः स्वयं अपि तत् शिव इति" [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [तच्छिव इति] मोक्षरूप है । भावार्थ इस प्रकार है—जीवका स्वरूप सदा कर्मसे मुक्त है, उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नहीं । "अतः अन्यत् बन्धस्य हेतुः" [अतः] शुद्धस्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके विना [अन्यत्] जो कुछ है शुभ

क्रियारूप, अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार [बन्धस्य हेतुः] वह सब बन्धका मार्ग है; "यतः स्वयं अपि बन्ध इति" [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [बन्ध इति] सर्व ही बन्धरूप है। "ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूतिः" [ततः] तिस कारण [तत्] पूर्वोक्त [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण, ऐसा है [स्वं भवनं] अपना जीवका सत्त्व [विहितम्] मोक्षमार्ग है, [हि] निश्चयसे [अनुभूतिः] प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ ॥६-१०५॥

(अनुष्टुप्)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥७-१०६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानस्वभावेन वृत्तं तत् तत् मोक्षहेतुः एव" [ज्ञान] शुद्ध वस्तुमात्र, उसकी [स्वभावेन] स्वरूपनिष्पत्ति, उससे जो [वृत्तं] [illegible] चारित्र [तत् तत् मोक्षहेतुः] वही वही मोक्षमार्ग है; [एव] [illegible] भावार्थ इस प्रकार है—कोई जानेगा कि स्वरूपाचरण चारित्र [illegible] आत्माके शुद्ध स्वरूपको विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्र [illegible] सो ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध होता है, क्योंकि ऐसा तो [illegible] नहीं है। तो स्वरूपाचरण चारित्र कैसा है? जिस प्रकार पन्ना [सुवर्णपत्र] [illegible] सुवर्णमेंकी कालिमा जाती है, सुवर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार [illegible] अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन था, वह जाता है, शुद्ध [illegible] जीवद्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र [illegible] मार्ग है। कुछ विशेष [illegible] [illegible] भेद है। वे भेद जातिभेदकी अपेक्षा तो नहीं। [illegible] [illegible] ऐसा [illegible] भेद है। [illegible] इस प्रकार है—[illegible] [illegible] मोक्षका कारण है। [illegible] [illegible] [सदा] [illegible] [ज्ञानस्य भवनं] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [एकद्रव्यस्वभावत्वात्] [illegible] [illegible] इस प्रकार है—[illegible]

जीवका शुद्धपना गुण; जो वस्तुमात्र अनुभव करते हैं तो ऐसा भेद भी मिटता है, क्योंकि शुद्धपना तथा जीवद्रव्य वस्तु तो एक सत्ता है, ऐसा शुद्धपना मोक्षकारण है, इसके बिना जो कुछ करतूतिरूप है वह समस्त बन्धका कारण है ॥७-१०६॥

(अनुष्टुप्)

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि ।

द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥८-१०७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि" [कर्मस्वभावेन] जितना शुभ क्रियारूप अथवा अशुभ क्रियारूप आचरणलक्षण चारित्र उसके स्वभावसे अर्थात् उसरूप जो [वृत्तं] चारित्र वह [ज्ञानस्य] शुद्ध चैतन्यवस्तुका [भवनं] शुद्धस्वरूपपरिणमन [न हि] नहीं होता ऐसा निश्चय है। भावार्थ इस प्रकार है—जितना शुभ-अशुभक्रियारूप आचरण अथवा बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म [illegible] अभिलाष स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन है, शुद्ध [illegible] इसलिए बन्धका कारण है, मोक्षका कारण नहीं है। इस कारण जिस [illegible] नाहर (सिंह) कहनेके लिए नाहर है उसी प्रकार आचरणरूप [illegible] कहनेके लिए चारित्र है, परन्तु चारित्र नहीं है, निःसन्देहरूपसे [illegible] कर्म मोक्षहेतुः न" [तत्] इस कारण [कर्म] बाह्य-आभ्यन्तररूप [illegible] आचरणरूप (चारित्र) है वह [मोक्षहेतुः न] कर्मक्षपणका [illegible] कारण है। किस कारणसे ? "द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्" [द्रव्यान्तर] [illegible] पुद्गलद्रव्य, उसके [स्वभावत्वात्] स्वभावरूप होनेसे, अर्थात् [illegible] उसका कार्य है, जीवका स्वरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार [illegible] सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प बहिःजल्परूप जितना विकल्परूप [illegible] परिणमन है, जीवका शुद्ध परिणमन नहीं है [illegible] मोक्षका कारण नहीं है, बन्धका कारण है ॥ ८-१०७ ॥

(अनुष्टुप्)

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च ।

मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥९-१०८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करनेयोग्य नहीं है उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है ? उत्तर इस प्रकार है—वर्जन करने योग्य है । कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है ऐसा कहते हैं—"तत् निषिध्यते" [तत्] शुभ-अशुभरूप करतूति [निषिध्यते] तजनीय है । कैसा होनेसे निषिद्ध है ? "मोक्षहेतुतिरोधानात्" [मोक्ष] निष्कर्म अवस्था, उसका [हेतु] कारण है जीवका शुद्धरूप परिणमन, उसका [तिरोधानात्] घातक ऐसा है । इसलिए करतूति निषिद्ध है । और कैसा होनेसे ? "स्वयं एव बन्धत्वात्" अपने आप भी बन्धरूप है । भावार्थ इस प्रकार है—जितना शुभ अशुभ आचरण है वह सब कर्मके उदयके कारण अशुद्धरूप है, इसलिए त्याज्य है, उपादेय नहीं है । और कैसा होनेसे ? "मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्" [मोक्ष] सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्म-पद, उसका [हेतु] जीवका गुण जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन उसका [तिरोधायि] घातनशील ऐसा है [भावत्वात्] सहज लक्षण जिसका, ऐसा है इसलिए कर्म निषिद्ध है । भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी स्वरूपसे निर्मल है, कीचड़के संयोगसे मैला होता है—पानीका शुद्धपना घाता जाता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य स्वभावसे स्वच्छस्वरूप है—केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है, वह स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणामके कारण मिटा है । अशुद्ध परिणामका ऐसा ही स्वभाव है जो शुद्धपनाको मेटे, इसलिए समस्त कर्म निषिद्ध है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई जीव क्रियारूप यतिपना पाते हैं, उस यतिपनेमें मग्न होते हैं—जो 'हमने मोक्षमार्ग पाया, जो कुछ करना था सो किया,' सो उन जीवोंको समझाते हैं कि यतिपनाका भरोसा छोड़कर शुद्ध चैतन्य स्वरूपको अनुभवो ।।९-१०८।।

(शार्दूलविक्रीडित)

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा ।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ।।१०-१०९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मोक्षार्थिना तत् इदं समस्तं अपि कर्म संन्यस्तव्यं" [मोक्षार्थिना] लकर्मक्षयलक्षण मोक्ष—अतीन्द्रिय पद, उसमें जो अनन्त

सुख उसको उपादेय अनुभवता है ऐसा है जो कोई जीव उसके द्वारा [तत् इदं] वही कर्म जो पहले ही कहा था [समस्तं अपि] जितना शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप, अन्तर्जल्परूप वहिर्जल्परूप इत्यादि करतूतिरूप [कर्म] क्रिया अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलका पिण्ड, अशुद्ध रागादिरूप जीवके परिणाम—ऐसा कर्म [संन्यस्तव्यं] जीवस्वरूपका घातक है ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है। "तत्र संन्यस्ते सति" उस समस्त ही कर्मका त्याग होनेपर "पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा" पुण्यका पापका कौन भेद रहा ? भावार्थ इस प्रकार है—समस्त कर्मजाति हेय है, पुण्य-पापके विवरणकी क्या वात रही। "किल" ऐसी वात निश्चयसे जानो, पुण्यकर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। "ज्ञानं मोक्षस्य हेतुः भवन् स्वयं धावति" [ज्ञानं] आत्माका शुद्ध चेतनारूप परिणमन [मोक्षस्य] सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसी अवस्थाका [हेतुः भवन्] कारण होता हुआ [स्वयं धावति] स्वयं दौड़ता है ऐसा सहज है ! भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर सहज ही अन्धकार मिटता है वैसे ही जीवके शुद्ध चेतनारूप परिणमने पर सहज ही समस्त विकल्प मिटते हैं, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्मरूप परिणमते हैं, रागादि अशुद्ध परिणाम मिटता है। कैसा है ज्ञान ? "नैष्कर्मप्रतिवद्धं" निर्विकल्पस्वरूप है। और कैसा है ? "उद्धतरसं" प्रगटरूपसे चैतन्यस्वरूप है। कैसा होनेसे मोक्षका कारण होता है ? "सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्" [सम्यक्त्व] जीवका गुण सम्यग्दर्शन [आदि] सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसे हैं जो [निजस्वभाव] जीवके क्षायिक गुण उनके [भवनात्] प्रगटपनेके कारण। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनका मिला हुआ है, यहां ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यों कहा ? उसका समाधान ऐसा है—शुद्धस्वरूप ज्ञानमें सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं, इसलिए दोष तो कुछ नहीं, गुण है ॥१०-१०९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपिविहितस्तावन्न काचित्क्षतिः ।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ।११-११०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहां कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टिका यतिपना क्रियारूप है, सो वन्धका कारण है सम्यग्दृष्टिका है, जो यतिपना शुभ क्रियारूप, सो मोक्षका कारण है; कारण कि अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्मका क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं। वहां समाधान ऐसा—जितनी शुभ अशुभ क्रिया, वहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्योंका विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूपका विचार इत्यादि समस्त कर्मवन्धका कारण है। ऐसी क्रियाका ऐसा ही स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिका ऐसा भेद तो कुछ नहीं। ऐसी करतूतिसे ऐसा वन्ध है। शुद्धस्वरूप परिणामनमात्रसे मोक्ष है। यद्यपि एक ही कालमें सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान भी है, क्रियारूप परिणाम भी है। तथापि क्रियारूप है जो परिणाम उससे अकेला वन्ध होता है, कर्मका क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप, सहारा किसका ? उसी समय शुद्ध-स्वरूप अनुभव ज्ञान भी है। उसी समय ज्ञानसे कर्मक्षय होता है, एक अंशमात्र भी बंध नहीं होता है। वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है। ऐसा जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं—"तावत्कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः" [**तावत्**] तव तक [**कर्म**] क्रियारूप परिणाम [**ज्ञान**] आत्मद्रव्यका शुद्धस्वरूप परिणमन, उनका [**समुच्चयः**] एक जीवमें एक ही काल अस्तित्वपना है, [**अपि विहितः**] ऐसा भी है; परन्तु एक विशेष—"काचित् क्षतिः न" [**काचित्**] कोई भी [**क्षतिः**] हानि [**न**] नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है—एक जीवमें एक ही काल ज्ञान,-क्रिया दोनों कैसे होते हैं ? समाधान ऐसा—विरुद्ध तो कुछ नहीं, कितने ही काल तक दोनों होते हैं, ऐसा ही वस्तुका परिणाम है; परन्तु विरोधीके समान दिखता है, परन्तु अपने अपने स्वरूप है, विरोध तो नहीं करता है। उतने काल तक जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं—"यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति" [**यावत्**] जितने काल [**ज्ञानस्य**] आत्माका मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटा है, आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसकी [**सा**] पूर्वोक्त [**कर्म**] क्रिया, उसका [**विरतिः**] त्याग [**सम्यक् पाकं न उपैति**] वरावर परिपक्वताको नहीं पाता है अर्थात् क्रियाका मूलसे विनाश नहीं हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है—जव तक अशुद्ध परिणमन है तव तक जीवका विभाव परिणमनरूप है। उस विभाव परिणमनका अन्तरंग निमित्त है, वहिरंग निमित्त है। विवरण—अन्तरंग निमित्त जीवकी विभावरूप परिणमनशक्ति, वहिरंग निमित्त मोहनीय कर्मरूप परिणमा है

पुद्गलपिण्डका उदय । सो मोहनीयकर्म दो प्रकारका है— एक मिथ्यात्वरूप है, दूसरा चारित्रमोहरूप है । जीवका विभाव परिणाम भी दो प्रकारका है— जीवका एक सम्यक्त्व गुण है वही विभावरूप होकर मिथ्यात्वरूप परिणमा है । उसके प्रति बहिरंग निमित्त मिथ्यात्वरूप परिणमा है पुद्गलपिण्डका उदय, जीवका एक चारित्रगुण है, वह विभावरूप परिणमता हुआ विषय कषायलक्षण चारित्रमोहरूप परिणमा है, उसके प्रति बहिरंग निमित्त है चारित्रमोहरूप परिणमा पुद्गलपिण्डका उदय । विशेष ऐसा— उपशमका, क्षपणका क्रम इस प्रकार है: पहले मिथ्यात्व कर्मका उपशम होता है अथवा क्षपण होता है; उसके बाद चारित्रमोहका उपशम होता है अथवा क्षपण होता है । इसलिए समाधान ऐसा––किसी आसन्न भव्य जीवके काललब्धि प्राप्त होनेसे मिथ्यात्वरूप पुद्गलपिण्ड–कर्म उपशमता है अथवा क्षपण होता है । ऐसा होने पर जीव सम्यक्त्वगुणरूप परिणमता है, वह परिणमन शुद्धतारूप है । वही जीव जब तक क्षपकश्रेणिपर चढ़ेगा तब तक चारित्रमोह कर्मका उदय है । उस उदयके रहते हुए जीव भी विषय कषायरूप परिणमता है, वह परिणमन रागरूप है, अशुद्धरूप है, इस कारण किसी कालमें जीवका शुद्धपना अशुद्धपना एक ही समय घटता है, विरुद्ध नहीं । "किन्तु" कुछ विशेष है, वह विशेष जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं––"अत्र अपि" एक ही जीवके एक ही काल शुद्धपना अशुद्धपना यद्यपि होता है तथापि अपना अपना कार्य करते हैं । "यत् कर्म अवशतः बन्धाय समुल्लसति" [यत्] जितनी [कर्म] द्रव्यरूप भावरूप––अन्तर्जल्प-बहिर्जल्परूप–सूक्ष्म-स्थूलरूप क्रिया, [अवशतः] सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रियासे विरक्त है पर चारित्रमोह कर्मके उदयमें बलात्कार होती है ऐसी [बन्धाय समुल्लसति] जितनी क्रिया है उतनी––ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है, संवर निर्जरा अंशमात्र भी नहीं करती है । "तत् एकं ज्ञानं मोक्षाय स्थितं" [तत्] पूर्वोक्त [एकं ज्ञानं] एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश [मोक्षाय स्थितं] ज्ञानावरणादि कर्मक्षयका निमित्त है । भावार्थ इस प्रकार है—एक जीवमें शुद्धपना अशुद्धपना एक ही काल होता है, परन्तु जितना अंश शुद्धपना है उतना अंश कर्मक्षपण है, जितना अंश अशुद्धपना है उतना अंश कर्मबन्ध होता है । एक ही काल दोनों कार्य होते हैं । "एव" ऐसा ही है, सन्देह करना नहीं । कैसा है शुद्धज्ञान ? "परमं" सर्वोत्कृष्ट है—पूज्य है । और कैसा है ? "स्वतः विमुक्तं" तीनों कालमें समस्त पर द्रव्यसे भिन्न है ॥ ११–११० ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्तियन्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ।।१२-१११।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्मनयावलम्बनपरा मग्नाः" [**कर्म**] अनेक प्रकार की क्रिया, ऐसा है [**नय**] पक्षपात, उसका [**अवलम्बन**] क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसा जानकर क्रियाका प्रतिपाल, उसमें [**पराः**] तत्पर हैं जो कोई अज्ञानी जीव वे भी [**मग्नाः**] धारमें डूवे हैं । भावार्थ इस प्रकार है—संसारमें रुलेगा, मोक्षका अधिकारी नहीं है । किस कारणसे डूवे हैं ? "यत् ज्ञानं न जानन्ति" [**यत्**] जिस कारण [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यवस्तुका [**न जानन्ति**] प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद करनेको समर्थ नहीं हैं, क्रिया-मात्र मोक्षमार्ग ऐसा जानकर क्रिया करनेको तत्पर हैं । "ज्ञाननयैषिणः अपि मग्नाः" [**ज्ञान**] शुद्ध चैतन्यप्रकाश, उसका [**नय**] पक्षपात, उसके [**एषिणः**] अभिलाषी हैं । भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपका अनुभव तो नहीं है, परन्तु पक्षमात्र बोलते हैं । [**अपि**] ऐसे भी जीव [**मग्नाः**] संसारमें डूवे ही हैं । कैसे होकर डूवे ही हैं ? "यत् अतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः" [**यत्**] जिस कारण [**अतिस्वच्छन्द**] अति ही स्वेच्छाचारपना, ऐसा है [**मन्दोद्यमाः**] शुद्ध चैतन्यस्वरूपका विचारमात्र भी नहीं करते हैं । ऐसे जो कोई हैं उन्हें मिथ्यादृष्टि जानना । यहां कोई आशंका करता है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग ऐसी प्रतीति करने पर मिथ्यादृष्टिपना क्यों होता है ? समाधान इस प्रकार है—वस्तुका स्वरूप इस प्रकार है कि जिस काल शुद्ध स्वरूपका अनुभव है उस काल अशुद्धतारूप है जितनी भाव द्रव्यरूप क्रिया उतनी सहज ही मिटती है । मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि जितनी क्रिया जैसी है वैसी ही रहती है, शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है; सो वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नहीं है । इससे जो ऐसा मानता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है, वचनमात्रसे कहता है कि 'शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है; ऐसा कहनेसे कार्यसिद्धि तो कुछ नहीं है । "ते विश्वस्य उपरि तरन्ति" [**ते**] ऐसे जीव सम्यग्दृष्टि हैं जो कोई, वे [**विश्वस्य उपरि**] कहे हैं जो दोनों जातिके जीव उन दोनोंके ऊपर होकर, [**तरन्ति**] सकल कर्मोंका क्षय कर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं । कैसे हैं वे ? "ये सततं स्वयं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति" [**ये**] जो कोई

निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव [सततं] निरन्तर [स्वयं ज्ञानं] शुद्ध ज्ञानस्वरूप [भवन्तः] परिणमते हैं, [कर्म न कुर्वन्ति] अनेक प्रकारकी क्रियाको मोक्षमार्ग जानकर नहीं करते हैं; भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार कर्मके उदयमें शरीर विद्यमान है पर हेयरूप जानते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकारकी क्रियायें विद्यमान हैं पर हेयरूप जानते हैं। [प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति] 'क्रिया तो कुछ नहीं'—ऐसा जानकर विषयी असंयमी भी कदाचित् नहीं होते, क्योंकि असंयमका कारण तीव्र संक्लेश परिणाम है सो तो संक्लेश मूल ही से गया है। ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे जीव तत्काल मात्र मोक्षपदको पाते हैं ॥१२-१११॥

(मन्दाक्रान्ता)

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योतिःकवलिततमःप्रोज्जजृम्भे भरेण ॥१३-११२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानज्योतिः भरेण प्रोज्जजृम्भे" [ज्ञानज्योतिः] शुद्ध स्वरूपका प्रकाश [भरेण] अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्यके द्वारा [प्रोज्जजृम्भे] प्रगट हुआ। कैसा है? "हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्ध आरब्धकेलि" [हेला] सहजरूपसे [उन्मीलत्] प्रगट हुए [परमकलया] निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाहके [सार्द्धं] साथ [आरब्धकेलि] प्राप्त किया है परिणमन जिसने, ऐसा है। और कैसा है? "कवलिततमः" [कवलित] दूर किया है [तमः] मिथ्यात्वअन्धकार जिसने, ऐसा है। ऐसा जिस प्रकार हुआ है उस प्रकार कहते हैं—"तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूलं कृत्वा" [तत्] कही है अनेक प्रकार [कर्म] भावरूप अथवा द्रव्यरूप क्रिया–[सकलं अपि] पापरूप अथवा पुण्यरूप–(उसे) [बलेन] बलजोरीसे [मूलोन्मूलं कृत्वा] जितनी क्रिया है वह सब मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा जान समस्त क्रियामें ममत्वका त्याग कर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ। कैसा है कर्म? "भेदोन्मादं" [भेद] शुभ क्रिया मोक्षमार्ग ऐसा पक्षपातरूप भेद (अन्तर) उससे [उन्मादं] हुआ है गहिलपना (पागलपना) जिसमें, ऐसा है। और कैसा है? "पीतमोहं" [पीत]

निगला है [**मोहं**] विपरीतपना जिसने, ऐसा है। जैसे कोई धतूराका पान कर गहिल होता है ऐसा है जो पुण्यकर्मको भला मानता है। और कैसा है ? "भ्रमरसभरात् नाटयत्" [**भ्रम**] धोखा, उसका [**रस**] अमल, उसका [**भरात्**] अत्यन्त चढ़ना, उससे [**नाटयत्**] नाचता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार कोई धतूरा पीकर सुध जानेपर नाचता है उसी प्रकार मिथ्यात्वकर्मके उदयमें शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है। शुभ कर्मके उदयसे जो देव आदि पदवी, उसमें रंजायमान होता है कि मैं देव, मेरे ऐसी विभूति, सो तो पुण्यकर्मके उदयसे; ऐसा मानकर बार-बार रंजायमान होता है ॥१३–११२॥



[५]

आस्रव-अधिकार

(द्रुतविलम्बित)

अथ महामदनिर्भरमन्थरं
समररंगपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगंभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ।।१-११३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अथ अयं दुर्जयबोधधनुर्धर:आस्रवं जयति" [**अथ**] यहाँसे लेकर [**अयं दुर्जय**] यह अखण्डित प्रताप, ऐसा [**बोध**] शुद्ध स्वरूप अनुभव, ऐसा है [**धनुर्धरः**] महायोधा, वह [**आस्रवं**] अशुद्ध रागादि परिणामलक्षण आस्रव, उसको [**जयति**] मेटता है। भावार्थ इस प्रकार है—यहाँसे लेकर आस्रवका स्वरूप कहते हैं। कैसा है ज्ञान योद्धा ? "उदार-गम्भीरमहोदयः" [**उदार**] शाश्वत ऐसा है [**गम्भीर**] अनन्त शक्ति विराजमान, ऐसा है [**महोदयः**] स्वरूप जिसका ऐसा है। कैसा है आस्रव ? "महामदनिर्भरमन्थरं" [**महामद**] समस्त संसारी जीवराशि आस्रवके आधीन है, उससे हुआ है गर्व-अभिमान, उससे [**निर्भर**] मग्न हुआ है [**मन्थरं**] मतवालाकी भाँति, ऐसा है। "समररङ्गपरागतं" [**समर**] संग्राम ऐसी ही [**रङ्ग**] भूमि, उसमें [**परागतं**] सन्मुख आया है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार प्रकाश अन्धकारका परस्पर विरोध है उसी प्रकार शुद्ध ज्ञान और आस्रवको परस्पर विरोध है ।।१-११३।।

(शालिनी)

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव ।

रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभावःसर्वभावास्रवाणाम् ॥२-११४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जीवस्य यः भावः ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्" [जीवस्य] काललब्धि प्राप्त होनेसे प्रगट हुआ है सम्यक्त्वगुण जिसका ऐसा है जो कोई जीव, उसका [यः भावः] जो कोई सम्यक्त्वपूर्वक शुद्धस्वरूपअनुभवरूप परिणाम। ऐसा परिणाम कैसा होता है ? [ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्] शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है। उस कारणसे "एषः" ऐसा है जो शुद्ध चेतनामात्र परिणाम, वह "सर्वभावास्रवाणां अभावः" [सर्व] असंख्यात लोकमात्र जितने [भाव] अशुद्ध चेतनारूप राग, द्वेष, मोह आदि जीवके विभावपरिणाम होते हैं जो [आस्रवाणां] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मके आगमनको निमित्तमात्र हैं उनके [अभावः] मूलोन्मूल विनाश है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस काल शुद्ध चैतन्यवस्तुकी प्राप्ति होती है उस काल मिथ्यात्व राग द्वेषरूप जीवका विभावपरिणाम मिटता है, इसलिए एक ही काल है, समयका अन्तर नहीं है। कैसा है शुद्ध भाव ? "रागद्वेष-मोहैः विना" रागादि परिणाम रहित है। शुद्ध चेतनामात्र भाव है। और कैसा है ? "द्रव्य-कर्मास्रवौघान् सर्वान् रुन्धन्" [द्रव्यकर्म] ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप परिणमा है पुद्गलपिण्ड, उसका [आस्रव] होता है धाराप्रवाहरूप समय-समय आत्मप्रदेशोंके साथ एकक्षेत्रावगाह, उसका [ओघ] समूह। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानावरणादिरूप कर्मवर्गणा परिणमती है, उसके भेद असंख्यात लोकमात्र हैं। उसके [सर्वान्] जितने धारारूप आते हैं कर्म उन सबको [रुन्धन्] रोकता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई ऐसा मानेगा कि जीवका शुद्ध भाव होता हुआ रागादि अशुद्ध परिणामका नाश करता है, आस्रव जैसा ही होता है वैसा ही होता है सो ऐसा तो नहीं, जैसा कहते हैं वैसा है—जीवके शुद्ध भावरूप परिणमने पर अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। अशुद्ध भावके मिटने पर अवश्य ही द्रव्यकर्मरूप आस्रव मिटता है, इसलिये शुद्ध भाव उपादेय है, अन्य समस्त विकल्प हेय है ॥२–११४॥

(उपजाति)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३-११५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं ज्ञानी निरास्रव एव" [अयं] द्रव्यरूप विद्यमान है वह [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**निरास्रवः एव**] आस्रवसे रहित है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवोंको नोंध कर (समझ पूर्वक) निहारने पर आस्रव घटता नहीं। कैसा है ज्ञानी ? "एकः" रागादि अशुद्ध परिणामसे रहित है, शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है ? "ज्ञायकः" स्वद्रव्यस्वरूप परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तुको जाननेके लिए समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञायकमात्र है, रागादि अशुद्धरूप नहीं है। और कैसा है ? "सदा ज्ञानमयैकभावः" [**सदा**] सर्व काल धाराप्रवाहरूप [**ज्ञानमय**] चेतनरूप ऐसा है [**एकभावः**] एक परिणाम जिसका, ऐसा है, भावार्थ इस प्रकार है—जितने विकल्प हैं वे सब मिथ्या। ज्ञानमात्र वस्तुका स्वरूप था सो अविनश्वर रहा। निरास्रवपना सम्यग्दृष्टि जीवको जिस प्रकार घटता है उस प्रकार कहते हैं—"भावास्रवाभावं प्रपन्नः" [**भावास्रव**] मिथ्यात्व राग द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम, उसका [**अभावं**] विनाश, उसको [**प्रपन्नः**] प्राप्त हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त कालसे लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणमता था, उसका नाम आस्रव है। सो तो काललब्धि प्राप्त होने पर वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमा, शुद्धतारूप परिणमा, अशुद्ध परिणाम मिटा इसलिए भावास्रवसे तो इस प्रकार रहित हुआ। "द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः" [**द्रव्यास्रवेभ्यः**] ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप जीवके प्रदेशोंमें बैठे हैं पुद्गलपिण्ड, उनसे [**स्वतः**] स्वभावसे [**भिन्नः एव**] सर्व काल निराला ही है। भावार्थ इस प्रकार है—आस्रव दो प्रकारका है। विवरण—एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहने पर कर्मरूप बैठे हैं आत्माके प्रदेशोंमें पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रवसे जीव स्वभाव ही से रहित है। यद्यपि जीवके प्रदेश कर्म पुद्गलपिण्डके प्रदेश एक ही क्षेत्रमें रहते हैं तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं, अपने अपने द्रव्य गुण पर्यायरूप रहते हैं। इसलिये पुद्गलपिण्डसे जीव भिन्न है। भावास्रव कहने पर मोह राग द्वेषरूप विभाव अशुद्धचेतन परिणाम सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीवके मिथ्यादृष्टि अवस्थामें विद्यमान ही था तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर अशुद्ध परिणाम मिटा। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रवसे रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है ॥३-११५॥

और सम्यग्दृष्टि जीव जिस प्रकार निरास्रव है उस प्रकार कहते हैं—

(शार्दूलविक्रीडित)

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ।
उच्छिन्दन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्
आत्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥४-११६॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—"आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिरास्रवः भवति" [आत्मा] जीवद्रव्य [यदा] जिसी काल [ज्ञानी स्यात्] अनंत कालसे विभाव मिथ्यात्वभावरूप परिणमा था सो निकट सामग्री पाकर सहज ही विभाव परिणाम छूट जाता है, स्वभाव सम्यक्त्वरूप परिणमता है। ऐसा कोई जीव होता है। [तदा] उस कालसे लेकर पूरे आगामी कालमें [नित्यनिरास्रवः] सर्वथा सर्व काल सम्यग्दृष्टि जीव आस्रवसे रहित [भवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई संदेह करेगा कि सम्यग्दृष्टि आस्रव सहित है कि आस्रव रहित हैं ? समाधान ऐसा कि आस्रवसे रहित है। क्या करता हुआ निरास्रव है ? "निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं सन्न्यस्यन्" [निज] अपने [बुद्धि] मनको [पूर्वं] आलम्बन कर होता है जितना मोह राग द्वेष-रूप अशुद्ध परिणाम ऐसा जो [रागं] पर द्रव्यके साथ रंजित परिणाम, जो [समग्रं] असंख्यात लोकमात्र भेदरूप है, उसे [अनिशं] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कालसे लेकर आगामी सर्व कालमें [स्वयं] सहज ही [सन्न्यस्यन्] छोड़ता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—नाना प्रकारके कर्मके उदयमें नाना प्रकारकी संसार-शरीर-भोग सामग्री होती है। इस समस्त सामग्रीको भोगता हुआ मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, इत्यादिरूप रंजायमान नहीं होता। जानता है—मैं चेतनामात्र शुद्धस्वरूप हूँ, यह समस्त कर्मकी रचना है। ऐसा अनुभवते हुए मनका व्यापाररूप राग मिटता है। "अबुद्धिपूर्वं अपि तं जेतुं वारंवारं स्वशक्तिं स्पृशन्" [अबुद्धिपूर्वं] मनके आलम्बन विना मोहकर्मके उदयरूप निमित्तकारणसे परिणमे हैं अशुद्धतारूप जीवके प्रदेश, [तं अपि] उसको भी [जेतुं] जीतनेके लिए [वारंवारं] अखण्डितधाराप्रवाहरूप [स्वशक्तिं] शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसको [स्पृशन्] स्वानुभवप्रत्यक्षरूपसे आस्वादता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यात्व रागद्वेषरूप हैं जो जीवके अशुद्धचेतनारूप विभाव परिणाम वे दो प्रकारके हैं—एक परिणाम बुद्धिपूर्वक हैं, एक परिणाम अबुद्धिपूर्वक हैं। विवरण—

बुद्धिपूर्वक कहने पर जो सव परिणाम मनके द्वारा प्रवर्तते हैं, बाह्य विषयके आधारसे प्रवर्तते हैं। प्रवर्तते हुए वह जीव आप भी जानता है कि मेरा परिणाम इस रूप है। तथा अन्य जीव भी अनुमान करके जानता है जो इस जीवके ऐसा परिणाम है। ऐसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहा जाता है। सो ऐसे परिणामको सम्यग्दृष्टि जीव मेट सकता है, क्योंकि ऐसा परिणाम जीवकी जानकारीमें है। शुद्धस्वरूपका अनुभव होने पर जीवके सहाराका भी है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव पहले ही ऐसा परिणाम मेटता है। अबुद्धिपूर्वक परिणाम कहने पर पाँच इन्द्रिय और मनके व्यापारके विना ही मोहकर्मके उदयका निमित्त कर मोह राग द्वेषरूप अशुद्धविभावपरिणामरूप आप स्वयं जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशोंमें परिणमता है सो ऐसा परिणमन जीवकी जानकारीमें नहीं है और जीवके सहाराका भी नहीं है, इसलिए जिस किसी प्रकार मेटा जाता नहीं। अतएव ऐसे परिणामको मेटनेके लिये निरन्तरपने शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है, शुद्ध स्वरूपका अनुभव करने पर सहज ही मिटेगा। दूसरा उपाय तो कोई नहीं, इसलिए एक शुद्ध स्वरूपका अनुभव उपाय है। और क्या करता हुआ निरास्रव होता है? "एव परवृत्ति सकलां उच्छिन्दन्" [एव] अवश्य ही [पर] जितनी ज्ञेय वस्तु है उसमें [वृत्ति] रंजकपना ऐसी परिणाम-क्रिया, जो [सकलां] जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप, उसको [उच्छिन्दन्] मूलसे ही उखारता हुआ सम्यग्दृष्टि निरास्रव होता है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञेय-ज्ञायकका सम्बन्ध दो प्रकार है—एक तो जानपनामात्र है, राग-द्वेषरूप नहीं है। यथा—केवली सकल ज्ञेय वस्तुको देखते जानते हैं परन्तु किसी वस्तुमें राग-द्वेष नहीं करते। उसका नाम शुद्ध ज्ञानचेतना कहा जाता है। सो सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञानचेतनारूप जानपना है, इसलिए मोक्षका कारण है—बन्धका कारण नहीं है। दूसरा जानपना ऐसा जो कितनी ही विषयरूप वस्तुका जानपना भी है और मोह कर्मके उदयका निमित्त पाकर इष्टमें राग करता है, भोगकी अभिलाषा करता है तथा अनिष्टमें द्वेष करता है, अरुचि करता है सो ऐसे राग-द्वेषसे मिला हुआ है जो ज्ञान उसका नाम अशुद्ध चेतनालक्षण कर्मचेतना कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है, इसलिए बन्धका कारण है। ऐसा परिणमन सम्यग्दृष्टिके नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वरूप परिणाम गया होनेसे ऐसा परिणमन नहीं होता है। ऐसा अशुद्ध ज्ञानचेतनारूप परिणाम मिथ्यादृष्टिके होता है। और कैसा होता हुआ निरास्रव होता है? "ज्ञानस्य पूर्णः भवन्" पूर्ण ज्ञानरूप होता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानका खण्डितपना यह कि वह राग-द्वेषसे मिला हुआ है। राग-द्वेष गये होनेसे

ज्ञानका पूर्णपना कहा जाता है। ऐसा होता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है ॥ ४-११६ ॥

(अनुष्टुप्)

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥५-११७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई आशंका करता है—सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा निरास्रव कहा और ऐसा ही है। परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड जैसा था वैसा ही विद्यमान है। तथा उस कर्मके उदयमें नाना प्रकारकी भोगसामग्री जैसी थी वैसी ही है। तथा उस कर्मके उदयमें नाना प्रकारके सुख-दुःखको भोगता है, इन्द्रिय-शरीर-सम्बन्धी भोग सामग्री जैसी थी वैसी ही है। सम्यग्दृष्टि जीव उस सामग्रीको भोगता भी है। इतनी सामग्रीके रहते हुए निरास्रवपना कैसे घटित होता है ऐसा कोई प्रश्न करता है—"द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ सर्वस्यामेव जीवन्त्यां ज्ञानी नित्यं निरास्रवः कुतः" [**द्रव्यप्रत्यय**] जीवके प्रदेशोंमें परिणमा है पुद्गल पिण्डरूप अनेक प्रकारका मोहनीयकर्म, उसकी [**सन्ततौ**] सन्तति—स्थितिवन्धरूप वहुत काल पर्यन्त जीवके प्रदेशोंमें रहती है। [**सर्वस्यां**] जितनी होती, जैसी होती [**जीवन्त्यां**] उतनी ही है, विद्यमान है, वैसी ही है। [**एव**] निश्चयसे फिर भी [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**नित्यं निरास्रवः**] सर्वथा सर्व काल आस्रवसे रहित है ऐसा जो कहा सो [**कुतः**] क्या विचार करके कहा "चेत् इति मतिः" [**चेत्**] भो शिष्य ! यदि [**इति मतिः**] तेरे मनमें ऐसी आशंका है तो उत्तर सुन, कहते हैं ॥५-११७॥

(मालिनी)

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥६-११८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तदपि ज्ञानिनः जातु कर्मवन्धः न अवतरति" [**तदपि**] तो भी [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**जातु**] कदाचित् किसी भी नयसे [**कर्मबन्धः**]

ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलपिण्डका नूतन आगमन—कर्मरूप परिणमन [न अवतरति] नहीं होता । अथवा जो कभी सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष परिणामसे बन्ध होता है, अति ही अल्प बन्ध होता है तो भी सम्यग्दृष्टि जीवके बन्ध होता है ऐसा कोई तीनों कालोंमें कह सकता नहीं । आगे कैसा होनेसे बन्ध नहीं ? "सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्" जिस कारणसे ऐसा है उस कारणसे बन्ध नहीं घटित होता । [सकल] जितने शुभरूप अथवा अशुभरूप [राग] प्रीतिरूप परिणाम [द्वेष] दुष्ट परिणाम [मोह] पुद्गलद्रव्यकी विचित्रतामें आत्मबुद्धि ऐसा विपरीतरूप परिणाम, ऐसे [व्युदासात्] तीनों ही परिणामोंसे रहितपना ऐसा कारण है, इससे सामग्रीके विद्यमान होते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव कर्मबन्धका कर्ता नहीं है । विद्यमान सामग्री जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं—"यद्यपि पूर्वबद्धाः प्रत्ययाः द्रव्यरूपाः सत्तां न हि विजहति" [यद्यपि] जो ऐसा भी है कि [पूर्वबद्धाः] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहले जीव मिथ्यादृष्टि था, इससे मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणामके द्वारा बाँधे थे जो [द्रव्यरूपाः प्रत्ययाः] मिथ्यात्वरूप तथा चारित्रमोहरूप पुद्गल कर्मपिण्ड, वे [सत्तां] स्थिति बन्धरूप होकर जीवके प्रदेशोंमें कर्मरूप विद्यमान हैं ऐसे अपने अस्तित्वको [न हि विजहति] नहीं छोड़ते हैं । उदय भी देते हैं ऐसा कहते हैं—"समयं अनुसरन्तः अपि" [समयं] समय समय प्रति अखण्डित धाराप्रवाहरूप [अनुसरन्तः अपि] उदय भी देते हैं; तथापि सम्यग्दृष्टि कर्मबन्धका कर्ता नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई अनादिकालका मिथ्यादृष्टि जीव काललब्धिको प्राप्त करता हुआ सम्यक्त्व गुणरूप परिणमा, चारित्रमोह कर्मकी सत्ता विद्यमान है, उदय भी विद्यमान है, पंचेन्द्रिय विषयसंस्कार विद्यमान है, भोगता भी है, भोगता हुआ ज्ञान गुणके द्वारा वेदक भी है; तथापि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव आत्मस्वरूपको नहीं जानता है, कर्मके उदयको आप कर जानता है, इससे इष्ट-अनिष्ट विषय सामग्रीको भोगता हुआ राग-द्वेष करता है, इससे कर्मका बंधक होता है उस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है । सम्यग्दृष्टि जीव आत्माको शुद्धस्वरूप अनुभवता है, शरीर आदि समस्त सामग्रीको कर्मका उदय जानता है, आये उदयको खपाता है । परन्तु अन्तरंगमें परम उदासीन है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवको कर्मबन्ध नहीं है । ऐसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीवके सर्वकाल नहीं । जब तक सकल कर्मोंका क्षय कर निर्वाणपदवीको प्राप्त करता है तब तक ऐसी अवस्था है जब निर्वाणपद प्राप्त करेगा उस कालका तो कुछ कहना ही नहीं—साक्षात् परमात्मा है ॥६-११८॥

(अनुष्टुप्)

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः ।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥७-११९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि जीवके बन्ध नहीं है सो ऐसी प्रतीति जिस प्रकार होती है उस प्रकार और कहते हैं—"यत् ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असम्भवः ततः अस्य बन्धः न" [**यत्**] जिस कारण [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**राग**] रंजकपरिणाम [**द्वेष**] उद्वेग [**विमोहानां**] प्रतीतिका विपरीतपना ऐसे अशुद्ध भावोंकी [**असम्भवः**] विद्यमानता नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव कर्मके उदयमें रंजायमान नहीं होता, इसलिये रागादिक नहीं हैं [**ततः**] उस कारणसे [**अस्य**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**बन्धः न**] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मका बन्ध नहीं है । "एव" निश्चयसे ऐसा ही द्रव्यका स्वरूप है । "हि ते बन्धस्य कारणं" [**हि**] जिस कारण [**ते**] राग, द्वेष, मोह ऐसे अशुद्ध परिणाम [**बन्धस्य कारणं**] बन्धके कारण हैं । भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके चारित्रमोहका उदय तो है, वह उदयमात्र होने पर आगामी ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध होता होगा ? समाधान इस प्रकार है—चारित्रमोहका उदयमात्र होने पर बन्ध नहीं है । उदयके होने पर जो जीवके राग, द्वेष, मोहपरिणाम हो तो कर्मबन्ध होता है अन्यथा सहस्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नहीं होता । राग, द्वेष, मोह परिणाम भी मिथ्यात्व कर्मके उदयके सहारा है, मिथ्यात्वके जाने पर अकेले चारित्रमोहके उदयके सहारा का राग, द्वेष, मोह परिणाम नहीं है । इस कारण सम्यग्दृष्टिके राग, द्वेष, मोहपरिणाम होता नहीं, इसलिए कर्मबन्धका कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता ॥७-११९॥

(वसन्ततिलका)

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ॥८-१२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये शुद्धनयं ऐकाग्र्यं एव सदा कलयन्ति" [ये] जो कोई आसन्न भव्य जीव [शुद्धनयं] निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यवस्तुमात्रको, [ऐकाग्र्यं] समस्त रागादि विकल्पसे चित्तका निरोध कर [एव] निश्चयसे निश्चय लाकर [कलयन्ति] अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास करते हैं [सदा] सर्व काल। कैसा है? "उद्धतबोधचिह्नं" [उद्धत] सर्व काल प्रगट जो [बोध] ज्ञानगुण वही है [चिह्नं] लक्षण जिसका, ऐसा है। क्या करके "अध्यास्य" जिस किसी प्रकार मनमें प्रतीति लाकर। "ते एव समयस्य सारं पश्यन्ति" [ते एव] वे ही जीव निश्चयसे [समयस्य सारं] सकल कर्मसे रहित अनन्तचतुष्टय विराजमान परमात्मपदको [पश्यन्ति] प्रगटरूपसे पाते हैं। कैसा पाते हैं? "बन्धविधुरं" [बन्ध] अनादि कालसे एकबन्धपर्यायरूप चला आया था ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड, उससे [विधुरं] सर्वथा रहित है। भावार्थ इस प्रकार है—सकल कर्मके क्षयसे हुआ है शुद्ध, उसकी प्राप्ति होती है शुद्धस्वरूपका अनुभव करते हुए। कैसे हैं वे जीव? "रागादिमुक्तमनसः" राग, द्वेष, मोहसे रहित है परिणाम जिनका, ऐसे हैं। और कैसे हैं? "सततं भवन्तः" [सततं] निरन्तरपने [भवन्तः] ऐसे ही हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई जानेगा कि सर्वकाल प्रमादी रहता है, कभी एक जैसा कहा वैसा होता है सो इस प्रकार तो नहीं, सदा सर्वकाल शुद्धपनेरूप रहता है ॥८-१२०॥

(वसन्ततिलका)

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९-१२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तु पुनः" ऐसा भी है—"ये शुद्धनयतः प्रच्युत्य रागादियोगं उपयान्ति ते इह कर्मबन्धं विभ्रति" [ये] जो कोई उपशमसम्यग्दृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव [शुद्धनयतः] शुद्ध चैतन्यस्वरूपके अनुभवसे [प्रच्युत्य] भ्रष्ट हुए हैं तथा [रागादि] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणाम [योगं] रूप [उपयान्ति] होते हैं [ते] ऐसे हैं जो जीव वे [कर्मबन्धं] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड [विभ्रति] नया उपार्जित करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव जब तक सम्यक्त्वके परिणामोंसे साबुत रहता है तब तक राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामके

नहीं होनेसे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध नहीं होता। (किन्तु) जो सम्यग्दृष्टि जीव थे पीछे सम्यक्त्वके परिणामसे भ्रष्ट हुए, उनको राग,द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामके होनेसे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके परिणाम अशुद्धरूप हैं। कैसे हैं वे जीव ? "विमुक्तबोधाः" [विमुक्त] छूटा है [बोधाः] शुद्धस्वरूपका अनुभव जिनका, ऐसे हैं। कैसा है कर्मबन्ध ? "पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालं" [पूर्व] सम्यक्त्वके विना उत्पन्न हुए [बद्ध] मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणामके द्वारा बाँधे थे जो [द्रव्यास्रवैः] पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म तथा चारित्र मोहकर्म उनके द्वारा [कृत] किया है [विचित्र] नानाप्रकार [विकल्प] राग, द्वेष, मोहपरिणाम, उसका [जालं] समूह ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है—जितने काल जीव सम्यक्त्वके भावरूप परिणमा था उतने काल चारित्रमोहकर्म कीले हुए सर्पके समान अपना कार्य करनेके लिए समर्थ नहीं था। जब वही जीव सम्यक्त्वके भावसे भ्रष्ट हुआ मिथ्यात्व भावरूप परिणमा तब उकीले हुए सर्पके समान अपना कार्य करनेके लिए समर्थ हुआ। चारित्रमोहकर्मका कार्य ऐसा जो जीवके अशुद्ध परिणमनका निमित्त होना। भावार्थ इस प्रकार है—जीवके मिथ्यादृष्टि होनेपर चारित्रमोहका बन्ध भी होता है। जब जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तब चारित्रमोहके उदयमें बन्ध होता है परन्तु बन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए बंध नहीं कहलाता। इस कारण सम्यक्त्वके होनेपर चारित्रमोहको कीले हुए सर्पके समान ऊपर कहा है। जब सम्यक्त्व छूट जाता है तब उकीले हुए सर्प के समान चारित्रमोहको कहा सो ऊपरके भावार्थका अभिप्राय जानना ॥९-१२१॥

(अनुष्टुप्)

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बंध एव हि ॥१०-१२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत्र इदं एव तात्पर्यं" [अत्र] इस समस्त अधिकारमें [इदं एव तात्पर्यं] निश्चयसे इतना ही कार्य है। वह कार्य कैसा ? "शुद्धनयः हेयः न हि" [शुद्धनयः] आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव [हेयः न हि] सूक्ष्म कालमात्र भी विसारने (भूलने) योग्य नहीं है। किस कारण ? "हि तत् अत्यागात् बन्धः नास्ति" [हि] जिस कारण [तत्] शुद्ध स्वरूपका अनुभव, उसके [अत्यागात्] नहीं छूटनेसे [बन्धः नास्ति] ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध नहीं होता। और किस कारण ? "तत्त्या-

गात् बन्ध एव" [तत्] शुद्ध स्वरूपका अनुभव, उसके [त्यागात्] छूटनेसे [बन्ध एव] ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध है। भावार्थ प्रगट है ॥१०-१२२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥११-१२३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कृतिभिः जातु शुद्धनयः त्याज्यः न हि" [**कृतिभिः**] सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा [**जातु**] सूक्ष्मकालमात्र भी [**शुद्धनयः**] शुद्ध चैतन्यमात्र-वस्तुका अनुभव [**त्याज्यः न हि**] विस्मरण योग्य नहीं है। कैसा है शुद्धनय ? "बोधे धृतिं निबध्नन्" [**बोधे**] आत्मस्वरूपमें [**धृतिं**] अतीन्द्रिय सुखस्वरूप परिणतिको [**निबध्नन्**] परिणमाता है। कैसा है बोध ? "धीरोदारमहिम्नि" [**धीर**] शाश्वती [**उदार**] धाराप्रवाहरूप परिणमनशील, ऐसी है [**महिम्नि**] बढ़ाई जिसकी, ऐसा है। और कैसा है ? "अनादिनिधने" [**अनादि**] नहीं है आदि [**अनिधने**] नहीं है अन्त जिसका, ऐसा है। और कैसा है शुद्धनय ? "कर्मणां सर्वंकषः" [**कर्मणां**] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मपिण्डका अथवा राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामोंका [**सर्वंकषः**] मूलसे क्षयकरणशील है। "तत्रस्थाः शान्तं महः पश्यन्ति" [**तत्रस्थाः**] शुद्धस्वरूप-अनुभवमें मग्न हैं जो जीव, वे [**शान्तं**] सर्व उपाधिसे रहित ऐसे [**महः**] चैतन्यद्रव्य को [**पश्यन्ति**] प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—परमात्मपदको प्राप्त होते हैं। कैसा है मह ? "पूर्णं" असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान है। और कैसा है ? "ज्ञानघनौघं" चेतनागुणका पुंज है। और कैसा है ? "एकं" समस्त विकल्पसे रहित निर्विकल्प वस्तुमात्र है। और कैसा है ? "अचलं" कर्मसंयोगके मिटनेसे निश्चल है। क्या करके ऐसे स्वरूपकी प्राप्ति होती है ? "स्वमरीचिचक्रं अचिरात् संहृत्य" [**स्वमरीचिचक्रं**] झूठ है, भ्रम है जो कर्मकी सामग्री इन्द्रिय, शरीर रागादिमें आत्मबुद्धि, उसको [**अचिरात्**] तत्कालमात्र [**संहृत्य**] विनाशकर। कैसा है मरीचिचक्र ? "बहिः निर्यत्" अनात्मपदार्थोंमें भ्रमता है। भावार्थ इस प्रकार है—परमात्मपदकी प्राप्ति होनेपर समस्त विकल्प मिटते हैं ॥११-१२३॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२-१२४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानं उन्मग्नं" [**एतत्**] जैसा कहा है वैसा शुद्ध [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यप्रकाश [**उन्मग्नं**] प्रगट हुआ। जिसको ज्ञान प्रगट हुआ वह जीव कैसा है ? "किमपि वस्तु अन्तः संपश्यतः" [**किमपि वस्तु**] निर्विकल्पसत्तामात्र कुछ वस्तु, उसको [**अन्तः संपश्यतः**] भावश्रुतज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षपने अवलम्बता है। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपके अनुभवके काल जीव काष्ठके समान जड़ है ऐसा भी नहीं है, सामान्यतया सविकल्पी जीवके समान विकल्पी भी नहीं है, भावश्रुतज्ञानके द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्रको अवलम्वता है। अवश्य अवलम्बता है। "परमं" ऐसे अवलम्वनको वचनद्वारसे कहनेको समर्थपना नहीं है, इसलिए कहना शक्य नहीं। कैसा है शुद्ध ज्ञानप्रकाश ? "नित्योद्योतं" अविनाशी है प्रकाश जिसका। किस कारणसे ? "रागादीनां झगिति विगमात्" [**रागादीनां**] राग, द्वेष, मोहकी जातिके हैं जितने असंख्यात लोकमात्र अशुद्ध परिणाम उनका [**झगिति विगमात्**] तत्काल विनाश होनेसे। कैसे हैं अशुद्धपरिणाम ? "सर्वतः अपि आस्रवाणां" [**सर्वतः अपि**] सर्वथा प्रकार [**आस्रवाणां**] आस्रव ऐसा नाम-संज्ञा है जिनकी, ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—जीवके अशुद्ध रागादि परिणामको सच्चा आस्रवपना घटता है, उनका निमित्त पाकर कर्मरूप आस्रवती हैं जो पुद्गलकी वर्गणा वे तो अशुद्धपरिणामके सहारेकी हैं, इसलिए उनकी कौन वात, परिणामोंके शुद्ध होनेपर सहज ही मिटती हैं। और कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "सर्वभावान् प्लावयन्" [**सर्वभावान्**] जितने ज्ञेयवस्तु अतीत, अनागत, वर्तमानपर्यायसे सहित हैं उनको [**प्लावयन्**] अपनेमें प्रतिविम्वित करता हुआ। किसके द्वारा ? "स्वरसविसरैः" [**स्वरस**] चिद्रूप गुण, उसकी [**विसरैः**] अनन्तशक्ति, उसके द्वारा। कैसी है वे ? "स्फारस्फारैः" [**स्फार**] अनन्त शक्ति, उससे भी [**स्फारैः**] अनन्तानन्तगुणी है। भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्य अनन्त हैं, उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे

संवर-अधिकार

(शार्दूलविक्रीडित)

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१-१२५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"चिन्मयं ज्योतिः उज्जृम्भते" [**चित्**] चेतना, वही है [**मयं**] स्वरूप जिसका, ऐसा [**ज्योतिः**] प्रकाशस्वरूप वस्तु [**उज्जृम्भते**] प्रगट होता है। कैसी है ज्योति ? "स्फुरत्" सर्व काल प्रगट है। और कैसी है ? "उज्ज्वलं" कर्मकलंकसे रहित है। और कैसी है ? "निजरसप्राग्भारं" [**निजरस**] चेतनगुण, उसका [**प्राग्भारं**] समूह है। और कैसी है ? "पररूपतः व्यावृत्तं" [**पररूपतः**] ज्ञेयाकारपरिणमन, उससे [**व्यावृत्तं**] परान्मुख है। भावार्थ इस प्रकार है—सकल ज्ञेयवस्तुको जानती है तद्रूप नहीं होती, अपने स्वरूप रहती है। और कैसी है ? "स्वरूपे सम्यक् नियमितं" [**स्वरूपे**] जीवका शुद्धस्वरूप, उसमें [**सम्यक्**] जैसी है वैसी [**नियमितं**] गाढ़रूपसे स्थापित है। और कैसी है ? "संवरं सम्पादयत्" [**संवरं**] धाराप्रवाहरूप आस्रवता है ज्ञानावरणादि कर्म उसका निरोध [**सम्पादयत्**] करणशील है। भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ से लेकर संवरका स्वरूप कहते हैं। कैसा है संवर ? "प्रतिलब्धनित्यविजयं" [**प्रतिलब्ध**] पाया है [**नित्य**] शाश्वत [**विजयं**] जीतपना, जिसने, ऐसा है। किस कारणसे ऐसा है ? "आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्" [**आसंसार**] अनन्त कालसे लेकर [**विरोधि**] वैरी है ऐसा जो [**संवर**] वध्यमान कर्मका निरोध, उसका [**जय**] जीतपना, उसके द्वारा [**एकान्तावलिप्त**] मुझसे बड़ा तीन लोकमें कोई नहीं ऐसा हुआ है गर्व जिसको ऐसा [**आस्रव**] धाराप्रवाहरूप कर्मका आगमन उसको

है, रागादि अशुद्धपना उपाधि है। "सन्तः अधुना इदं मोदध्वं" [सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीव [अधुना] वर्तमान समयमें [इदं मोदध्वं] शुद्धज्ञानानुभवको आस्वादो। कैसे हैं सन्तपुरुष ? "अध्यासितः" शुद्धस्वरूपका अनुभव है जीवन जिनका ऐसे हैं। और कैसे हैं ? "द्वितीयच्युताः" हेय वस्तुको नहीं अवलम्बते हैं ॥२-१२६॥

(मालिनी)

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामसात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३-१२७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति" [**तत्**] तिस कारण [**अयं आत्मा**] यह प्रत्यक्ष जीव [**आत्मानं**] अपने स्वरूपको [**शुद्धं**] जितने हैं द्रव्यकर्म भावकर्म, उनसे रहित [**अभ्युपैति**] प्राप्त करता है। कैसा है आत्मा ? "उदयदात्मारामं" [**उदयत्**] प्रगट हुआ है [**आत्मा**] अपना द्रव्य, ऐसा है [**आरामं**] निवास जिसका, ऐसा है। किस कारणसे शुद्धकी प्राप्ति होती है। "परपरिणतिरोधात्" [**परपरिणति**] अशुद्धपना, उसके [**रोधात्**] विनाशसे। अशुद्धपनाका विनाश जिस प्रकार होता है उस प्रकार कहते हैं—"यदि आत्मा कथमपि शुद्धं आत्मानं उपलभमानः आस्ते" [**यदि**] जो [**आत्मा**] चेतन द्रव्य [**कथमपि**] काललब्धिको पाकर सम्यक्त्व पर्यायिरूप परिणमता हुआ [**शुद्धं**] द्रव्यकर्म, भावकर्मसे रहित ऐसे [**आत्मानं**] अपने स्वरूपको [**उपलभमानः आस्ते**] आस्वादता हुआ प्रवर्तता है। कैसा करके ? "बोधनेन" भावश्रुतज्ञानके द्वारा। कैसा है भावश्रुतज्ञान ? "धारावाहिना" अखण्डित धाराप्रवाहरूप निरन्तर प्रवर्तता है। "ध्रुवं" इस बातका निश्चय है ॥३-१२७॥

(मालिनी)

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥४-१२८॥

(अनुष्टुप्)

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥६-१३०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्" [इदं भेदविज्ञानं] पूर्वोक्त लक्षण है जो शुद्ध स्वरूपका अनुभव उसका [तावत्] उतने काल तक [अच्छिन्नधारया] अखण्डित धाराप्रवाहरूपसे [भावयेत्] आस्वाद करे। "यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते" [यावत्] जितने कालमें [परात् च्युत्वा] परसे छूट कर [ज्ञानं] आत्मा [ज्ञाने] शुद्धस्वरूपमें [प्रतिष्ठते] एकरूप परिणमे। भावार्थ इस प्रकार है—निरन्तर शुद्धस्वरूपका अनुभव कर्तव्य है। जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे। वहां भेद-विज्ञान भी एक विकल्परूप है, केवलज्ञानके समान जीवका शुद्धस्वरूप नहीं है, इसलिए सहज ही विनाशीक है ॥६-१३०॥

(अनुष्टुप्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥७-१३१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये किल केचन सिद्धाः ते भेदविज्ञानतः सिद्धाः" [ये] आसन्नभव्य जीव हैं जो कोई [किल] निश्चयसे [केचन] संसारी जीवराशिमेंसे जो कोई गिनतीके [सिद्धाः] सकल कर्मोंका क्षय कर निर्वाणपदको प्राप्त हुए [ते] वे समस्त जीव [भेदविज्ञानतः] सकल परद्रव्योंसे भिन्न शुद्धस्वरूपके अनुभवसे [सिद्धाः] मोक्षपदको प्राप्त हुए। भावार्थ इस प्रकार है—मोक्षका मार्ग शुद्धस्वरूपका अनुभव, अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग है। "ये केचन बद्धाः ते किल अस्य एव अभावतः बद्धाः" [ये केचन] जो कोई [बद्धाः] ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बंधे हैं [ते] वे समस्त जीव [किल] निश्चयसे [अस्य एव] ऐसा जो भेदविज्ञान, उसके [अभावतः] नहीं होनेसे [बद्धाः] बद्ध होकर संसारमें रुल रहे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—भेदज्ञान सर्वथा उपादेय है ॥७-१३१॥

(मन्दाक्रान्ता)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।

बिभ्रत्तोषं परममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८-१३२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ--"एतत् ज्ञानं उदितं" [**एतत्**] प्रत्यक्ष विद्यमान [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यप्रकाश [**उदितं**] आस्रवका निरोध करके प्रगट हुआ। कैसा है? "ज्ञाने नियतं" अनन्त कालसे परिणमता था अशुद्ध रागादि विभावरूप वह काललब्धि पाकर अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है? "शाश्वतोद्योतं" अविनश्वर प्रकाश है जिसका, ऐसा है। और कैसा है? "तोषं बिभ्रत्" अतीन्द्रिय सुखरूप परिणमा है। और कैसा है? "परमं" उत्कृष्ट है। और कैसा है? "अमलालोकं" सर्वथा प्रकार सर्व काल सर्व त्रैलोक्यमें निर्मल है-साक्षात् शुद्ध है। और कैसा है? "अम्लानं" सदा प्रकाशरूप है। और कैसा है? "एकं" निर्विकल्प है। शुद्ध ज्ञान ऐसा जिस प्रकार हुआ है उसी प्रकार कहते हैं—"कर्मणां संवरेण" ज्ञानावरणादिरूप आस्रवते थे जो कर्मपुद्गल उनके निरोधसे। कर्मका निरोध जिस प्रकार हुआ है उस प्रकार कहते हैं--"रागग्रामप्रलयकरणात्" [**राग**] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध विभावपरिणाम, उनका [**ग्राम**] समूह-असंख्यात् लोकमात्र भेद, उनका [**प्रलय**] मूलसे सत्तानाश, उसके [**करणात्**] करनेसे। ऐसा भी किस कारणसे? "शुद्धतत्त्वोपलम्भात्" [**शुद्धतत्त्व**] शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी [**उपलम्भात्**] साक्षात् प्राप्ति, उससे। ऐसा भी किस कारणसे? "भेदज्ञानोच्छलनकलनात् [**भेदज्ञान**] शुद्धस्वरूपज्ञान, उसका [**उच्छलन**] प्रगटपना, उसका [**कलनात्**] निरन्तर अभ्यास, उससे। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपका अनुभव उपादेय है ॥८-१३२॥



७

निर्जरा-अधिकार



(शार्दूलविक्रीडित)

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृत्तं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥१-१३३

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अधुना निर्जरा व्याजृम्भते" [**अधुना**] यहाँसे लेकर [**निर्जरा**] पूर्वबद्ध कर्मका अकर्मरूप परिणाम [**व्याजृम्भते**] प्रगट होता है । भावार्थ इस प्रकार है—निर्जराका स्वरूप जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं । निर्जरा किसके निमित्त (किसके लिए) है ? "तु तत् एव प्राग्बद्धं दग्धुं" [**तु**] संवरपूर्वक [**तत्**] जो ज्ञानावरणादि कर्म [**एव**] निश्चयसे [**प्राग्बद्धं**] सम्यक्त्वके नहीं होने पर मिथ्यात्व, राग, द्वेष परिणामसे बँधा था उसको [**दग्धुं**] जलानेके लिए । कुछ विशेष—"संवरः स्थितः" संवर अग्रेसर हुआ है जिसकी ऐसी है निर्जरा । भावार्थ इस प्रकार है—संवरपूर्वक जो निर्जरा सो निर्जरा, क्योंकि जो संवरके विना होती है सब जीवोंको उदय देकर कर्मकी निर्जरा सो निर्जरा नहीं है । कैसा है संवर ? "रागाद्यास्रवरोधतः निजधुरां धृत्वा आगामि समस्तं एव कर्म भरतः दूरात् निरुन्धन्" [**रागाद्यास्रवरोधतः**] रागादि आस्रवभावोंके निरोधसे [**निजधुरां**] अपने एक संवररूप पक्षको [**धृत्वा**] धरता हुआ [**आगामि**] अखण्ड धाराप्रवाहरूप आस्रवित होनेवाले [**समस्तं एव कर्म**] नाना प्रकारके ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय इत्यादि अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मको [**भरतः**] अपने बड़प्पनसे [**दूरात् निरुन्धन्**] पासमें आने नहीं देता है । संवरपूर्वक निर्जरा कहने पर जो कुछ कार्य हुआ सो कहते हैं—"यतः ज्ञानज्योतिः अपावृत्तं रागादिभिः न मूर्च्छति" [**यतः**] जिस निर्जरा द्वारा [**ज्ञानज्योतिः**] जीवका शुद्ध

स्वरूप [अपावृत्तं] निरावरण होता हुआ [रागादिभिः] अशुद्ध परिणामोंसे [न मूर्च्छति] अपने स्वरूपको छोड़कर रागादिरूप नहीं होता ॥१-१३३॥

(अनुष्टुप्)

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥२-१३४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् सामर्थ्यं किल ज्ञानस्य एव वा विरागस्य एव" [तत्सामर्थ्यं] ऐसी सामर्थ्य [किल] निश्चयसे [ज्ञानस्य एव] शुद्ध स्वरूपके अनुभवकी है, [वा विरागस्य एव] अथवा रागादि अशुद्धपना छूटा है, उसकी है। वह सामर्थ्य कौन ? "यत् कोऽपि कर्म भुञ्जानोऽपि कर्मभिः न बध्यते" [यत्] जो सामर्थ्य ऐसी है कि [कोऽपि] कोई सम्यग्दृष्टि जीव [कर्मभुञ्जानोऽपि] पूर्व ही बाँधा है ज्ञानावरणादि कर्म उसके उदयसे हुई है शरीर, मन, वचन, इन्द्रिय, सुख, दुःखरूप नानाप्रकारकी सामग्री, उसको यद्यपि भोगता है तथापि [कर्मभिः] ज्ञानावरणादिसे [न बध्यते] नहीं बँधता है। जिस प्रकार कोई वैद्य प्रत्यक्षरूपसे विषको खाता है तो भी नहीं मरता है और गुण जानता है, उसमें अनेक यत्न जानता है, उससे विषकी प्राणघातक शक्ति दूर कर दी है। वही विष अन्य जीव खावे तो तत्काल मरे, उससे वैद्य नहीं मरता। ऐसी जानपनेकी सामर्थ्य है। अथवा कोई शूद्र जीव मदिरा पीता है। परन्तु परिणामोंमें कुछ दुश्चिन्ता है, मदिरा पीनेमें रुचि नहीं है, ऐसा शूद्रजीव मतवाला नहीं होता। जैसा था वैसा ही रहता है। मद्य तो ऐसा है जो अन्य कोई पीता है तो तत्काल मतवाला होता है। सो जो कोई मतवाला नहीं होता ऐसा अरुचि परिणामका गुण जानो। उसी प्रकार कोई सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकारकी सामग्रीको भोगता है, सुख-दुःखको जानता है, परन्तु ज्ञानमें शुद्ध स्वरूप आत्माको अनुभवता है, उसमें ऐसा अनुभवता है जो ऐसी सामग्री कर्मका स्वरूप है, जो सुख-दुःख है, जीवका स्वरूप नहीं, उपाधि है ऐसा जानता है। उस जीवको ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध नहीं होता है। सामग्री तो ऐसी है जो मिथ्यादृष्टि जीवको [illegible] कर्मबन्ध होता है। जो जीवको कर्मबन्ध नहीं होता, वह जानपनाकी सामर्थ्य [illegible]। अथवा सम्यग्दृष्टि जीव नानाप्रकारके कर्मके उदयफल भोगता है, परन्तु [illegible] शुद्धस्वरूपको अनुभवता है [illegible] कर्मके उदयफलमें रति नहीं उपजती, उदासीन [illegible] शुद्ध स्वरूप है [illegible] अत्यन्त रुचता है। ऐसे जीवके कर्मका बन्ध नहीं होता

है, वह रूखे परिणामोंकी सामर्थ्य है ऐसा जानो। इसलिए ऐसा अर्थ ठहराया जो सम्यग्दृष्टि जीवके शरीर, इन्द्रिय आदि विषयोंका भोग निर्जराके लेखेमें है, निर्जरा होती है। क्योंकि आगामी कर्म तो नहीं बँधता है, पिछला उदयफल देकर मूलसे निर्जर जाता है, इसलिए सम्यग्दृष्टिका भोग निर्जरा है ॥२-१३४॥

(रथोद्धता)

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥३-१३५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् असौ सेवकः अपि असेवकः" [तत्] तिस कारणसे [असौ] सम्यग्दृष्टि जीव [सेवकः अपि] कर्मके उदयसे हुआ है जो शरीर पञ्चेन्द्रिय विषय सामग्री, उसको भोगता है तथापि [असेवकः] नहीं भोगता है। किस कारण? "यत् ना विषयसेवनेऽपि विषयसेवनस्य स्वं फलं न अश्नुते" [यत्] जिस कारणसे [ना] सम्यग्दृष्टि जीव [विषयसेवनेऽपि] पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयोंको सेवता है तथापि [विषयसेवनस्य स्वं फलं] पंचेन्द्रिय भोगका फल है ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध, उसको [न अश्नुते] नहीं पाता है। ऐसा भी किस कारणसे? "ज्ञानवैभवविरागताबलात्" [ज्ञानवैभव] शुद्धस्वरूपका अनुभव, उसकी महिमा, उसके कारण अथवा [विरागताबलात्] कर्मके उदयसे है विषयका सुख, जीवका स्वरूप नहीं है, इसलिए विषयसुखमें रति नहीं उत्पन्न होती है, उदासभाव है, इस कारण कर्मबन्ध नहीं होता है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जो भोग भोगता है सो निर्जराके निमित्त है ॥३-१३५॥

(मन्दाक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ।४-१३६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टेः नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति" [सम्यग्दृष्टेः] द्रव्यरूपसे मिथ्यात्वकर्म उपशमा है, भावरूपसे शुद्ध सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है जो जीव, उसके [ज्ञान] शुद्धस्वरूपका अनुभवरूप जानपना, [वैराग्य]

वन्ध अवश्य है। इसलिए वे जीव मिथ्यादृष्टि अवश्य हैं। मिथ्यात्वभावके विना कर्मकी सामग्रीमें प्रीति नहीं उपजती है, ऐसा कहते हैं—"ते रागिणः अद्यापि पापाः" [ते] मिथ्यादृष्टि जीवराशि [**रागिणः**] शरीर पंचेन्द्रियके भोगसुखमें अवश्यकर रंजक हैं। [**अद्यापि**] करोड़ उपाय जो करे अनन्त कालतक तथापि [**पापाः**] पापमय हैं। ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको करते हैं, महानिन्द्य हैं। किस कारणसे ऐसे हैं ? "यतः सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति" [**यतः**] जिस कारणसे विषयसुखरंजक है जितनी जीवराशि वे, [**सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति**] शुद्धात्मस्वरूपके अनुभवसे शून्य हैं। किस कारणसे ? "आत्मानात्मावगमविरहात्" [**आत्मा**] शुद्धचैतन्य वस्तु, [**अनात्मा**] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, उनका [**अवगम**] हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना, उसका [**विरहात्**] शून्यपना होनेसे। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टि जीवके शुद्ध वस्तुके अनुभवकी शक्ति नहीं होती ऐसा नियम है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मके उदयको आपरूप जानकर अनुभवता है, पर्यायमात्रमें अत्यन्त रत है। इस कारण मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है। रागी होनेसे कर्मवन्ध कर्ता है। कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव ? "अयं अहं स्वयं सम्यग्दृष्टिः जातु मे वन्धः न स्यात्" [**अयं अहं**] यह जो हूं मैं, [**स्वयं सम्यग्दृष्टिः**] स्वयं सम्यग्दृष्टि हूं, इस कारण [**जातु**] त्रिकाल ही [**मे वन्धः न स्यात्**] अनेक प्रकारका विषयसुख भोगते हुए भी हमें तो कर्मका वन्ध नहीं है। "इति आचरन्तु" ऐसे जीव ऐसा मानते हैं तो मानो तथापि उनके कर्मवन्ध है। और कैसे हैं ? "उत्तानोत्पुलकवदनाः" [**उत्तान**] ऊंचा कर [**उत्पुलक**] फुलाया है [**वदनाः**] गालमुख जिन्होंने, ऐसे हैं। "अपि" अथवा कैसे हैं ? 'समितिपरतां आलम्बन्तां" [**समिति**] मौनपना अथवा थोड़ा वोलना अथवा अपनेको हीना करके वोलना, इनका [**परतां**] समानरूप सावधानपना उसको [**आलम्बन्तां**] अवलम्वन करते हैं अर्थात् सर्वथा प्रकार इसरूप प्रकृतिका स्वभाव है जिनका, ऐसे हैं। तथापि रागी होनेसे मिथ्यादृष्टि हैं, कर्मका वन्ध करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई जीव पर्याय-मात्रमें रत होते हुए प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं उनकी प्रकृतिका स्वभाव है कि हम सम्यग्दृष्टि, हमें कर्मका वन्ध नहीं ऐसा मुखसे गरजते हैं, कितने ही प्रकृतिके स्वभावके कारण मौन-सा रहते हैं, कितने थोड़ा वोलते हैं। सो ऐसे होकर रहते हैं सो यह समस्त प्रकृतिका स्वभावभेद है। इसमें परमार्थ तो कुछ नहीं। जितने काल तक जीव पर्यायमें

परिणमा है ज्ञान—उसको [एकतां] निर्विकल्परूप [नयति] अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है, इसलिए दाह्यवस्तुको जलाती हुई दाह्यके आकार परिणमती है, इसलिए लोगोंको ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठकी अग्नि, छानाकी अग्नि, तृणकी अग्नि। सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं। अग्निके स्वरूपका विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप है। काष्ठ, छाना, तृण अग्निका स्वरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है, समस्त ज्ञेयवस्तुको जाननेका स्वभाव है, इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तुको जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीवको ऐसी बुद्धि उपजती है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं। ज्ञेयकी उपाधिसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे विकल्प उपजे हैं। कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेयका ज्ञायक होता है वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूपका विचार करने पर ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है। ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूपका अनुभव है। "किल" निश्चयसे ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा ? "एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्" [एक] निर्विकल्प ऐसा जो [ज्ञायकभाव] चेतनद्रव्य, उसमें [निर्भर] अत्यन्त मग्नपना, उससे हुआ है [महास्वादं] अनाकुललक्षण सौख्य, उसको [समासादयन्] आस्वादता हुआ। और कैसा है ? "द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः" [द्वन्द्वमयं] कर्मके संयोगसे हुआ है विकल्परूप आकुलतारूप [स्वादं] अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप है ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख उसको [विधातुं] अंगीकार करनेके लिए [असहः] असमर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—विषय कषायको दुःखरूप जानते हैं। और कैसा है ? "स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्" [स्वां] अपना द्रव्यसम्बन्धी [वस्तुवृत्तिं] आत्माका शुद्धस्वरूप, उससे [विदन्] तद्रूप परिणमता हुआ। और कैसा है ? "आत्मात्मानुभवानुभावविवशः" [आत्मा] चेतनद्रव्य उसका [आत्मानुभव] आस्वाद उसकी [अनुभाव] महिमा उसके द्वारा [विवशः] गोचर है। और कैसा है ? "विशेषोदयं भ्रस्यत्" [विशेष] ज्ञानपर्याय उसके द्वारा [उदयं] नाना प्रकार उनको [भ्रस्यत्] मेटता हुआ। और कैसा है ? "सामान्यं कलयन्" [सामान्यं] निर्भेद सत्तामात्र वस्तुको [कलयन] अनुभव करता हुआ ॥८-१४०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥९-१४१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स एष चैतन्यरत्नाकरः" [**स एषः**] जिसका स्वरूप कहा है तथा कहेंगे ऐसा [**चैतन्यरत्नाकरः**] जीव द्रव्यरूपी महासमुद्र। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्रकी उपमा देकर कहा गया है सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिक नयसे एक है, पर्यायार्थिकनयसे अनेक है। जिसप्रकार समुद्र एक है, तरंगावलिसे अनेक है। "उत्कलिकाभिः" समुद्रके पक्षमें तरंगावलि, जीवके पक्षमें एक ज्ञानगुणके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद उनके द्वारा "वल्गति" अपने बलसे अनादि कालसे परिणम रहा है। कैसा है ? "अभिन्नरसः" जितनी पर्याय हैं उनसे भिन्न सत्ता नहीं है, एक ही सत्त्व है। और कैसा है ? "भगवान्" ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणोंसे विराजमान है। और कैसा है ? "एकः अपि अनेकीभवन्" [**एकः अपि**] सत्तास्वरूपसे एक है तथापि [**अनेकीभवन्**] अंशभेद करनेपर अनेक है। और कैसा है ? "अद्भुतनिधिः" [**अद्भुत**] अनन्त काल तक चारों गतियोंमें फिरते हुए जैसा सुख कहीं नहीं पाया ऐसे सुखका [**निधिः**] निधान है। और कैसा है ? "यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलन्ति" [**यस्य**] जिस द्रव्यके [**इमाः**] प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान [**संवेदन**] ज्ञान, उसके [**व्यक्तयः**] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अंशभेद [**स्वयं**] द्रव्यका सहज ऐसा ही है उस कारण [**उच्छलन्ति**] अवश्य प्रगट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशंका करेगा कि ज्ञान तो ज्ञानमात्र है, ऐसे जो मतिज्ञान आदि पाँच भेद वे क्यों हैं ? समाधान इस प्रकार है—जो ज्ञानकी पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नहीं। वस्तुका ऐसा ही सहज है। पर्यायमात्र विचारने पर मति आदि पाँच भेद विद्यमान हैं, वस्तुमात्र अनुभवनेपर ज्ञानमात्र है। विकल्प जितने हैं उतने समस्त झूठे हैं, क्योंकि विकल्प कोई वस्तु नहीं है, वस्तु तो ज्ञानमात्र है। कैसी है संवेदन व्यक्ति ? "अच्छाच्छाः" निर्मलसे भी निर्मल है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञानकी पर्याय हैं वे समस्त

परिणामा है ज्ञान—उसको [एकतां] निर्विकल्पस्प [नयति] अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है, इसलिए दाह्यवस्तुको जलाती हुई दाह्यके आकार परिणमती है, इसलिए लोगोंको ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठकी अग्नि, छानाकी अग्नि, तृणकी अग्नि। सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं। अग्निके स्वरूपका विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप है। काष्ठ, छाना, तृण अग्निका स्वरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है, समस्त ज्ञेयवस्तुको जाननेका स्वभाव है, इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तुको जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीवको ऐसी बुद्धि उपजती है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं। ज्ञेयकी उपाधिसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे विकल्प उपजे हैं। कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेयका ज्ञायक होता है वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूपका विचार करने पर ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है। ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूपका अनुभव है। "किल" निश्चयसे ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा ? "एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्" [एक] निर्विकल्प ऐसा जो [ज्ञायकभाव] चेतनद्रव्य, उसमें [निर्भर] अत्यन्त मग्नपना, उससे हुआ है [महास्वादं] अनाकुललक्षण सौख्य, उसको [समासादयन्] आस्वादता हुआ। और कैसा है ? "द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः" [द्वन्द्वमयं] कर्मके संयोगसे हुआ है विकल्परूप आकुलतारूप [स्वादं] अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप है ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख उसको [विधातुं] अंगीकार करनेके लिए [असहः] असमर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—विषय कषायको दुःखरूप जानते हैं। और कैसा है ? "स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्" [स्वां] अपना द्रव्यसम्बन्धी [वस्तुवृत्तिं] आत्माका शुद्धस्वरूप, उससे [विदन्] तद्रूप परिणमता हुआ। और कैसा है ? "आत्मात्मानुभवानुभावविवशः" [आत्मा] चेतनद्रव्य उसका [आत्मानुभव] आस्वाद उसकी [अनुभाव] महिमा उसके द्वारा [विवशः] गोचर है। और कैसा है ? "विशेपोदयं भ्रस्यत्" [विशेष] ज्ञानपर्याय उसके द्वारा [उदयं] नाना प्रकार उनको [भ्रस्यत्] मेटता हुआ। और कैसा है ? "सामान्यं कलयन्" [सामान्यं] निर्भेद सत्तामात्र वस्तुको [कलयन] अनुभव करता हुआ ॥८-१४०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥९-१४१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स एष चैतन्यरत्नाकरः" [**स एषः**] जिसका स्वरूप कहा है तथा कहेंगे ऐसा [**चैतन्यरत्नाकरः**] जीव द्रव्यरूपी महासमुद्र। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्रकी उपमा देकर कहा गया है सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिक नयसे एक है, पर्यायार्थिकनयसे अनेक है। जिसप्रकार समुद्र एक है, तरंगावलिसे अनेक है। "उत्कलिकाभिः" समुद्रके पक्षमें तरंगावलि, जीवके पक्षमें एक ज्ञानगुणके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद उनके द्वारा "वल्गति" अपने बलसे अनादि कालसे परिणाम रहा है। कैसा है ? "अभिन्नरसः" जितनी पर्याय हैं उनसे भिन्न सत्ता नहीं है, एक ही सत्त्व है। और कैसा है ? "भगवान्" ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणोंसे विराजमान है। और कैसा है ? "एकः अपि अनेकीभवन्" [**एकः अपि**] सत्तास्वरूपसे एक है तथापि [**अनेकीभवन्**] अंशभेद करनेपर अनेक है। और कैसा है ? "अद्भुतनिधिः" [**अद्भुत**] अनन्त काल तक चारों गतियोंमें फिरते हुए जैसा सुख कहीं नहीं पाया ऐसे सुखका [**निधिः**] निधान है। और कैसा है ? "यस्य इमाः संवेदनव्यक्तयः स्वयं उच्छलन्ति" [**यस्य**] जिस द्रव्यके [**इमाः**] प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान [**संवेदन**] ज्ञान, उसके [**व्यक्तयः**] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अंशभेद [**स्वयं**] द्रव्यका सहज ऐसा ही है उस कारण [**उच्छलन्ति**] अवश्य प्रगट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशंका करेगा कि ज्ञान तो ज्ञानमात्र है, ऐसे जो मतिज्ञान आदि पाँच भेद वे क्यों हैं ? समाधान इस प्रकार है—जो ज्ञानकी पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नहीं। वस्तुका ऐसा ही सहज है। पर्यायमात्र विचारने पर मति आदि पाँच भेद विद्यमान हैं, वस्तुमात्र अनुभवनेपर ज्ञान-मात्र है। विकल्प जितने हैं उतने समस्त झूठे हैं, क्योंकि विकल्प कोई वस्तु नहीं है, वस्तु तो ज्ञानमात्र है। कैसी है संवेदन व्यक्ति ? "अच्छाच्छाः" निर्मलसे भी निर्मल है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञानकी पर्याय हैं वे समस्त

अशुद्धरूप हैं सो ऐसा तो नहीं, क्योंकि [illegible] ज्ञानमात्र है [illegible] [illegible]की पर्याय वस्तुका स्वरूप है, इसलिए [illegible] है। [illegible] अवधारण करनेपर विकल्प उत्पन्न होता है, [illegible] निर्विकल्प है, इसलिए [illegible] अनुभवनेपर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है, इसलिए ज्ञानमात्र अनुभव योग्य है। और कैसी है संवेदनव्यक्ति ? "निःपीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव" [निःपीत] निगला है [अखिल] समस्त [भाव] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ऐसे समस्त द्रव्य उनका [मण्डल] अतीत, अनागत, वर्तमान अनन्त पर्याय ऐसा है [रस] रसायनभूत दिव्य औषधि उसका [प्राग्भार] समूह उसके द्वारा [मत्ता इव] मग्न हुई है ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई परम रसायनभूत दिव्य औषधि पीता है तो सर्वांग तरंगावलिसी उपजती है उसी प्रकार समस्त द्रव्योंके जाननेमें समर्थ है ज्ञान, इसलिए सर्वांग आनन्दतरंगावलिसे गर्भित है ॥९-१४१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ।१०-१४२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथं अपि न हि क्षमन्ते" [परे] शुद्धस्वरूप अनुभवसे भ्रष्ट हैं जो जीव वे [इदं ज्ञानं] पूर्व ही कहा है समस्त भेदविकल्पसे रहित ज्ञानमात्र वस्तु उसको [ज्ञानगुणं विना] शुद्धस्वरूप अनुभवशक्तिके विना [प्राप्तुं] प्राप्त करनेको [कथं अपि] हजार उपाय किये जाँय तो भी [न हि क्षमन्ते] निश्चयसे समर्थ नहीं होते हैं। कैसा है ज्ञानपद ? "साक्षात् मोक्षः" प्रत्यक्षतया सर्वथा प्रकार मोक्षस्वरूप है। और कैसा है ? "निरामयपदं" जितने उपद्रव क्लेश हैं उन सबसे रहित है। और कैसा है ? "स्वयं संवेद्यमानं" [स्वयं] आपके द्वारा [संवेद्यमानं] आस्वाद करने योग्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगुण ज्ञानगुणके द्वारा अनुभवयोग्य है। कारणान्तरके द्वारा ज्ञान गुण ग्राह्य नहीं। कैसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि ? "कर्मभिः क्लिश्यन्तां" विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम, जैनोक्त सूत्रका [illegible], जीवादिद्रव्योंके स्वरूपका वारवार स्मरण, पञ्चपरमेष्ठीकी भक्ति इत्यादि हैं

जो अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा [क्लिश्यन्तां] वहुत आक्षेप [घटाटोप] करते हैं तो करो तथापि शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान द्वारा होगी। कैसी है करतूति ? "स्वयं एव दुष्करतरैः" [स्वयं एव] सहजपने [दुष्करतरैः] कष्टसाध्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि जितनी क्रिया है वह सब दुःखात्मक है। शुद्धस्वरूप अनुभवकी नाईं सुखस्वरूप नहीं है। और कैसी है ? "मोक्षोन्मुखैः" [मोक्ष] सकलकर्मक्षय उसकी [उन्मुखैः] परम्परा–आगे मोक्षका कारण होगी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है सो झूठा है। 'च" और कैसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव ? "महाव्रततपोभारेण चिरं भग्नाः क्लिश्यन्तां" [महाव्रत] हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहसे रहितपना [तपः] महा परीषहोंका सहना उनका [भार] वहुत बोझ उसके द्वारा [चिरं] बहुत काल पर्यन्त [भग्नाः] मरके चूरा होते हुए [क्लिश्यन्तां] वहुत कष्ट करते हैं तो करो तथापि ऐसा करतें हुए कर्मक्षय तो नहीं होता ॥१०-१४२॥

(द्रुतविलम्बित)

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥११-१४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः ननु इदं जगत् इदं पदं कलयितुं सततं यततां" [ततः] तिस कारणसे [ननु] अहो [इदं जगत्] विद्यमान है जो त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि वह [इदं पदं] निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानमात्रवस्तु उसका [कलयितुं] निरन्तर अभ्यास करनेके निमित्त [सततं] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [यततां] यत्न करे। किस कारणके द्वारा "निजवोधकलावलात्" [निजवोध] शुद्धज्ञान उसका [कला] प्रत्यक्ष अनुभव उसका [बलात्] समर्थपना उससे। क्योंकि "किल" निश्चयसे ज्ञानपद "कर्मदुरासदं" [कर्म] जितनी क्रिया है उससे [दुरासदं] अप्राप्य है और ? "सहजवोधकलासुलभं" [सहजबोध] शुद्धज्ञान उसका [कला] निरन्तर अनुभव उसके द्वारा [सुलभं] सहज ही प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुभ अशुभरूप हैं जितनी क्रिया उनका ममत्व छोड़कर एक शुद्ध स्वरूप-अनुभव कारण है ॥११-१४३॥

जिस कारणसे [खलु] निश्चयसे [कांक्षितं] जो कुछ चिन्तवन किया है वह [न वेद्यते] नहीं प्राप्त होता है । [एव] ऐसा ही है । किस कारणसे ? "वेद्यवेदकविभावचलत्वात्" [वेद्य] वांछी (इच्छी) जाती है जो वस्तुसामग्री, [वेदक] वांछारूप जीवका अशुद्ध-परिणाम, ऐसे हैं [विभाव] दोनों अशुद्ध विनश्वर कर्मजनित, इस कारणसे [चलत्वात्] क्षण प्रति क्षण प्रति औरसा होते हैं । कोई अन्य चिन्ता जाता है, कुछ अन्य होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्ध रागादि परिणाम तथा विषयसामग्री दोनों समय समय प्रति विनश्वर हैं, इसलिए जीवका स्वरूप नहीं । इस कारण सम्यग्दृष्टिके ऐसे भावोंका सर्वथा त्याग है। इसलिए सम्यग्दृष्टिको वन्ध नहीं है, निर्जरा है ।। १५-१४७ ।।

(स्वागता)

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति ।
रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ।।१६-१४८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति" [कर्म] जितनी विषयसामग्री भोगरूप क्रिया है वह [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [परिग्रहभावं] ममतारूप स्वीकारपनेको [न हि एति] निश्चयसे नहीं प्राप्त होती है । किस कारणसे ? "रागरसरिक्ततया" [राग] कर्मकी सामग्रीको आपा जानकर रंजक परिणाम ऐसा जो [रस] वेग, उससे [रिक्ततया] रीता है, ऐसा भाव होनेसे । दृष्टान्त कहते हैं—"हि इह अकषायितवस्त्रे रंगयुक्तिः वहिः लुठति एव" [हि] जैसे [इह] सब लोकमें प्रगट है कि [अकषायित] नहीं लगा है हरडा फिटकरी लोद जिसको ऐसे [वस्त्रे] कपड़ामें [रंगयुक्तिः] मजीठके रंगका संयोग किया जाता है तथापि [वहिः लुठति] कपड़ासे नहीं लगता है, वाहर वाहर फिरता है उस प्रकार । भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि जीवके पंचेन्द्रिय विषयसामग्री है, भोगता भी है । परन्तु अन्तरंग राग द्वेष मोहभाव नहीं है, इस कारण कर्मका वन्ध नहीं है, निर्जरा है । कैसी है रंगयुक्ति ? "स्वीकृता" कपड़ा-रंग इकट्ठा किया है ।।१६-१४८।।

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१७-१४९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यतः ज्ञानवान् स्वरसतः अपि सर्वरागरसवर्जनशीलः स्यात्" [**यतः**] जिस कारणसे [**ज्ञानवान**] शुद्धस्वरूप अनुभवशीली है जो जीव वह [**स्वरसतः**] विभाव परिणमन मिटा है, इस कारण शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है, इसलिए [**सर्वराग**] जितना राग द्वेष मोहपरिणामरूप [**रस**] अनादिका संस्कार, उससे [**वर्जनशीलः स्यात्**] रहित है स्वभाव जिसका ऐसा है। "ततः एषः कर्ममध्य-पतितः अपि सकलकर्मभिः न लिप्यते" [**ततः**] तिस कारणसे [**एषः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**कर्म**] कर्मके उदयजनित अनेक प्रकारकी भोगसामग्री उसमें [**मध्यपतितः अपि**] पंचेन्द्रिय भोगसामग्री भोगता है, सुख दुःखको प्राप्त होता है तथापि [**सकलकर्मभिः**] आठों प्रकारके हैं जो ज्ञानावरणादि कर्म, उनके द्वारा [**न लिप्यते**] नहीं बाँधा जाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि अन्तरंग चिकनापन नहीं है, इससे बन्ध नहीं होता है, निर्जरा होती है ॥ १७-१४९ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ।१८-१५०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहां कोई प्रश्न करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव परि-णामसे शुद्ध है तथापि पंचेन्द्रिय विषय भोगता है सो विषयको भोगते हुए कर्मका बन्ध है कि नहीं है ? समाधान इस प्रकार है कि कर्मका बन्ध नहीं है। "ज्ञानिन् भुंक्ष्व" [**ज्ञानिन्**] भो सम्यग्दृष्टि जीव ! [**भुंक्ष्व**] कर्मके उदयसे प्राप्त हुई है जो भोगसामग्री उसको भोगते हो तो भोगो "तथापि तव बन्धः नास्ति" [**तथापि**] तो भी [**तव**] तेरे [**बन्धः**] ज्ञानावरणादि कर्मका आगमन [**नास्ति**] नहीं है। कैसा बन्ध नहीं

है ? "परापराधजनित:" [**पर**] भोगसामग्री, उसका [**अपराध**] भोगनेमें आना, उससे [**जनितः**] उत्पन्न हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवको विषयसामग्री भोगते हुए वन्ध नहीं है, निर्जरा है । कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामोंसे शुद्ध है । ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है । परिणामोंकी शुद्धता रहते हुए बाह्य भोगसामग्रीके द्वारा वन्ध किया नहीं जाता । ऐसा वस्तुका स्वरूप है । यहाँ कोई आशंका करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगता है सो भोग भोगते हुए रागरूप अशुद्ध परिणाम होता होगा सो उस रागपरिणामके द्वारा वन्ध होता होगा सो ऐसा तो नहीं । कारण कि वस्तुका स्वरूप ऐसा है जो शुद्ध ज्ञान होनेपर भोगसामग्रीको भोगते हुए सामग्रीके द्वारा अशुद्धरूप किया नहीं जाता । कितनी ही भोगसामग्री भोगो तथापि शुद्धज्ञान अपने स्वरूप–शुद्ध ज्ञानस्वरूप रहता है । वस्तुका ऐसा सहज है । ऐसा कहते हैं–'ज्ञानं कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्" [**ज्ञानं**] शुद्ध स्वभावरूप परिणमा है आत्मद्रव्य, वह [**कदाचन अपि**] अनेक प्रकार भोगसामग्रीको भोगता हुआ अतीत, अनागत, वर्तमान कालमें [**अज्ञानं**] विभाव अशुद्धरागादिरूप [**न भवेत्**] नहीं होता । कैसा है ज्ञान ? "सन्ततं भवत्" शाश्वत शुद्धस्वरूप जीवद्रव्य परिणमा है, मायाजालके समान क्षरण विनश्वर नहीं है । आगे दृष्टान्तके द्वारा वस्तुका स्वरूप साधते हैं—"हि यस्य वशतः यः यादृक् स्वभावः तस्य तादृक् इह अस्ति" [**हि**] जिस कारणसे [**यस्य**] जिस किसी वस्तुका [**यः यादृक् स्वभावः**] जो स्वभाव जैसा स्वभाव है वह [**वशतः**] अनादि-निधन है [**तस्य**] उस वस्तुका [**तादृक् इह अस्ति**] वैसा ही है । जिस प्रकार शंखका श्वेत स्वभाव है, श्वेत प्रगट है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिका शुद्ध परिणाम होता हुआ शुद्ध है । "एषः परैः कथञ्चन अपि अन्यादृशः कर्तुं न शक्यते" [**एषः**] वस्तुका स्वभाव [**परैः**] अन्य वस्तुके किये [**कथञ्चन अपि**] किसी प्रकार [**अन्यादृशः**] दूसरेरूप [**कर्तुं**] करनेको [**न शक्यते**] नहीं समर्थ है । भावार्थ इस प्रकार है कि स्वभावसे श्वेत शंख है सो शंख काली मिट्टी खाता है, पीली मिट्टी खाता है, नाना वर्ण मिट्टी खाता है । ऐसी मिट्टी खाता हुआ शंख उस मिट्टीके रंगका नहीं होता है, अपने श्वेतरूप रहता है । वस्तुका ऐसा ही सहज है । उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावसे राग द्वेष मोहसे रहित शुद्ध परिणामरूप है, वह जीव नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है तथापि अपने शुद्ध परिणामरूप परिणमता है । सामग्रीके रहते हुए अशुद्धरूप परिणमाया जाता नहीं ऐसा वस्तुका स्वभाव है, इसलिए सम्यग्दृष्टिके कर्मका वन्ध नहीं है, निर्जरा है ॥१८-१५०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ।।१९-१५१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तुं न उचितं" [ज्ञानिन्] हे सम्यग्दृष्टि जीव ! [जातु] किसी प्रकार कभी भी [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड [कर्तुं] बांधनेको [न उचितं] योग्य नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके कर्मका वन्ध नहीं है । "तथापि किञ्चित् उच्यते" [तथापि] तो भी [किञ्चित् उच्यते] कुछ विशेष है वह कहते हैं—"हन्त यदि मे परं न जातु भुंक्षे भोः दुर्भुक्तो एव असि" [हन्त] कड़क वचनके द्वारा कहते हैं । [यदि] जो ऐसा जानकर भोगसामग्रीको भोगता है कि [मे] मेरे [परं न जातु] कर्मका वन्ध नहीं है । ऐसा जानकर [भुंक्षे] पंचेन्द्रियविषय भोगता है तो [भोः] अहो जीव ! [दुर्भुक्तः एव असि] ऐसा जानकर भोगोंका भोगना अच्छा नहीं । कारण कि वस्तुस्वरूप इस प्रकार है—"यदि उपभोगतः वन्धः न स्यात् तत् ते किं कामचारः अस्ति" [यदि] जो ऐसा है कि [उपभोगतः] भोग सामग्रीको भोगते हुए [वन्धः न स्यात्] ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध नहीं है [तत्] तो [ते] अहो सम्यग्दृष्टि जीव ! तेरे [कामचारः] स्वेच्छा आचरण [किं अस्ति] क्या ऐसा है अपि तु ऐसा तो नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके कर्मका वन्ध नहीं है । कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव राग द्वेष मोहसे रहित है । वही सम्यग्दृष्टि जीव, यदि सम्यक्त्व छूटे मिथ्यात्वरूप परिणमे तो, ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको अवश्य करे; क्योंकि मिथ्यादृष्टि होता हुआ राग द्वेष मोहरूप परिणमता है—ऐसा कहते हैं : "ज्ञानं सन् वस" सम्यग्दृष्टि होता हुआ जितने काल प्रवर्तता है उतने काल वन्ध नहीं है "अपरथा स्वस्य अपराधात् वन्धं ध्रुवं एषि" [अपरथा] मिथ्यादृष्टि होता हुआ [स्वस्य अपराधात्] अपने ही दोषसे—रागादि अशुद्धरूप परिणमनके कारण [वन्धं ध्रुवं एषि] ज्ञानावरणादि कर्मवन्धको तू ही अवश्य करता है ॥ १९-१५१ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ।२०-१५२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् मुनिः कर्मणा नो बध्यते" [तत्] तिस कारणसे [**मुनिः**] शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव [**कर्मणा**] ज्ञानावरणादि कर्मसे [**नो बध्यते**] नहीं बँधता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "हि कर्म कुर्वाणः अपि" [हि] निश्चयसे [**कर्म**] कर्मजनित विषयसामग्री भोगरूप क्रियाको [**कुर्वाणः अपि**] करता है—यद्यपि भोगता है तो भी "तत्फलपरित्यागैकशील:" [तत्फल] कर्मजनित सामग्रीमें आत्मबुद्धि जानकर रंजक परिणामका [**परित्याग**] सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया ऐसा है [**एक**] सुखरूप [**शीलः**] स्वभाव जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट गया है, उसके मिटनेसे अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख अनुभवगोचर हुआ है। और कैसा है ? "ज्ञानं सन् तदपास्तरागरचन:" ज्ञानमय होते हुए दूर किया है रागभाव जिसमेंसे ऐसा है। इस कारण कर्मजनित हैं जो चार गतिकी पर्याय तथा पंचेन्द्रियोंके भोग वे समस्त आकुलतालक्षण दुःखरूप हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा ही अनुभव करता है। इस कारण जितना कुछ साता-असातारूप कर्मका उदय, उससे जो कुछ इष्ट विषयरूप अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री सो सम्यग्दृष्टिके सर्व अनिष्टरूप है। इसलिए जिस प्रकार किसी जीवके अशुभ कर्मके उदय रोग, शोक, दारिद्र आदि होता है, उसे जीव छोड़नेको बहुत ही करता है, परन्तु अशुभ कर्मके उदय नहीं छूटता है, इसलिए भोगना ही पड़े। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके, पूर्वमें अज्ञान परिणामके द्वारा बांधा है जो सातारूप असातारूप कर्म उसके उदय अनेक प्रकार विषयसामग्री होती है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव दुःखरूप अनुभवता है, छोड़नेको बहुत ही करता है। परन्तु जब तक क्षपकश्रेणी चढ़े तब तक छूटना अशक्य है, इसलिए परवश हुआ भोगता है। हृदयमें अत्यन्त विरक्त है, इसलिए अरंजक है, इसलिए भोग सामग्रीको भोगते हुए कर्मका बन्ध नहीं है, निर्जरा है। यहाँ दृष्टान्त कहते हैं—"यत् किल कर्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्" [यत्] जिस

कारणसे ऐसा है। [किल] ऐसा ही है, सन्देह नहीं कि [कर्म] राजाकी सेवा आदिसे लेकर जितनी कर्मभूमिसम्बन्धी क्रिया [कर्तारं] क्रियामें रंजक होकर-तन्मय होकर करता है जो कोई पुरुष उसको, [स्वफलेन] जिस प्रकार राजाकी सेवा करते हुए द्रव्यकी प्राप्ति, भूमिकी प्राप्ति, जैसे खेती करते हुए अन्नकी प्राप्ति—[बलात् योजयेत्] अवश्यकर कर्ता पुरुषका क्रियाके फलके साथ संयोग होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो क्रिया-को नहीं करता उसको क्रियाके फलकी प्राप्ति नहीं होती। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवको बन्ध नहीं होता, निर्जरा होती है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव भोगसामग्री क्रियाका कर्ता नहीं है, इसलिए क्रियाका फल नहीं है कर्मका बन्ध, वह तो सम्यग्दृष्टिके नहीं है। दृष्टांतसे दृढ़ करते हैं—'यत् कुर्वाणः फललिप्सुः ना एव हि कर्मणः फलं प्राप्नोति" [यत्] जिस कारणसे पूर्वोक्त नाना प्रकारकी क्रिया [कुर्वाणः] कोई करता हुआ [फललिप्सुः] फलकी अभिलाषा करके क्रियाको करता है ऐसा [ना] कोई पुरुष [कर्मणः फलं] क्रियाके फलको [प्राप्नोति] प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई पुरुष क्रिया करता है, निरभिलाष होकर करता है उसको तो क्रियाका फल नहीं है। २०-१५२।

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः।२१-१५३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"येन फलं त्यक्तं स कर्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः" [येन] जिस सम्यग्दृष्टि जीवने [फलं त्यक्तं] कर्मके उदयसे है जो भोगसामग्री उसका [फलं] अभिलाप [त्यक्तं] सर्वथा ममत्व छोड़ दिया है [सः] वह सम्यग्दृष्टि जीव [कर्म कुरुते] ज्ञानावरणादि कर्मको करता है [इति वयं न प्रतीमः] ऐसी तो हम प्रतीति नहीं करते। भावार्थ इस प्रकार है कि जो कर्मके उदयके प्रति उदासीन है उसे कर्मका बन्ध नहीं है, निर्जरा है। "किन्तु" कुछ विशेष—"अस्य अपि" इस सम्यग्दृष्टिके भी "अवशेन कुतः अपि किञ्चित् अपि कर्म आपतेत्" [अवशेन] विना ही अभिलाप किये बलात्कार ही [कुतः अपि किञ्चित् अपि कर्म] पहले ही बाँधा था जो ज्ञानावरणादि

कर्म, उसके उदयसे हुई है जो पंचेन्द्रियविषयभोगक्रिया वह [आपतेत्] प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसीको रोग, शोक, दारिद्र विना ही वांछाके होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके जो कोई क्रिया होती है सो बिना ही वांछाके होती हैं। "तस्मिन् आपतिते" अनिच्छक है सम्यग्दृष्टि पुरुष, उसको बलात्कार होती है भोगक्रिया, उसके होते हुए "ज्ञानी किं कुरुते" [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव [किं कुरुते] अनिच्छक होकर कर्मके उदयमें क्रिया करता है तो क्रियाका कर्ता हुआ क्या ? "अथ न कुरुते" सर्वथा क्रियाका कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है। किसका कर्ता नहीं है ? "कर्म इति" भोगक्रियाका। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "जानाति कः" ज्ञायकस्वरूपमात्र है। तथा कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "अकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितः" निश्चल परम ज्ञान-स्वभावमें स्थित है ॥२१-१५३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि।२२-१५४।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टयः एव इदं साहसं कर्तुं क्षमन्ते" [सम्यग्-दृष्टयः] स्वभावगुणरूप परिणामी है जो जीवराशि वह [एव] निश्चयसे [इदं साहसं] ऐसा धीरपना [कर्तुं] करनेके लिए [क्षमन्ते] समर्थ होती है। कैसा है साहस ? "परं" सबसे उत्कृष्ट है। कौन साहस ? "यत् वज्रे पतति अपि अमी बोधात् न हि च्यवन्ते" [यत्] जो साहस ऐसा है कि [वज्रे पतति अपि] महान् वज्रके गिरने पर भी [अमी] सम्यग्दृष्टि जीवराशि [बोधात्] शुद्धस्वरूपके अनुभवसे [न हि च्यवन्ते] सहज गुणसे स्खलित नहीं होती है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके साताकर्मके उदय अनेक प्रकार इष्ट भोगसामग्री होती है, असाता-कर्मके उदय अनेक प्रकार रोग, शोक, दारिद्र, परीषह, उपसर्ग इत्यादि अनिष्ट सामग्री होती है, उसको भोगते हुए शुद्धस्वरूप अनुभवसे चूकता होगा। उसका समाधान इस प्रकार है कि अनुभवसे नहीं चूकता है, जैसा अनुभव है वैसा ही रहता है, वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है। [illegible] ? "भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि" [भय] [illegible]

पर उसके त्राससे [चलत्] चलायमान ऐसी जो [त्रैलोक्य] सर्व संसारी जीवराशि, उसके द्वारा [मुक्त] छोड़ी गई है [अध्वनि] अपनी अपनी क्रिया जिसके गिरने पर, ऐसा है वज्र। भावार्थ इस प्रकार है—ऐसा है उपसर्ग परीषह जिनके होनेपर मिथ्यादृष्टि-को ज्ञानकी सुध नहीं रहती है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वं जानन्तः" [स्वं] शुद्ध चिद्रूपको [जानन्तः] प्रत्यक्षरूपसे अनुभवते हैं। कैसा है स्व ? "अवध्यबोधवपुं" [अवध्य] शाश्वत जो [बोध] ज्ञानगुण, वह है [वपुं] शरीर जिसका, ऐसा है। क्या करके (अनुभव करता है ?) "सर्वां एव शंकां विहाय" [सर्वां एव] सात प्रकारके [शंकां] भयको [विहाय] छोड़कर। जिस प्रकार भय छूटता है उस प्रकार कहते हैं—"निसर्गनिर्भयतया" [निसर्ग] स्वभावसे [निर्भयतया] भयसे रहितपना होनेसे। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवोंका निर्भय स्वभाव है, इस कारण सहज ही अनेक प्रकारके परीषह–उपसर्गका भय नहीं है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीवको कर्मका बन्ध नहीं है, निर्जरा है। कैसे है निर्भयपना ? "स्वयं" ऐसा सहज है ॥२२-१५४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२३-१५५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स सहजं ज्ञानं स्वयं सततं सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [सहजं] स्वभाव ही से [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [विन्दति] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसे अनुभवता है ? [स्वयं] अपनेमें आपको अनुभवता है। किस काल ? [सततं] निरन्तररूपसे [सदा] अतीत, अनागत, वर्तमानमें अनुभवता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशंकः" सात भयोंसे रहित है। कैसा होनेसे ? "तस्य तद्भीः कुतः अस्ति" [तस्य] उस सम्यग्दृष्टिके [तद्भीः] इहलोकभय, परलोकभय [कुतः अस्ति] कहाँ से होवे ? अपि तु नहीं होता। जैसा विचार करते हुए भय नहीं होता वैसा कहते हैं—"तव अयं लोकः तदपरः अपरः न" [तव] भो जीव ! तेरा [अयं लोकः] विद्यमान है जो चिद्रूपमात्र वह लोक है। [तदपरः] उससे अन्य जो कुछ है इहलोक, परलोक। विवरण—इहलोक अर्थात्

वर्तमान पर्याय, उसमें ऐसी चिन्ता कि पर्याय पर्यन्त सामग्री रहेगी कि नहीं रहेगी। परलोक अर्थात् यहाँ से मर कर अच्छी गतिमें जावेंगे कि नहीं जावेंगे ऐसी चिन्ता। ऐसा जो [अपरः] इहलोक, परलोक पर्यायिरूप [न] जीवका स्वरूप नहीं है। "यत् एषः अयं लोकः केवलं चिल्लोकं स्वयं एव लोकयति" [यत्] जिस कारणसे [एषः अयं लोकः] अस्तिरूप है जो चैतन्यलोक वह [केवलं] निर्विकल्प है। [चिल्लोकं स्वयं एव लोकयति] ज्ञानस्वरूप आत्माको स्वयं ही देखता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र सो तो ज्ञानमात्र ही है। कैसा है चैतन्यलोक ? "शाश्वतः" अविनाशी है। और कैसा है ? "एककः" एक वस्तु है। और कैसा है ? "सकलव्यक्तः" [सकल] त्रिकालमें [व्यक्तः] प्रगट है। किसको प्रगट है ? "विविक्तात्मनः" [विविक्त] भिन्न है [आत्मनः] आत्मस्वरूप जिसको ऐसा है जो भेदज्ञानी पुरुष, उसे ॥२३-१५५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२४-१५६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः स्वयं सततं सदा ज्ञानं विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [स्वयं] अपने आप [सततं] निरन्तररूपसे [सदा] त्रिकालमें [ज्ञानं] जीवके शुद्धस्वरूपको [विन्दति] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "सहजं" स्वभावसे ही उत्पन्न है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशंकः" सात भयोंसे मुक्त है। "ज्ञानिनः तद्भीः कुतः" [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवको [तद्भीः] वेदनाका भय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपितु नहीं होता है। कारण कि "सदा अनाकुलैः" सर्वदा भेदज्ञानसे विराजमान हैं जो पुरुष वे पुरुष "स्वयं वेद्यते" स्वयं ऐसा अनुभव करते हैं कि "यत् अचलं ज्ञानं एषा एका एव वेदना" [यत्] जिस कारणसे [अचलं ज्ञानं] शाश्वत है जो ज्ञान [एषा] यही [एका वेदना] जीवको एक वेदना है। [एव] निश्चयसे। "अन्यागतवेदना एव न भवेत्" [अन्या] इसे छोड़कर जो अन्य [आगतवेदना एव] कर्मके उदयसे हुई है सुखरूप अथवा दुःखरूप वेदना [न भवेत्] [illegible] है ही नहीं। ज्ञान कैसा है ? "एकं" शाश्वत

है—एकरूप है। किस कारणसे एकरूप है ? "निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलात्" [निर्भेदोदित] अभेदरूपसे [वेद्यवेदक] जो वेदता है वही वेदा जाता है ऐसा जो [बलात्] समर्थपना, उसके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वरूप ज्ञान है, वह एक-रूप है। जो साता-असाता कर्मके उदयसे सुख-दुःखरूप वेदना होती है वह जीवका स्वरूप नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवको रोग उत्पन्न होनेका भय नहीं होता ॥ २४-१५६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२५-१५७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः ज्ञानं सदा विन्दति" [**सः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**ज्ञानं**] शुद्धस्वरूप [**सदा**] तीनों कालोंमें [**विन्दति**] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "सततं" निरन्तर वर्तमान है। और कैसा है ज्ञान ? "स्वयं" अनादि-निधन है। और कैसा है ? "सहजं" विना कारण द्रव्यरूप है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशंकः" कोई मेरा रक्षक है कि नहीं है ऐसे भयसे रहित है। किस कारणसे "ज्ञानिनः तद्भीः कुतः" [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**तद्भीः**] 'मेरा रक्षक कोई है कि नहीं है ऐसा भय' [**कुतः**] कहाँ से होवे ? अपि तु नहीं होता है। "अतः अस्य किञ्चन अत्राणं न भवेत्" [**अतः**] इस कारणसे [**अस्य**] जीव वस्तुके [**अत्राणं**] अरक्षकपना [**किञ्चन**] परमाणुमात्र भी [**न भवेत्**] नहीं है। किस कारणसे नहीं है ? "यत् सत् तत् नाशं न उपैति" [**यत् सत्**] जो कुछ सत्तास्वरूप वस्तु है [**तत् नाशं न उपैति**] वह तो विनाशको नहीं प्राप्त होती है। "इति नियतं वस्तुस्थितिः व्यक्ता" [**इति**] इस कारणसे [**नियतं**] अवश्य ही [**वस्तुस्थितिः**] वस्तुका अविनश्वरपना [**व्यक्ता**] प्रगट है। "किल तत् ज्ञानं स्वयं एव सत् ततः अस्य अपरैः किं त्रातं" [**किल**] निश्चयसे [**तत् ज्ञानं**] ऐसा है जीवका शुद्धस्वरूप वह, [**स्वयं एव सत्**] सहज ही सत्तास्वरूप है। [**ततः**] तिस कारणसे [**अस्य**] जीवके स्वरूपकी [**अपरैः**] किसी द्रव्यांतरके द्वारा [**किं त्रातं**] क्या रक्षा की जायगी। भावार्थ इस प्रकार है कि सब जीवोंको ऐसा

भय उत्पन्न होता है कि 'मेरा रक्षक कोई है कि नहीं,' सो ऐसा भय सम्यग्दृष्टि जीवको नहीं होता। कारण कि वह ऐसा अनुभव करता है कि शुद्धजीवस्वरूप सहज ही शाश्वत है। इसकी कोई क्या रक्षा करेगा ॥२५-१५७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यत्
शक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२६-१५८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः ज्ञानं सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [सदा विन्दति] निरन्तर अनुभवता है–आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वयं" अनादि सिद्ध है। और कैसा है ? "सहजं" शुद्ध वस्तुस्वरूप है। और कैसा है ? "सततं" अखण्ड धाराप्रवाहरूप है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशंकः" वस्तुको जतनसे रखा जाय, नहीं तो कोई चुरा लेगा ऐसा जो अगुप्तिभय उससे रहित है। "अतः अस्य काचन अगुप्तिः एव न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः" [अतः] इस कारणसे [अस्य] शुद्ध जीवके [काचन अगुप्तिः] किसी प्रकारका अगुप्तिपना [न भवेत्] नहीं है, [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [तद्भीः] 'मेरा कुछ कोई छीन न लेवे' ऐसा अगुप्तिभय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपितु नहीं होता। किस कारणसे ? "किल वस्तुनः स्वरूपं परमा गुप्तिः अस्ति" [किल] निश्चयसे [वस्तुनः] जो कोई द्रव्य है उसका [स्वरूपं] जो कुछ निज लक्षण है वह [परमा गुप्तिः अस्ति] सर्वथा प्रकार गुप्त है। किस कारणसे ? "यत् स्वरूपे कः अपि परः प्रवेष्टुं न शक्तः" [यत्] जिस कारण-से [स्वरूपे] वस्तुके सत्त्वमें [कः अपि परः] कोई अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यमें [प्रवेष्टुं] संक्रमणको [न शक्तः] समर्थ नहीं है। "नुः ज्ञानं स्वरूपं च" [नुः] आत्मद्रव्यका [ज्ञानं स्वरूपं] चैतन्य स्वरूप है। [च] वही ज्ञानस्वरूप कैसा है ? "अकृतं" किसीने किया नहीं, कोई हर सकता नहीं। भावार्थ इस प्रकार है कि सब जीवोंको ऐसा भय होता है कि 'मेरा कुछ कोई चुरा लेगा, छीन लेगा'; सो ऐसा भय सम्यग्दृष्टिको नहीं होता, जिस कारणसे सम्यग्दृष्टि ऐसा अनुभव करता है कि 'मेरा तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप

है, उसको तो कोई चुरा सकता नहीं, छीन सकता नहीं; वस्तुका स्वरूप अनादि-निधन है' ॥२६-१५८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२७-१५९।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः ज्ञानं सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं] शुद्धचैतन्य वस्तुको [सदा] निरन्तर [विन्दति] आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वयं" अनादिसिद्ध है। और कैसा है ? "सततं" अखण्ड धाराप्रवाहरूप है। और कैसा है ? "सहजं" विना कारण सहज ही निष्पन्न है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशङ्कः" मरण-शंकाके दोषसे रहित है। क्या विचारता हुआ निःशंक है ? "अतः तस्य मरणं किञ्चन न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः" [अतः] इस कारणसे [तस्य] आत्मद्रव्यके [मरणं] प्राणवियोग [किञ्चन] सूक्ष्ममात्र [न भवेत्] नहीं होता, तिस कारण [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टिके [तद्भीः] मरणका भय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपि तु नहीं होता। जिस कारणसे "प्राणोच्छेदं मरणं उदाहरन्ति" [प्राणोच्छेदं] इन्द्रिय, बल, उच्छ्वास, आयु—ऐसे हैं जो प्राण, उनका विनाश ऐसा जो [मरणं] मरण कहनेमें आता है [उदाहरन्ति] अरिहन्तदेव ऐसा कहते हैं। "किल आत्मनः ज्ञानं प्राणाः" [किल] निश्चयसे [आत्मनः] जीव द्रव्यका [ज्ञानं प्राणाः] शुद्धचैतन्यमात्र प्राण है। "तत् जातुचित् न उच्छिद्यते" [तत्] शुद्धज्ञान [जातुचित्] किसी कालमें [न उच्छिद्यते] नहीं विनशता है। किस कारणसे ? "स्वयं एव शाश्वततया" [स्वयं एव] विना ही जतन [शाश्वततया] अविनश्वर है तिस कारणसे। भावार्थ इस प्रकार है कि सभी मिथ्यादृष्टि जीवोंको मरणका भय होता है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा अनुभवता है कि 'मेरा शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप है सो तो विनशता नहीं, प्राण नष्ट होते हैं सो तो मेरा स्वरूप है ही नहीं, पुद्गलका स्वरूप है। इसलिए मेरा मरण होवे तो डरों, मैं किसलिये डरों, मेरा स्वरूप शाश्वत है' ॥२७-१५९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।

तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२८-१६०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः ज्ञानं सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं] शुद्धचैतन्य वस्तुको [सदा] त्रिकाल [विन्दति] आस्वादता है । कैसा है ज्ञान ? "स्वयं" सहज ही से उपजा है । और कैसा है ? "सततं" अखण्ड धाराप्रवाह-रूप है । और कैसा है ? "सहजं" बिना उपाय ऐसी ही वस्तु है । कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "निःशङ्कः" आकस्मिक भयसे रहित है । आकस्मिक अर्थात् अनचिन्ता तत्काल ही अनिष्टका उत्पन्न होना । क्या विचारता है सम्यग्दृष्टि जीव ? "अत्र तत् आकस्मिकं किञ्चन न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः" [अत्र] शुद्धचैतन्य वस्तुमें [तत्] कहा है लक्षण जिसका ऐसा [आकस्मिकं] क्षणमात्रमें अन्य वस्तुसे अन्य वस्तुपना [किञ्चन न भवेत्] ऐसा कुछ है ही नहीं, तिस कारण [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [तद्भीः] आकस्मिकपनाका भय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपि तु नहीं होता । किस कारणसे ? "एतत् ज्ञानं स्वतः यावत्" [एतत् ज्ञानं] शुद्ध जीव वस्तु [स्वतः यावत्] आप सहज जैसी है जितनी है "इदं तावत् सदा एव भवेत्" [इदं] शुद्ध वस्तुमात्र [तावत्] वैसी है उतनी है । [सदा] अतीत, अनागत, वर्तमान कालमें [एव भवेत्] निश्चयसे ऐसी ही है । "अत्र द्वितीयोदयः न" [अत्र] शुद्ध वस्तुमें [द्वितीयोदयः] औरसा स्वरूप [न] नहीं होता है । कैसा है ज्ञान ? "एकं" समस्त विकल्पोंसे रहित है । और कैसा है ? "अनाद्यनन्तं" नहीं है आदि, नहीं है अन्त जिसका ऐसा है । और कैसा है ? "अचलं" अपने स्वरूपसे नहीं विचलित होता । और कैसा है ? "सिद्धं" निष्पन्न है ॥२८–१६०॥

(मन्दाक्रान्ता)

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥२९-१६१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—'यत् इह सम्यग्दृष्टेः लक्ष्माणि सकलं कर्म घ्नन्ति" [यत्] जिस कारणसे [इह] विद्यमान [सम्यग्दृष्टेः] शुद्धस्वरूप परिणमा है जो

जीव, उसके [लक्ष्माणि] निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य, प्रभावना-ऐसे हैं जो [सकलं कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकार पुद्गल द्रव्यके परिणमनको [घ्नन्ति] हनन करते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके जितने कोई गुण हैं वे शुद्ध परिणमनरूप हैं, उनसे कर्मकी निर्जरा है। "तत् तस्य अस्मिन् कर्मणः मनाक् बन्धः पुनः अपि नास्ति" [तत] इस कारण [तस्य] सम्यग्दृष्टि जीवके [अस्मिन] शुद्ध परिणामके होनेपर [कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्मोंका [मनाक् बन्धः] सूक्ष्ममात्र भी बन्ध [पुनः अपि नास्ति] कभी नहीं। "तत् पूर्वोपात्तं अनुभवतः निश्चितं निर्जरा एव" [तत्] ज्ञानावरणादि कर्म-[पूर्वोपात्तं] सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पहले अज्ञान राग परिणामसे बांधा था जो कर्म-उसके उदयको [अनुभवतः] जो भोगता है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके [निश्चितं] निश्चयसे [निर्जरा एव] ज्ञानावरणादि कर्मका गलना है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव? "टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः" [टङ्कोत्कीर्ण] शाश्वत जो [स्वरस] स्व-परग्राहकशक्ति उससे [निचित] परिपूर्ण ऐसा [ज्ञान] प्रकाशगुण, वही है [सर्वस्व] आदि मूल जिसका ऐसा जो जीवद्रव्य, उसका [भाजः] अनुभव करनेमें समर्थ है। ऐसा है सम्यग्दृष्टि जीव, सो उसके नूतन कर्मका बन्ध नहीं है, पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा है ॥ २९-१६१ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

रुन्धन् बन्धं नवमिति निजैः सगंतोऽष्टाभिरंगैः
प्राग्बद्धं तु क्षयसुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥३०-१६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टिः ज्ञानं भूत्वा नटति" [सम्यग्दृष्टिः] शुद्ध स्वभावरूप होकर परिणत हुआ जीव [ज्ञानं भूत्वा] शुद्ध ज्ञानस्वरूप होकर [नटति] अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणमता है। कैसा है शुद्ध ज्ञान? आदिमध्यान्तमुक्त" अतीत, अनागत, वर्तमानकालगोचर शाश्वत है। क्या करके? "गगनाभोगरङ्गं विगाह्य" [गगन] जीवका शुद्ध स्वरूप है [आभोगरङ्गं] अखाड़ेकी नाचनेकी भूमि, उसको [विगाह्य] अनुभवगोचर करके, ऐसा है ज्ञानमात्र वस्तु। किस कारणसे? "स्वयं अतिरसात्" अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय जो सुख उसे प्राप्त होनेसे। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव?

"नवं बन्धं रुन्धन्" [**नवं**] धाराप्रवाहरूप परिणमा है जो ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल-पिण्ड ऐसा जो [**बन्धं**] जीवके प्रदेशोंसे एक क्षेत्रावगाहरूप, उसको [**रुन्धन्**] मेटता हुआ; क्योंकि "निजैः अष्टाभिः अङ्गैः सङ्गतः" [**निजैः अष्टाभिः**] अपने ही निःशंकित, निःकांक्षित इत्यादिरूप कहे जो आठ [**अङ्गैः**] सम्यक्त्वके सहारेके गुण, उनसे [**सङ्गतः**] भावरूप परिणमा है, ऐसा है। और कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "तु प्राग्बद्धं कर्म क्षयं उपनयन्" [**तु**] दूसरा कार्य ऐसा भी होता है कि [**प्राग्बद्धं**] पूर्वमें बांधा है जो ज्ञानावरणादि [**कर्म**] पुद्गलपिण्ड, उसका [**क्षयं**] मूलसे सत्तानाश [**उपनयन्**] करता हुआ। किसके द्वारा ? "निर्जरोज्जृम्भणेन" [**निर्जरा**] शुद्ध परिणामके [**उज्जृम्भणेन**] प्रगटपनाके द्वारा ॥३०-१६२॥



बन्ध-अधिकार

(शार्दूलविक्रीडित)

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत् ।
आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटन्नाटयद्-
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति ।।१-१६३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानं समुन्मज्जति" [ज्ञानं] शुद्ध जीव [समुन्मज्जति] प्रगट होता है। भावार्थ—यहाँ से लेकर जीवका शुद्धस्वरूप कहते हैं। कैसा है शुद्ध-ज्ञान ? "आनन्दामृतनित्यभोजि" [आनन्द] अतीन्द्रिय सुख, ऐसा है [अमृत] अपूर्व लब्धि, उसका [नित्यभोजि] निरन्तर आस्वादनशील है। और कैसा है ? "स्फुटं सहजावस्थां नाटयत्" [स्फुटं] प्रगटरूपसे [सहजावस्थां] अपने शुद्ध स्वरूपको [नाटयत्] प्रगट करता है। और कैसा है ? "धीरोदारं" [धीर] अविनश्वर सत्तारूप है। [उदारं] धाराप्रवाहरूप परिणमनस्वभाव है। और कैसा है ? "अनाकुलं" सब दुःखसे रहित है। और कैसा है ? "निरुपधि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है। क्या करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "बन्धं धुनत्" [बन्धं] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्डका परिणमन, उसको [धुनत्] मेटता हुआ। कैसा है बन्ध ? "क्रीडन्तं" प्रगटरूपसे गर्जता है। किसके द्वारा क्रीड़ा करता है ? 'रसभावनिर्भरमहानाट्येन" [रसभाव] समस्त जीवराशिको अपने वशकर उत्पन्न हुआ जो अहङ्कारलक्षण गर्व, उससे [निर्भर] भरा हुआ जो [महानाट्येन] अनन्त कालसे लेकर अखाड़ेका सम्प्रदाय, उसके द्वारा। क्या करके ऐसा है बन्ध ? "सकलं जगत् प्रमत्तं कृत्वा" [सकलं जगत्] सर्व संसारी जीवराशिको [प्रमत्तं कृत्वा] जीवके शुद्धस्वरूपसे भ्रष्ट कर। किसके द्वारा ? "रागोद्गारमहारसेन" [राग] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिका [उद्गार] अति

ही आधिवयपना, ऐसी जो [महारसेन] मोहरूप मदिरा, उसके द्वारा। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार किसी जीवको मदिरा पिलाकर विकल किया जाता है, सर्वस्व छीन लिया जाता है, पदसे भ्रष्ट कर दिया जाता है; उसी प्रकार अनादिकालसे लेकर सर्व जीवराशि राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामसे मतवाली हुई है, इससे ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध होता है। ऐसे वन्धको शुद्ध ज्ञानका अनुभव मेटनशील है, इसलिए शुद्ध ज्ञान उपादेय है ॥१-१६३॥

(पृथ्वी)

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥२-१६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—प्रथम ही वन्धका स्वरूप कहते हैं—"यत् उपयोगभूः रागादिभिः ऐक्यं समुपयाति स एव केवलं किल नृणां वन्धहेतुः भवति" [**यत्**] जो [**उपयोग**] चेतनागुणरूप [**भूः**] मूल वस्तु [**रागादिभिः**] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामके साथ [**ऐक्यं**] मिश्रितपनेरूपसे [**समुपयाति**] परिणमती है, [**सः एव**] एतावन्मात्र [**केवलं**] अन्य सहाय विना [**किल**] निश्चयसे [**नृणां**] जितनी संसारी जीवराशि है उसके [**वन्धहेतुः भवति**] ज्ञानावरणादि कर्मवन्धका कारण होता है। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि वन्धका कारण इतना ही है कि और भी कुछ वन्धका कारण है ? समाधान इस प्रकार है कि वन्धका कारण इतना ही है, और तो कुछ नहीं है; ऐसा कहते हैं—"कर्मवहुलं जगत् न वन्धकृत् वा चलनात्मकं कर्म न वन्धकृत् वा अनेककरणानि न वन्धकृत् वा चिदचिद्वधः न वन्धकृत्" [**कर्म**] ज्ञानावरणादि कर्मरूप वाँधनेको योग्य हैं जो कार्मणवर्गणा, उनसे [**वहुल**] घृतघटके समान भरा है ऐसा जो [**जगत्**] तीनसौ तेतालीस राजुप्रमाण लोकाकाशप्रदेश [**न वन्धकृत्**] वह भी वंधका कर्ता नहीं है। समाधान इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध परिणामोंके विना कार्मण वर्गणामात्रसे वंध होता तो जो मुक्त जीव हैं उनके भी वन्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध परिणाम हैं तो ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध है, तो फिर कार्मण वर्गणाका सहारा कुछ नहीं है; जो रागादि अशुद्ध भाव नहीं हैं तो कर्मका

बन्ध नहीं है, तो फिर कार्मणवर्गणाका सहारा कुछ नहीं है। [चलनात्मकं कर्म] मन-वचन-काययोग [न बन्धकृत्] वह भी बन्धका कर्ता नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो मन-वचन-काययोग बन्धका कर्ता होता तो तेरहवें गुणस्थानमें मन-वचन-काययोग है सो उनके द्वारा भी कर्मका बन्ध होता; इस कारण जो रागादि अशुद्ध भाव है तो कर्मका बन्ध है, तो फिर मन-वचन-काययोगोंका सहारा कुछ नहीं है; रागादि अशुद्ध भाव नहीं है तो कर्मका बन्ध नहीं है, तो फिर मन-वचन-काययोगका सहारा कुछ नहीं है। [अनेककरणानि] पाँच इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत, छठा मन [न बन्धकृत्] ये भी बन्धके कर्ता नहीं हैं। समाधान इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके पांच इन्द्रियां हैं, मन भी है, उनके द्वारा पुद्गलद्रव्यके गुणका ज्ञायक भी है। जो पांच इन्द्रिय और मनमात्रसे कर्मका बन्ध होता तो सम्यग्दृष्टि जीवको भी बन्ध सिद्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध भाव है तो कर्मका बन्ध है, तो फिर पांच इन्द्रिय और छठे मनका सहारा कुछ नहीं है; जो रागादि अशुद्ध भाव नहीं है तो कर्मका बन्ध नहीं है, तो फिर पांच इन्द्रिय और छठे मनका सहारा कुछ नहीं है। [चित्] जीवके सम्बन्ध सहित एकेन्द्रियादि शरीर, [अचित्] जीवके सम्बन्ध रहित पाषाण, लोह, माटी उनका [वधः] मूलसे विनाश अथवा बाधा-पीड़ा [न बन्धकृत्] वह भी बन्धका कर्ता नहीं है। समाधान इस प्रकार है कि जो कोई महामुनीश्वर भावलिंगी मार्ग चलता है, दैवसंयोग सूक्ष्म जीवोंको बाधा होती है, सो जो जीवघातमात्रसे बन्ध होता तो मुनीश्वरके कर्मबन्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि—जो रागादि अशुद्ध परिणाम है तो कर्मका बन्ध है, तो फिर जीवघातका सहारा कुछ नहीं है; जो रागादि अशुद्ध भाव नहीं है तो कर्मका बन्ध नहीं है, तो फिर जीवघातका सहारा कुछ नहीं है ॥ २-१६४ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म तत्
तान्यस्मिन्करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन्केवलं
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवम् ॥३-१६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहो अयं सम्यग्दृगात्मा कुतः अपि ध्रुवं एव बन्धं न उपैति" [अहो] भो भव्यजीव ! [अयं सम्यग्दृगात्मा] यह शुद्ध स्वरूपका अनुभवनशील सम्यग्दृष्टि जीव [कुतः अपि] भोग सामग्रीको भोगते हुए अथवा विना भोगते हुए [ध्रुवं] अवश्यकर [एव] निश्चयसे [बन्धं न उपैति] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको नहीं करता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "रागादीन् उपयोगभूमिं अनयन्" [रागादीन्] अशुद्धरूप विभावपरिणामोंको [उपयोगभूमिं] चेतनामात्र गुणके प्रति [अनयन्] न परिणमाता हुआ। "केवलं ज्ञानं भवेत्" मात्र ज्ञानस्वरूप रहता है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवको वाह्य आभ्यन्तर सामग्री जैसी थी वैसी ही है, परन्तु रागादि अशुद्धरूप विभाव परिणति नहीं है, इसलिए ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध नहीं है। "ततः लोकः कर्म अस्तु च तत् परिस्पन्दात्मकं कर्म अस्तु अस्मिन् तानि करणानि सन्तु च तत् चिदचिद्व्यापादनं अस्तु" [ततः] तिस कारणसे [लोकः कर्म अस्तु] कार्मण वर्गणासे भरा है जो समस्त लोकाकाश सो तो जैसा है वैसा ही रहो, [च] और [तत् परिस्पन्दात्मकं कर्म अस्तु] ऐसा है जो आत्मप्रदेशकम्परूप मन-वचन-कायरूप तीन योग वे भी जैसा है वैसा ही रहो तथापि कर्मका बन्ध नहीं। क्या होने पर ? [तस्मिन्] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणामके चले जानेपर [तानि करणानि सन्तु] वे भी पाँच इन्द्रियाँ तथा मन सो जैसे हैं वैसे ही रहो [च] और [तत् चिदचिद्व्यापादनं अस्तु] पूर्वोक्त चेतन अचेतनका घात जैसा होता था वैसा ही रहो तथापि शुद्धपरिणामके होनेपर कर्मका बन्ध नहीं है ॥३-१६५॥

(पृथ्वी)

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुद्धयते किमु करोति जानाति च ॥४-१६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तथापि ज्ञानिनां निरर्गलं चरितुं न इष्यते" [तथापि] यद्यपि कार्मणवर्गणा, मन-वचन-काययोग, पांच इन्द्रियां, मन, जीवका घात इत्यादि वाह्य सामग्री कर्मवन्धका कारण नहीं है। कर्मवन्धका कारण रागादि अशुद्धपना है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है। तो भी [ज्ञानिनां] शुद्धस्वरूपके अनुभवशील हैं जो

सम्यग्दृष्टि जीव उनकी [**निरर्गलं चरितुं**] 'प्रमादी होकर विषय भोगका सेवन किया तो किया ही, जीवोंका घात हुआ तो हुआ ही, मन वचन काय जैसे प्रवर्तें वैसे प्रवर्तो हो'—ऐसी निरंकुश वृत्ति [**न इष्यते**] जानकर करते हुए कर्मका वन्ध नहीं है ऐसा तो गणधरदेव नहीं मानते हैं। किस कारणसे नहीं मानते हैं? कारण कि "सा निरर्गला व्यापृत्तिः किल तदायतनं एव" [**सा**] पूर्वोक्त [**निरर्गला व्यापृत्तिः**] बुद्धि-पूर्वक-जानकर अन्तरंगमें रुचिकर विषय-कषायोंमें निरंकुशरूपसे आचरण [**किल**] निश्चयसे [**तदायतनं एव**] अवश्य कर मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध भावोंको लिए हुए है, इससे कर्मबन्धका कारण है। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसी युक्तिका भाव मिथ्यादृष्टि जीवके होता है सो मिथ्यादृष्टि कर्मबन्ध का कर्ता प्रगट ही है; कारण कि "ज्ञानिनां तत् अकामकृत कर्म अकारणं मतं" [**ज्ञानिनां**] सम्यग्दृष्टि जीवोंके [**तद्**] जो कुछ पूर्वबद्ध कर्मके उदयसे है वह समस्त [**अकामकृतकर्म**] अवांछित क्रियारूप है, इसलिए [**अकारणं मतं**] कर्मबन्धका कारण नहीं है—ऐसा गणधरदेवने माना है और ऐसा ही है। कोई कहेगा कि—"करोति जानाति च" [**करोति**] कर्मके उदयसे होती है जो भोगसामग्री सो होती हुई अन्तरंग रुचिपूर्वक सुहाती है ऐसा भी है [**जानाति च**] तथा शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है, समस्त कर्मजनित सामग्रीको हेयरूप जानता है ऐसा भी है। ऐसा कोई कहता है सो झूठा है; कारण कि "द्वयं किमु न हि विरुद्धयते" [**द्वयं**] ज्ञाता भी वांछक भी ऐसी दो क्रिया [**किमु न हि विरुद्धयते**] विरुद्ध नहीं क्या? अपि तु सर्वथा विरुद्ध हैं ॥४-१६६॥

(वसन्ततिलका)

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहु-
र्मिथ्यादृशः स नियतं स च बन्धहेतुः ॥५-१६७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः जानाति सः न करोति" [यः] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [जानाति] शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है [सः] वह सम्यग्दृष्टि जीव [न करोति] कर्मकी उदय सामग्रीमें अभिलाषा नहीं करता; "तु यः करोति अयं न जानाति" [तु] और [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [**करोति**] कर्मकी विचित्र

सामग्रीको आप जानकर अभिलाषा करता है [**अयं**] वह मिथ्यादृष्टि जीव [**न जानाति**] शुद्ध स्वरूप जीवको नहीं जानता है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीवको जीवके स्वरूपका जानपना नहीं घटित होता। "खलु" ऐसा वस्तुका निश्चय है। ऐसा कहा जो मिथ्यादृष्टि कर्ता है, वहां करना सो क्या ? "तत् कर्म किल रागः" [**तत् कर्म**] कर्मके उदय सामग्रीका करना वह [**किल**] वास्तवमें [**रागः**] कर्म सामग्रीमें अभिलाषा-रूप चिकना परिणाम है। कोई मानेगा कि कर्मसामग्रीमें अभिलाषा हुई तो क्या, न हुई तो क्या ? सो ऐसा तो नहीं है, अभिलाषामात्र पूरा मिथ्यात्व परिणाम है ऐसा कहते हैं—"तु रागं अबोधमयं अध्यवसायं आहुः" [**तु**] वह वस्तु ऐसी है कि [**रागं अबोधमयं अध्यवसायं**] परद्रव्यसामग्रीमें है जो अभिलाषा वह निःकेवल मिथ्यात्वरूप परिणाम है ऐसा [**आहुः**] गणधरदेवने कहा है। "सः नियतं मिथ्यादृशः भवेत्" [**सः**] कर्मकी सामग्रीमें राग [**नियतं**] अवश्यकर [**मिथ्यादृशः भवेत्**] मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, सम्यग्दृष्टि जीवके निश्चयसे नहीं होता। "सः च बन्धहेतुः" वह राग-परिणाम कर्मबन्धका कारण है। इसलिए भावार्थ ऐसा है कि मिथ्यादृष्टि जीव कर्म-बन्ध करता है, सम्यग्दृष्टि जीव नहीं करता ॥५-१६७॥

(वसन्ततिलका)

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६-१६८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह एतत् अज्ञानं" [**इह**] मिथ्यात्व परिणामका एक अंग दिखलाते हैं—[**एतत् अज्ञानं**] ऐसा भाव मिथ्यात्वमय है। "तु यत् परः पुमान् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्" [**तु**] वह कैसा भाव ? [**यत्**] वह भाव ऐसा कि [**परः पुमान्**] कोई पुरुष [**परस्य**] अन्य पुरुषके [**मरणजीवितदुःखसौख्यं**] मरण—प्राणघात, जीवित—प्राणरक्षा, दुःख—अनिष्टसंयोग, सौख्य—इष्टप्राप्ति ऐसे कार्यको [**कुर्यात्**] करता है। भावार्थ इस प्रकार है—अज्ञानी मनुष्योंमें ऐसी कहावत है कि 'इस जीवने इस जीवको मारा, इस जीवने इस जीवको जिलाया, इस जीवने इस जीवको सुखी किया, इस जीवने इस जीवको दुखी किया'; ऐसी कहावत है सो ऐसी ही प्रतीति जिस जीवको

होवे वह जीव मिथ्यादृष्टि है ऐसा निःसन्देह जानिगेगा, धोखा कुछ नहीं। क्यों जानना कि मिथ्यादृष्टि है ? कारण कि "मरणजीवितदुःखसौख्यं सर्वं सदा एव नियतं स्वकीय-कर्मोदयात् भवति" [मरण] प्राणघात [जीवित] प्राणरक्षा [दुःखसौख्यं] इष्ट-अनिष्ट-संयोग यह जो [सर्वं] सब जीवराशिको होता है वह सब [सदा एव] सर्वकाल [नियतं] निश्चयसे [स्वकीयकर्मोदयात् भवति] जिस जीवने अपने विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप परिणामके द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयुः कर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म, उस कर्मके उदयसे उस जीवको मरण अथवा जीवन अथवा दुःख अथवा सुख होता है ऐसा निश्चय है; इस बातमें धोखा कुछ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जीव किसी जीवको मारनेके लिए समर्थ नहीं है, जिलानेके लिए समर्थ नहीं है, सुखी दुःखी करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥६-१६८॥

(वसन्ततिलका)

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥७-१६९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये परात् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं पश्यन्ति" [ये] जो कोई अज्ञानी जीवराशि [**परात्**] अन्य जीवसे [**परस्य**] अन्य जीवका [**मरणजीवितदुःखसौख्यं**] मरना, जीना, दुःख, सुख [**पश्यन्ति**] मानती है; क्या करके ? "एतत् अज्ञानं अधिगम्य" [**एतत् अज्ञानं**] मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणामको—ऐसे अशुद्धपनेको [**अधिगम्य**] पाकर; "ते नियतं मिथ्यादृशः भवन्ति" [**ते**] जो जीवराशि ऐसा मानती है वह [**नियतं**] निश्चयसे [**मिथ्यादृशः भवन्ति**] सर्वप्रकार मिथ्यादृष्टि राशि है। कैसे हैं वे मिथ्यादृष्टि ? "अहंकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षवः" [**अहंकृति**] 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारक, मैं दुःखी, मैं सुखी' ऐसी कर्मजनित-पर्यायमें है आत्मबुद्धिरूप जो [**रस**] मग्नपना उसके द्वारा [**कर्माणि**] कर्मके उदयसे जितनी क्रिया होती है उसे [**चिकीर्षवः**] 'मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा' ऐसे अज्ञानको लिए हुए मानते हैं। और कैसे हैं ? "आत्महनः" अपनेको घातन-शील हैं ॥७-१६९॥

(अनुष्टुप्)

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ।।८-१७०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य मिथ्यादृष्टेः सः एव बन्धहेतुः भवति" [**अस्य मिथ्यादृष्टेः**] इस मिथ्यादृष्टि जीवके, [**सः एव**] मिथ्यात्वरूप है जो ऐसा परिणाम कि 'इस जीवने इस जीवको मारा, इस जीवने इस जीवको जिलाया'–ऐसा भाव [**बन्धहेतुः भवति**] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धका कारण होता है। किस कारणसे ? "विपर्ययात्" कारण कि ऐसा परिणाम मिथ्यात्वरूप है। "य एव अयं अध्यवसायः" इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ" ऐसा जो मिथ्यात्वरूप परिणाम जिसके होता है "अस्य अज्ञानात्मा दृश्यते" [**अस्य**] ऐसे जीवका [**अज्ञानात्मा**] मिथ्यात्वमय स्वरूप [**दृश्यते**] देखनेमें आता है ।।८-१७०।।

(अनुष्टुप्)

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः ।
तत्किञ्चनापि नैवास्ति नात्मात्मानं करोति यत् ।।९-१७१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा आत्मानं यत् न करोति तत् किञ्चन अपि न एव अस्ति" [**आत्मा**] मिथ्यादृष्टि जीव [**आत्मानं**] अपनेको [**यत् न करोति**] जिस-रूप नहीं आस्वादता [**तत् किञ्चन**] ऐसी पर्याय, ऐसा विकल्प [**न एव अस्ति**] त्रैलोक्यमें है ही नहीं। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव जैसी पर्याय धारण करता है, जैसे भावरूप परिणमता है, उस सबको आपस्वरूप जान अनुभवता है। इसलिए कर्मके स्वरूपको जीवके स्वरूपसे भिन्न कर नहीं जानता है, एकरूप अनुभव करता है। "अनेन अध्यवसायेन" 'इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ, इसे मैंने मारा, इसे मैंने जिलाया, इसे मैंने सुखी किया, इसे मैंने दुःखी किया'—ऐसे परिणामसे "विमोहितः" गहल (पागल) हुआ है। कैसा है परिणाम ? "निःफलेन" झूठा है। भावार्थ इस प्रकार है कि यद्यपि मारनेकी कहता है, जिलानेकी कहता है, तथापि जीवोंका मरना जीना अपने कर्मके उदयके हाथ है, इसके परिणामोंके अधीन नहीं है। यह अपने अज्ञानपनाको लिए हुए अनेक झूठे विकल्प करता है ।।९-१७१।।

(इन्द्रवज्रा)

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा-
दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०-१७२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते एव यतयः" वे ही यतीश्वर हैं "येषां इह एष अध्यवसायः नास्ति" [येषां] जिनको [इह] सूक्ष्मरूप वा स्थूलरूप [एष अध्यवसायः] 'इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ' ऐसा मिथ्यात्वरूप परिणाम [नास्ति] नहीं है। कैसा है परिणाम ? "मोहैककन्दः" [मोह] मिथ्यात्वका [एककन्दः] मूल कारण है। "यत्प्रभावात्" जिस मिथ्यात्वपरिणामके कारण "आत्मा आत्मानं विश्वं विदधाति" [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मानं] आपको [विश्वं] 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं क्रोधी, मैं मानी, मैं सुखी, मैं दुःखी' इत्यादि नानारूप [विदधाति] अनुभवता है। कैसा है आत्मा ? "विश्वात् विभक्तः अपि" कर्मके उदयसे हुई समस्त पर्यायोंसे भिन्न है, ऐसा है यद्यपि। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमें रत है, इसलिए पर्यायको आपरूप अनुभवता है। ऐसे मिथ्यात्वभावके छूटने पर ज्ञानी भी साँचा, आचरण भी साँचा ॥१०-१७२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥११-१७३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अमी सन्तः निजे महिम्नि धृतिं किं न बध्नन्ति" [अमी सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीवराशि [निजे महिम्नि] अपने शुद्ध चिद्रूप स्वरूपमें [धृतिं] स्थिरतारूप सुखको [किं न बध्नन्ति] क्यों न करे ? अपि तु सर्वथा करे। कैसी है निजमहिमा ? 'शुद्धज्ञानघने" [शुद्ध] रागादिरहित ऐसे [ज्ञान] चेतनागुणका [घने] समूह है। क्या करके ? "तत् सम्यक् निश्चयं आक्रम्य" [तत्] तिस कारणसे [सम्यक् निश्चयं] निर्विकल्प वस्तुमात्रको [आक्रम्य] जैसी है वैसी अनुभवगोचर

कर। कैसा है निश्चय ? "एकं एव" [एकं] निर्विकल्प वस्तुमात्र है, [एव] निश्चयसे। और कैसा है ? "निःकम्पं" सर्व उपाधिसे रहित है। "यत् सर्वत्र अध्यवसानं अखिलं एव त्याज्यं" [यत्] जिस कारणसे [सर्वत्र अध्यवसानं] 'मैं मारूँ, मैं जिलाऊँ, मैं दुःखी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य' इत्यादि हैं जो मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोकमात्र परिणाम [अखिलं एव त्याज्यं] वे समस्त परिणाम हेय हैं। कैसा है परिणाम ? "जिनैः उक्तं" परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान, उन्होंने ऐसा कहा है। "तत्" मिथ्यात्व-भावका हुआ है त्याग, उसको "मन्ये" मैं ऐसा मानता हूँ कि "निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः एव" [निखिलः अपि] जितना है सत्यरूप अथवा असत्यरूप [व्यवहारः] शुद्ध स्वरूपमात्रसे विपरीत जितने मन वचन कायके विकल्प वे सब [त्याजितः] सर्व प्रकार छूटे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया उसके समस्त व्यवहार छूट गया। कारण कि मिथ्यात्वके भाव तथा व्यवहारके भाव एकवस्तु है। कैसा है व्यवहार ? "अन्याश्रयः" [अन्य] विपरीतपना वही है [आश्रयः] अवलम्बन जिसका, ऐसा है ॥११-१७३॥

(उपजाति)

रागादयो बन्धनिदानमुक्ता-
स्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त-
मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१२-१७४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"पुनः एवं आहुः" [पुनः] शुद्ध वस्तुस्वरूपका निरूपण किया तथापि पुनः [एवं आहुः] ऐसा कहते हैं ग्रन्थके कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य। कैसा है ? "इति प्रणुन्नाः" ऐसा प्रश्नरूप नम्र होकर पूछा है। कैसा प्रश्नरूप ? "ते रागादयः बन्धनिदानं उक्ताः" अहो स्वामिन् ! [ते रागादयः] अशुद्ध चेतनारूप हैं राग द्वेष मोह इत्यादि असंख्यात लोकमात्र विभावपरिणाम, वे [बन्धनिदानं उक्ताः] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धके कारण हैं ऐसा कहा, सुना, जाना, माना। कैसे हैं वे भाव ? "शुद्धचिन्मात्र-महोऽतिरिक्ताः" [शुद्धचिन्मात्र] शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है जो [महः] ज्योतिस्वरूप जीववस्तु, उससे [अतिरिक्ताः] बाहर हैं। अब एक प्रश्न मैं करता हूँ कि "तन्निमित्तं आत्मा वा परः" [तन्निमित्तं] उन राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामोंका कारण कौन

[illegible] [मैं] [illegible] [illegible] [illegible] रागादि अशुद्ध परिणाम [अज्ञानतः] [illegible] [illegible] अनुभवता है, क्योंकि [illegible]
[अतः] इस कारणसे [कारकः] रागादि अशुद्ध परिणामोंका कर्ता [भवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीवके रागादि अशुद्धपरिणामका स्वामित्वपना है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्ता है॥१८-१७७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१६-१७८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एषः आत्मा आत्मानं समुपैति येन आत्मनि स्फूर्जति" [एषः आत्मा] प्रत्यक्ष है जो जीव द्रव्य सो [आत्मानं समुपैति] अनादि कालसे स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ था तथापि इस अनुक्रमसे अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ, [येन] जिस स्वरूपकी प्राप्तिके कारण [आत्मनि स्फूर्जति] पर द्रव्यसे सम्बन्ध छूट गया, आपसे सम्बन्ध रहा। कैसा है? "उन्मूलितबन्धः" [उन्मूलित] मूल सत्तासे दूर किया है [बन्धः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्यका पिण्ड जिसने, ऐसा है। और कैसा है? "भगवान्" ज्ञानस्वरूप है। कैसा करके अनुभवता है? "निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं" [निर्भर] अनन्त शक्तिके पुञ्जरूपसे [वहत्] निरन्तर परिणमता है ऐसा जो [पूर्ण] स्वरससे भरा हुआ [एकसंवित्] विशुद्ध ज्ञान, उससे [युतं] मिला हुआ है, ऐसे शुद्ध-स्वरूपको अनुभवता है। और कैसा है आत्मा? "इमां बहुभावसन्ततिं समं उद्धर्तुकामः" [इमां] कहा है स्वरूप जिसका ऐसा है [बहुभाव] राग द्वेष मोह आदि अनेक प्रकार के अशुद्ध परिणाम, उनकी [सन्ततिं] परम्परा, उसको [समं] एक ही कालमें [उद्धर्तुकामः] उखाड़ कर दूर करनेका है अभिप्राय जिसका, ऐसा है। कैसी है भावसन्तति? "तन्मूलां" पर द्रव्यका स्वामित्वपना है मूलकारण जिसका ऐसी है। क्या करके? "किल बलात् तत् समग्रं परद्रव्यं इति आलोच्य विवेच्य" [किल] निश्चयसे [बलात्] ज्ञानके बलकर [तत्] द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप [समग्रं परद्रव्यं]

ऐसी है जितनी पुद्गलद्रव्यकी विचित्र परिणति, उसको [इति आलोच्य] पूर्वोक्त प्रकारसे विचारकर [विवेच्य] शुद्ध ज्ञानस्वरूपसे भिन्न किया है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप उपादेय है, अन्य समस्त पर द्रव्य हेय है ॥१६-१७८॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत्
तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥१७-१७९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानज्योतिः तद्वत् सन्नद्धं" [**एतत् ज्ञानज्योतिः**] स्वानुभवगोचर शुद्ध चैतन्यवस्तु [**तद्वत् सन्नद्धं**] अपने बलपराक्रमके साथ ऐसी प्रगट हुई कि "यद्वत् अस्य प्रसरं अपरः कः अपि न आवृणोति" [**यद्वत्**] जैसे [**अस्य प्रसरं**] शुद्ध ज्ञानका लोक अलोकसम्बन्धी सकल ज्ञेयको जाननेका ऐसा प्रसार जिसको [**अपरः कः अपि**] अन्य कोई दूसरा द्रव्य [**न आवृणोति**] नहीं रोक सकता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन है, वह ज्ञानावरणादि कर्मबन्धके द्वारा आच्छादित है। ऐसा आवरण शुद्ध परिणामसे मिटता है, वस्तु स्वरूप प्रगट होता है। ऐसा शुद्धस्वरूप जीवको उपादेय है। कैसी है ज्ञानज्योति ? "क्षपिततिमिरं" [**क्षपित**] विनाश किया है [**तिमिरं**] ज्ञानावरण दर्शनावरणकर्म जिसने, ऐसी है। और कैसी है ? "साधु" सर्व उपद्रवोंसे रहित है। और कैसी है ? "कारणानां रागादीनां उदयं दारयत्" [**कारणानां**] कर्मबन्धके कारण ऐसे जो [**रागादीनां**] राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम, उनके [**उदयं**] प्रगटपनेको [**दारयत्**] मूलसे ही उखाड़ती हुई। कैसे उखाड़ती है ? "अदयं" निर्दयपनेके समान। और क्या करके ऐसी होती है ? "कार्यं बन्धं अधुना सद्यः एव प्रणुद्य" [**कार्यं**] रागादि अशुद्ध परिणामोंके होने पर होता है ऐसे [**बन्धं**] धाराप्रवाहरूप होनेवाले पुद्गलकर्मके बन्धको [**सद्यः एव**] जिस कालमें रागादि मिट गये उसी कालमें [**प्रणुद्य**] मेट करके। कैसा है बन्ध ? "विविधं" ज्ञानावरण दर्शनावरण इत्यादि असंख्यात लोकमात्र है। कोई वितर्क करेगा कि ऐसा तो द्रव्यरूप विद्यमान ही था ? समाधान इस प्रकार है कि [**अधुना**] द्रव्यरूप यद्यपि विद्यमान ही था तथापि प्रगटरूप, बन्धको दूर करने पर हुआ ॥१७-१७९॥

मोक्ष-अधिकार

(शिखरिणी)

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम् ।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१-१८०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदानीं पूर्णं ज्ञानं विजयते" [इदानीं] यहाँ से लेकर [पूर्णं ज्ञानं] समस्त आवरणका विनाश होने पर होता है जो शुद्ध वस्तुका प्रकाश वह [विजयते] आगामी अनन्त काल पर्यन्त उसीरूप रहता है, अन्यथा नहीं होता । कैसा है शुद्धज्ञान ? "कृतसकलकृत्यं" [कृत] किया है [सकलकृत्यं] करनेयोग्य समस्त कर्मका विनाश जिसने, ऐसा है । और कैसा है ? "उन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं" [उन्मज्जत्] अनादि कालसे गया था सो प्रगट हुआ है ऐसा जो [सहजपरमानन्द] द्रव्यके स्वभावरूपसे परिणमनेवाला अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख, उससे [सरसं] संयुक्त है । भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्षका फल अतीन्द्रिय सुख है । क्या करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "पुरुषं साक्षात् मोक्षं नयत्" [पुरुषं] जीव द्रव्यको [साक्षात् मोक्षं] सकल कर्मका विनाश होने पर शुद्धत्व अवस्थाके प्रगटपनेरूप [नयत्] परिणमाता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से आरम्भकर सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षके स्वरूपका निरूपण किया जाता है । और कैसा है ? "परं" उत्कृष्ट है । और कैसा है ? "उपलम्भैकनियतं" एक निश्चय स्वभावको प्राप्त है । क्या करता हुआ आत्मा मुक्त होता है ? "बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य" [बन्ध] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप उपाधि और [पुरुषौ] शुद्ध जीवद्रव्य इनको, [द्विधाकृत्य] 'सर्व बन्ध हेय, शुद्ध जीव उपादेय' ऐसी भेदज्ञानरूप प्रतीति उत्पन्न कराकर । ऐसी प्रतीति जिस प्रकार उत्पन्न होती है

उस प्रकार कहते हैं—"प्रज्ञाक्रकचदलनात्" [प्रज्ञा] शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य और अशुद्ध रागादि उपाधि बन्ध—ऐसी भेदज्ञानरूपी बुद्धि, ऐसी जो [**क्रकच**] करौंत, उसके द्वारा [**दलनात्**] निरन्तर अनुभवका अभ्यास करनेसे। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार करौंतके वार वार चालू करनेसे पुद्गलवस्तु काष्ठ आदि दो खण्ड हो जाता है, उसी प्रकार भेदज्ञानके द्वारा जीव-पुद्गलको वार वार भिन्न भिन्न अनुभव करनेपर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, इसलिए भेदज्ञान उपादेय है ॥१-१८०॥

(स्रग्धरा)

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानं मग्नमंतःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ।२-१८१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य तथा कर्म पर्याय-रूप परिणत पुद्गलद्रव्यका पिण्ड, इन दोनोंका एकबन्धपर्यायरूप सम्बन्ध अनादिसे चला आया है; सो ऐसा सम्बन्ध जब छूट जाय, जीवद्रव्य अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणवे, अनन्त चतुष्टयरूप परिणवे, तथा पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायको छोड़े—जीवके प्रदेशोंसे सर्वथा अबन्धरूप होकर सम्बन्ध छूट जाय, जीव-पुद्गल दोनों भिन्नभिन्न हो जावें, उसका नाम मोक्ष कहनेमें आता है। उस भिन्नभिन्न होनेका कारण ऐसा जो मोह राग द्वेष इत्यादि विभावरूप अशुद्ध परिणतिके मिटने पर जीवका शुद्धत्वरूप परिणमन। उसका विवरण इस प्रकार है कि शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मोंके क्षय करनेका कारण है। ऐसा शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा द्रव्यका परिणामनरूप है, निर्विकल्परूप है, इसलिए वचनके द्वारा कहनेका समर्थपना नहीं है। इस कारण इस रूपमें कहते हैं कि जीवके शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण, सो मोक्षका कारण है। उसका समाधान ऐसा है कि शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप है जो ज्ञान वह, जीवके शुद्धत्व-परिणमनको सर्वथा लिए हुए है। जिसको शुद्धत्व परिणमन होता है उस जीवको शुद्ध-स्वरूपका अनुभव अवश्य होता है, धोखा नहीं, अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव नहीं होता; इसलिए शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षका कारण है। यहाँ अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि जीव नाना प्रकारके विकल्प करते हैं, सो उनका समाधान करते हैं। कोई कहते हैं कि जीवका

स्वरूप और बंधका स्वरूप जान लेना मोक्षमार्ग है। कोई कहते हैं कि बन्धका स्वरूप जानकर ऐसा चिन्तवन करना कि 'बन्ध कब छूटेगा, कैसे छूटेगा' ऐसी चिन्ता मोक्षका कारण है। ऐसा कहते हैं सो वे जीव झूठे हैं–मिथ्यादृष्टि हैं। मोक्षका कारण जैसा है वैसा कहते हैं—"इयं प्रज्ञाच्छेत्री आत्मकर्मोभयस्य अन्तःसन्धिबन्धे निपतति' [इयं] वस्तुस्वरूपसे प्रगट है जो [प्रज्ञा] आत्माके शुद्धस्वरूप अनुभवसमर्थपनेसे परिणमा हुआ जीवका ज्ञानगुण, वही है [छेत्री] छैनी। भावार्थ इस प्रकार है कि सामान्यतया जिस किसी वस्तुको छेदकर दो करते हैं सो छैनीके द्वारा छेदते हैं। यहां भी जीव-कर्म को छेदकर दो करना है, उनको दो रूपसे छेदनेके लिए स्वरूपअनुभवसमर्थ ज्ञानरूप छैनी है; और तो दूसरा कारण न हुआ, न होगा। ऐसी प्रज्ञाछैनी जिस प्रकार छेदकर दो करती है उस प्रकार कहते हैं—[आत्मकर्मोभयस्य] आत्मा–चेतनामात्र द्रव्य, कर्म-पुद्गलका पिण्ड अथवा मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणति, ऐसी है उभय–दो वस्तुऐं, उनको [अन्तःसन्धि] यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है, बन्धपर्यायरूप है, अशुद्धत्व विकाररूप परिणमा है तथापि परस्पर सन्धि है. निःसन्धि नहीं हुआ है, दो द्रव्योंका एक द्रव्यरूप नहीं हुआ है ऐसा है जो – [बन्धे] ज्ञानछैनीके पैठनेका स्थान, उसमें [निपतति] ज्ञानछैनी पैठती है, पैठी हुई छेदकर भिन्नभिन्न करती है। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "शिता" ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होनेपर, मिथ्यात्व कर्मका नाश होनेपर शुद्धचैतन्य-स्वरूपमें अत्यन्त पैठन समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार यद्यपि लोह-सारकी छैनी अति पैनी होती है तो भी सन्धिका विचार कर देने पर छेद कर दो कर देती है; उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान अत्यन्त तीक्ष्ण है तथापि जीव-कर्म की है जो भीतरमें सन्धि, उसमें प्रवेश करने पर प्रथम तो बुद्धिगोचर छेदकर दो करता है, पश्चात् सकल कर्मका क्षय होनेसे साक्षात् छेदकर भिन्नभिन्न करता है। कैसा है जीव-कर्मका अन्तः सन्धिबन्ध ? "सूक्ष्मे" अति ही दुर्लक्ष्य सन्धिरूप है। उसका विवरण इस प्रकार है—कि जो द्रव्यकर्म है ज्ञानावरणादि पुद्गलका पिण्ड, वह यद्यपि एक क्षेत्रा-वगाहरूप है तथापि उसकी तो जीवसे भिन्नपनेकी प्रतीति, विचारने पर उत्पन्न होती है; कारण कि द्रव्यकर्म पुद्गल पिण्डरूप है, यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि भिन्न-भिन्न प्रदेश है, अचेतन है, बँधता है, खुलता है—ऐसा विचार करने पर भिन्नपनेकी प्रतीति उत्पन्न होती है। नोकर्म है जो शरीर-मन-वचन उससे भी उस प्रकारसे विचारने पर भेद-प्रतीति उपजती है। भावकर्म जो मोह राग द्वेषरूप अशुद्धचेतनारूप परिणाम,

वे अशुद्ध परिणाम वर्तमानमें जीवके साथ एक परिणमनरूप हैं, तथा अशुद्ध परिणामके साथ वर्तमान में जीव व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इस कारण उन परिणामोंका जीवसे भिन्नपनेका अनुभव कठिन है, तथापि सूक्ष्म सन्धिका भेद पाड़ने पर भिन्न प्रतीति होती है। उसका विचार ऐसा है कि जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वरूपसे स्वच्छतामात्र वस्तु है, लाल पीली काली पुरीका संयोग प्राप्त होने से लाल पीली काली इसरूप स्फटिकमणि झलकती है; वर्तमानमें स्वरूपका विचार करने पर स्वच्छतामात्र भूमिका स्फटिकमणि वस्तु है। उसमें लाल पीला कालापन परसंयोगकी उपाधि है, स्फटिक-मणिका स्वभावगुण नहीं है। उसी प्रकार जीवद्रव्यका स्वच्छ चेतनामात्र स्वभाव है। अनादि सन्तानरूप मोहकर्मके उदयसे मोह राग द्वेषरूप रंजक अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, तथापि वर्तमानमें स्वरूपका विचार करने पर चेतना भूमिमात्र तो जीव-वस्तु है; उसमें मोह राग द्वेषरूप रंजकपना कर्मके उदयकी उपाधि है, वस्तुका स्वभाव-गुण नहीं है। इस प्रकार विचार करने पर भेद-भिन्न प्रतीति उत्पन्न होती है, जो अनुभवगोचर है। कोई प्रश्न करता है कि कितने कालके भीतर प्रज्ञाछैनी गिरती है—भिन्नभिन्न करती है ? उत्तर इस प्रकार है—"रभसात्" अति सूक्ष्म काल—एक समयमें गिरती है, उसी काल भिन्नभिन्न करती है। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "निपुणैः कथं अपि पातिता" [निपुणैः] आत्मानुभवमें प्रवीण हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव उनके द्वारा [कथं अपि] संसारका निकटपना ऐसी काललब्धि प्राप्त होनेसे [पातिता] स्वरूपमें पैठानेसे पैठती है। भावार्थ इस प्रकार है कि भेदविज्ञान बुद्धिपूर्वक विकल्परूप है, ग्राह्य-ग्राहक-रूप है, शुद्धस्वरूपके समान निर्विकल्प नहीं है; इसलिए उपायरूप है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "सावधानैः" जीवका स्वरूप और कर्मका स्वरूप उनके भिन्नभिन्न विचारमें जागरूक हैं, प्रमादी नहीं हैं। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "अभितः भिन्नभिन्नौ कुर्वती" [अभितः] सर्वथा प्रकार [भिन्नभिन्नौ कुर्वती] जीवको और कर्मको जुदा जुदा करती है। जिस प्रकार भिन्नभिन्न करती है उस प्रकार कहते हैं—"चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वती अज्ञानभावे बन्धं नियमितं कुर्वती" [चैतन्य] स्वपरस्वरूपग्राहक ऐसा जो प्रकाशगुण उसके [पूरे] त्रिकालगोचर प्रवाहमें [आत्मानं] जीवद्रव्यको [मग्नं कुर्वती] एक वस्तुरूप—ऐसा साधती है; भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चेतनामात्र जीवका स्वरूप है ऐसा अनुभवगोचर आता है; [अज्ञानभावे] रागादिपनामें [नियमितं बन्धं कुर्वती] नियमसे बन्धका स्वभाव है—ऐसा साधती है। भावार्थ इस प्रकार है कि रागादि अशुद्ध-

पना कर्मबन्धकी उपाधि है, जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा अनुभवगोचर आता है। कैसा है चैतन्यपूर ? 'अन्तःस्थिरविशदलसद्धाम्नि" [अन्तः] सर्व असंख्यात प्रदेशोंमें एक-स्वरूप, [**स्थिर**] सर्व काल शाश्वत, [**विशद**] सर्व काल शुद्धत्वरूप और [**लसत्**] सर्व काल प्रत्यक्ष ऐसा [**धाम्नि**] केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुञ्ज है जिसका, ऐसा है ॥२-१८१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ।३-१८२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जिसके शुद्धस्वरूपका अनुभव होता है वह जीव ऐसा परिणामसंस्कार (वाला) होता है। "अहं शुद्धः चित् अस्मि एव" [**अहं**] मैं [**शुद्धः चित् अस्मि**] शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, [**एव**] निश्चयसे ऐसा ही हूँ। "चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा" [**चिन्मुद्रा**] चेतनागुण उसके द्वारा [**अङ्कित**] चिह्नित कर दी ऐसी है [**निर्विभाग**] भेदसे रहित [**महिमा**] वड़ाई जिसकी, ऐसा हूँ। ऐसा अनुभव जिस प्रकार होता है उस प्रकार कहते हैं—"सर्वं अपि भित्त्वा" [**सर्वं**] जितनी कर्मके उदयकी उपाधि है उसको—[**भित्त्वा**] अनादिकालसे आपा जानकर अनुभवता था सो परद्रव्य जानकर—स्वामित्व छोड़ दिया। कैसा है परद्रव्य ? "यत् तु भेत्तुं शक्यते" [**यत्**] जो कर्मरूप परद्रव्य-वस्तु [**भेत्तुं शक्यते**] जीवसे भिन्न करनेको शक्य है अर्थात् दूर किया जा सकता है। किस कारणसे ? "स्वलक्षणबलात्" [**स्वलक्षण**] जीवका लक्षण चेतन, कर्मका लक्षण अचेतन—ऐसा भेद उसके [**बलात्**] सहायसे। कैसा हूँ मैं ? "यदि कारकाणि वा धर्माः वा गुणा भिद्यन्ते भिद्यन्तां चिति भावे काचन भिदा न" [**यदि**] जो [**कारकाणि**] आत्मा आत्माको आत्माके द्वारा आत्मामें ऐसा भेद [**वा**] अथवा [**धर्माः**] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप द्रव्य-गुण-पर्यायरूप भेदबुद्धि अथवा [**गुणाः**] ज्ञानगुण, दर्शनगुण, सुखगुण इत्यादि अनन्त गुणरूप भेदबुद्धि [**भिद्यन्ते**] जो ऐसा भेद वचनके द्वारा उपजाया हुआ उपजता है, [**तदा भिद्यन्तां**] तो वचनमात्र भेद होओ; परन्तु [**चिति भावे**] चैतन्यसत्तामें तो [**काचन भिदा न**]

कोई भेद नहीं है, निर्विकल्पमात्र चैतन्य वस्तुका सत्त्व है। कैसा है चैतन्यभाव ? "विभौ" अपने स्वरूपको व्यापनशील है। और कैसा है ? "विशुद्धे" सर्व कर्मकी उपाधिसे रहित है ॥३-१८२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥४-१८३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तेन चित् नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु" [तेन] तिस कारणसे [चित्] चेतनामात्र सत्ता [नियतं] अवश्य कर [दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु] दर्शन ऐसा नाम, ज्ञान ऐसा नाम दो नाम–संज्ञाके द्वारा उपदिष्ट होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि एक सत्त्वरूप चेतना, उसके नाम दो—एक तो दर्शन ऐसा नाम, दूसरा ज्ञान ऐसा नाम। ऐसा भेद होता है तो होओ, विरुद्ध तो कुछ नहीं है ऐसे अर्थको दृढ़ करते हैं—"चेत् जगति चेतना अद्वैता अपि तत् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्। सा अस्तित्वं एव त्यजेत्" [चेत्] जो ऐसा है कि [जगति] त्रैलोक्यवर्ती जीवोंमें प्रगट हैं [चेतना] स्वपरग्राहक शक्ति; कैसी है ? [अद्वैता अपि] एक प्रकाशरूप है, तथापि [दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्] दर्शनरूप चेतना, ज्ञानरूप चेतना ऐसे दो नामोंको छोड़े, तो उसमें तीन दोष उत्पन्न होते हैं। प्रथम दोष—"सा अस्तित्वं एव त्यजेत्" [सा] वह चेतना [अस्तित्वं एव त्यजेत्] अपने सत्त्वको अवश्य छोड़े। भावार्थ इस प्रकार है कि चेतना सत्त्व नहीं है ऐसा भाव प्राप्त होगा। किस कारणसे ? "सामान्यविशेषरूपविरहात्" [सामान्य] सत्तामात्र [विशेष] पर्यायरूप, उनके [विरहात्] रहितपनाके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार समस्त जीवादि वस्तु सत्त्वरूप है, वही सत्त्व पर्यायरूप है, उसी प्रकार चेतना अनादिनिधन सत्तास्वरूप वस्तुमात्र निर्विकल्प है, इस कारण चेतनाका दर्शन ऐसा नाम कहा जाता है; कारण कि समस्त ज्ञेय वस्तुको ग्रहण करती है, जिस तिस ज्ञेयाकाररूप परिणमती है, ज्ञेयाकाररूप परिणमन चेतनाकी पर्याय है, तिसरूप परिणमती है, इसलिए चेतनाका ज्ञान ऐसा नाम है। ऐसी दो अवस्थाओंको छोड़ दे तो चेतना वस्तु नहीं है ऐसी प्रतीति उत्पन्न हो जाय। यहाँ कोई आशंका करेगा कि चेतना नहीं तो नहीं रहो, जीव द्रव्य तो विद्यमान है ? उत्तर इस प्रकार है कि चेतना मात्रके द्वारा

जीव द्रव्य साधा है । इस कारण उस चेतनाके सिद्ध हुए बिना जीव द्रव्य भी सिद्ध नहीं होगा; अथवा जो सिद्ध होगा तो वह पुद्गल द्रव्यके समान अचेतन सिद्ध होगा, चेतन नहीं सिद्ध होगा। इसी अर्थको कहते हैं, दूसरा दोष ऐसा—"तत्त्यागे चितः अपि जडता भवति" [तत्त्यागे] चेतनाका अभाव होनेपर [चितः अपि] जीव द्रव्यको भी [जडता भवति] पुद्गलद्रव्यके समान जीव द्रव्य भी अचेतन है ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है । 'च" तीसरा दोष ऐसा कि "व्यापकात् विना व्याप्यः आत्मा अन्तं उपैति" [व्यापकात् विना] चेतन गुणका अभाव होनेपर [व्याप्यः आत्मा] चेतनागुणमात्र है जो जीव द्रव्य वह [अन्तं उपैति] मूलसे जीव द्रव्य नहीं है ऐसी प्रतीति भी उत्पन्न होती है । ऐसे तीन दोष मोटे दोष हैं । ऐसे दोषोंसे जो कोई भय करता है उसे ऐसा मानना चाहिए कि चेतना दर्शन-ज्ञान ऐसे दो नाम—संज्ञा विराजमान है । ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है ॥४-१८३॥

(इन्द्रवज्रा)

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे ये किल ते परेषाम् ।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥५-१८४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"चितः चिन्मयः भावः एव" [चितः] जीव द्रव्यका [चिन्मयः] चेतनामात्र ऐसा [भावः] स्वभाव है, [एव] निश्चयसे ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है । कैसा है चेतनामात्र भाव ? "एकः" निर्विकल्प है, निर्भेद है, सर्वथा शुद्ध है । "किल ये परे भावाः ते परेषां" [किल] निश्चयसे [ये परे भावाः] शुद्ध चैतन्यस्वरूपसे अनमिलते हैं जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसम्बन्धी परिणाम वे [परेषां] समस्त पुद्गलकर्मके हैं, जीवके नहीं हैं । "ततः चिन्मयः भावः ग्राह्यः एव परे भावाः सर्वतः हेयाः एव" [ततः] तिस कारणसे [चिन्मयः भावः] शुद्ध चेतनामात्र है जो स्वभाव वह [ग्राह्यः एव] जीवका स्वरूप है ऐसा अनुभव करना योग्य है; [परे भावाः] इससे अनमिलते हैं जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म स्वभाव वे [सर्वतः हेयाः एव] सर्वथा प्रकार जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा अनुभव करना योग्य है । ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है; सम्यक्त्वगुण मोक्षका कारण है ॥५-१८४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ।६-१८५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मोक्षार्थिभिः अयं सिद्धान्तः सेव्यतां" [मोक्षार्थिभिः] सकल कर्मका क्षय होने पर होता है अतीन्द्रिय सुख, उसे उपादेयरूप अनुभवते हैं ऐसे हैं जो कोई जीव उनके द्वारा [अयं सिद्धान्तः] जैसा कहेंगे वस्तुका स्वरूप उसका [सेव्यतां] निरन्तर अनुभव करो । कैसे हैं मोक्षार्थी जीव ? "उदात्तचित्तचरितैः" [उदात्त] संसार शरीर भोगसे रहित है [चित्तचरितैः] मनका अभिप्राय जिनका, ऐसे हैं । कैसा है वह परमार्थ ? "अहं शुद्धं चिन्मयं ज्योतिः सदा एव अस्मि" [अहं] स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हूँ जो मैं जीवद्रव्य [शुद्धं चिन्मयं ज्योतिः] शुद्ध ज्ञानस्वरूप प्रकाश [सदा] सर्वकाल [एव] निश्चयसे [अस्मि] हूँ । "तु ये एते विविधाः भावाः ते अहं नास्मि" [तु] एक विशेष है—[ये एते विविधाः भावाः] शुद्ध चैतन्यस्वरूपसे अनमिलते हैं जो रागादि अशुद्धभाव, शरीर आदि सुख दुःख आदि नाना प्रकार अशुद्ध पर्याय, [ते अहं नास्मि] ये सब जीवद्रव्यस्वरूप नहीं हैं । कैसे हैं अशुद्ध भाव ? "पृथग्लक्षणाः" मेरे शुद्धचैतन्य स्वरूपसे नहीं मिलते हैं । किस कारणसे ? "यतः अत्र ते समग्राः अपि मम परद्रव्यं" [यतः] जिस कारणसे [अत्र] निजस्वरूपका अनुभव करनेपर, [ते समग्राः अपि] जितने हैं रागादि-अशुद्धविभावपर्याय वे [मम परद्रव्यं] मुझे परद्रव्यरूप हैं, कारण कि शुद्ध चैतन्यलक्षण-से मिलते हुए नहीं हैं; इसलिए समस्त विभावपरिणाम हेय हैं ॥६-१८५॥

(अनुष्टुप्)

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥७-१८६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अपराधवान् बध्येत एव" [अपराधवान्] शुद्ध चिद्रूप अनुभवस्वरूपसे भ्रष्ट है जो जीव वह [बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्मोंके द्वारा बाँधा जाता है । कैसा है ? "परद्रव्यग्रहं कुर्वन्" [परद्रव्य] शरीर मन वचन रागादि अशुद्धपरिणाम उनका [ग्रहं] आत्मबुद्धिरूप स्वामित्वको [कुर्वन्] करता हुआ । "अनपराधः मुनिः

न वध्येत" [अनपराधः] कर्मके उदयके भावको आपा जानकर नहीं अनुभवता है ऐसा है जो [मुनिः] परद्रव्यसे विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव [न बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डके द्वारा नहीं बांधा जाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार कोई चोर परद्रव्यको चुराता है, गुनहगार होता है, गुनहगार होनेसे बांधा जाता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव परद्रव्यरूप हैं जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म उनको आपा जान अनुभवता है, शुद्धस्वरूप अनुभवसे भ्रष्ट है, परमार्थबुद्धिसे विचार करनेपर गुनहगार है, ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध करता है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भावसे रहित है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वद्रव्ये संवृतः अपने आत्मद्रव्यमें संवररूप है अर्थात् आत्मामें मग्न है ॥७-१८६।

(मालिनी)

अनवरतमनन्तैर्वध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥८-१८७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सापराधः अनवरतं अनन्तैः वध्यते" [**सापराधः**] परद्रव्यरूप है पुद्गलकर्म, उसको आपरूप जानता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव [**अनवरतं**] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [**अनन्तै**] गणनासे अतीत ज्ञानावरणादिरूप बँधी हैं पुद्गलवर्गणा उनके द्वारा [**वध्यते**] वाँधा जाता है। "निरपराधः जातु वन्धनं न एव स्पृशति" [**निरपराधः**] शुद्धस्वरूपको अनुभवता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव [**जातु**] किसी भी कालमें [**वन्धनं**] पूर्वोक्त कर्मबन्धको [**न स्पृशति**] नहीं छूता है, [**एव**] निश्चयसे। आगे सापराध–निरपराधका लक्षण कहते हैं—"अयं अशुद्धं स्वं नियतं भजन् सापराधः भवति" [**अयं**] मिथ्यादृष्टि जीव, [**अशुद्धं**] रागादि अशुद्ध परिणामरूप परिणमा है ऐसे [**स्वं**] आपसम्बन्धी जीवद्रव्यको [**नियतं भजन्**] ऐसा ही निरन्तर अनुभवता हुआ [**सापराधः भवति**] अपराध सहित होता है। "साधु शुद्धात्मसेवी निरपराधः भवति" [**साधु**] जैसा है वैसा [**शुद्धात्म**] सकल रागादि अशुद्धपनासे भिन्न शुद्धचिद्रूपमात्र ऐसे जीवद्रव्यके [**सेवी**] अनुभवसे विराजमान है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह [**निरपराधः**] सर्व अपराधसे रहित है; इसलिए कर्मका वन्धक नहीं होता ॥८-१८७॥

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालंबनम् ।
आत्मन्येवालानितं च चित्त-
मासंपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥९-१८८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अतः प्रमादिनः हताः" [अतः प्रमादिनः] शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिसे भ्रष्ट हैं जो जीव, वे [हताः] मोक्षमार्गके अधिकारी नहीं हैं; ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका धिक्कार किया है। कैसे हैं ? "सुखासीनतां गताः" कर्मके उदयसे प्राप्त जो भोगसामग्री उसमें सुखकी वांछा करते हैं। "चापलं प्रलीनं" [चापलं] रागादि अशुद्ध परिणामोंसे होती है सर्वप्रदेशोंमें आकुलता [प्रलीनं] वह भी हेय की। "आलम्बनं उन्मूलितं" [आलम्बनं] बुद्धिपूर्वक ज्ञान करते हुए जितना पढ़ना विचारना चिन्तवन करना स्मरण करना इत्यादि है वह [उन्मूलितं] मोक्षका कारण नहीं है ऐसा जानकर हेय ठहराया है। "आत्मनि एव चित्तं आलानितं" [आत्मनि एव] शुद्धस्वरूपमें एकाग्र होकर [चित्तं आलानितं] मनको बाँधा है। ऐसा कार्य जिस प्रकार हुआ उस प्रकार कहते हैं—"आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः" [आसम्पूर्णविज्ञान] निरावरण केवलज्ञान उसका [घन] समूह जो आत्मद्रव्य, उसकी [उपलब्धेः] प्रत्यक्ष प्राप्ति होनेसे ॥९-१८८॥

(वसन्ततिलका)

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ।१०-१८९।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् जनः किं प्रमाद्यति" [तत्] तिस कारणसे [जनः] समस्त संसारी जीवराशि [किं प्रमाद्यति] क्यों प्रमाद करती है। भावार्थ इस प्रकार है कि—कृपासागर हैं सूत्रके कर्ता आचार्य, वे ऐसा कहते हैं कि नाना प्रकारके विकल्प करनेसे साध्यसिद्धि तो नहीं है। कैसा है नाना प्रकारके विकल्प करनेवाला जन ? "अधः अधः प्रपतन्" जैसे जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक अधिक विकल्प करता है, वैसे वैसे अनुभवसे भ्रष्टसे भ्रष्ट होता है। तिस कारणसे "जनः ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं किं न अधिरोहति" [जनः] समस्त संसारी जीवराशि [ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं] निर्विकल्पसे निर्विकल्प अनुभवरूप [किं न अधिरोहति] क्यों नहीं परिणमता है ? कैसा

अनन्त गुण विराजमान, वैसा [**ज्वलितं**] प्रगट हुआ। कैसा प्रगट हुआ ? "मोक्षं कलयत्" [**मोक्षं**] जीवकी जो निःकर्मरूप अवस्था, उस [**कलयत्**] अवस्थारूप परिणमता हुआ। कैसा है मोक्ष ? "अक्षय्यं" आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर है, [**अतुलं**] उपमा रहित है। किस कारणसे ? "बन्धच्छेदात्" [**बन्ध**] ज्ञानावरणादि आठ कर्मके [**छेदात्**] मूल सत्तासे नाशद्वारा। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थं" [**नित्योद्योत**] शाश्वत प्रकाशसे [**स्फुटित**] प्रगट हुआ है [**सहजावस्थं**] अनन्त गुण विराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिसको, ऐसा है। और कैसा है ? "एकान्तशुद्धं" सर्वथा प्रकार शुद्ध है। और कैसा है ? "अत्यन्तगम्भीरधीरं" [**अत्यन्तगम्भीर**] अनन्त गुण विराजमान ऐसा है, [**धीरं**] सर्व काल शाश्वत है। किस कारणसे ? "एकाकारस्वरसभरतः" [**एकाकार**] एकरूप हुए [**स्वरस**] अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यके [**भरतः**] अतिशयके कारण। और कैसा है ? "स्वस्य अचले महिम्नि लीनं" [**स्वस्य अचले महिम्नि**] अपने निष्कम्प प्रतापमें [**लीनं**] मग्नरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षमें आत्मद्रव्य स्वाधीन है, अन्यत्र चतुर्गतिमें जीव पराधीन है। मोक्षका स्वरूप कहा ॥१३-१९२॥



[१०]

सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार

(मन्दाक्रान्ता)

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः॥१-१९३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं ज्ञानपुञ्जः स्फूर्जति" [अयं] यह विद्यमान [ज्ञानपुञ्जः] शुद्ध जीवद्रव्य [स्फूर्जति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर जीवका जैसा शुद्ध स्वरूप है उसे कहते हैं। कैसा है ज्ञानपुञ्ज? "टङ्कोत्कीर्ण-प्रकटमहिमा" [टंकोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप ऐसा है [प्रकट] स्वानुभवगोचर [महिमा] स्वभाव जिसका, ऐसा है। और कैसा है? "स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिः" [स्वरस] शुद्ध ज्ञानचेतनाके [विसर] अनन्त अंशभेदसे [आपूर्ण] सम्पूर्ण ऐसा है [पुण्य] निरावरण ज्योतिःरूप [अचल] निश्चल [अर्चिः] प्रकाशस्वरूप जिसका, ऐसा है। और कैसा है? "शुद्धः शुद्धः" शुद्ध शुद्ध है, अर्थात् दो वार शुद्ध कहनेसे अति ही विशुद्ध है। और कैसा है? "बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः प्रतिपदं दूरीभूतः" [बन्ध] ज्ञाना-वरणादि कर्मपिण्डसे सम्बन्धरूप एक क्षेत्रावगाह, [मोक्ष] सकलकर्मका नाश होनेपर जीवके स्वरूपका प्रगटपना, ऐसे—[प्रक्लृप्तेः] जो दो विकल्प, उनसे [प्रतिपदं] एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यायरूप जहाँ है वहाँ [दूरीभूतः] अति ही भिन्न है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ, द्रव्यस्वरूपके विचारकी अपेक्षा बन्ध ऐसे मुक्त ऐसे विकल्पसे रहित है, द्रव्यका स्वरूप जैसा है वैसा ही है। क्या करता हुआ जीवद्रव्य ऐसा है? "अखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान् सम्यक् प्रलयं नीत्वा" [अखिलान्] गणना करने पर अनन्त हैं ऐसे जो [कर्तृ] 'जीव कर्ता

है' ऐसा विकल्प [भोक्तृ] 'जीव भोक्ता है' ऐसा विकल्प, [आदि भावान्] इनसे लेकर अनन्त भेद उनका [सम्यक्] मूलसे [प्रलयं नीत्वा] विनाशकर। ऐसा कहते हैं ॥१-१९३॥

(अनुष्टुप्)

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः ॥२-१९४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः" [अस्य चितः] चैतन्यमात्र स्वरूप जीवका [कर्तृत्वं] ज्ञानावरणादि कर्मको करे अथवा रागादि परिणामको करे ऐसा [न स्वभावः] सहजका गुण नहीं है; दृष्टान्त कहते हैं—"वेदयितृत्ववत्" जिस प्रकार जीव कर्मका भोक्ता भी नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य कर्मका भोक्ता हो तो कर्ता होवे; सो तो भोक्ता भी नहीं है, इससे कर्ता भी नहीं है। "अयं कर्ता अज्ञानात् एव" [अयं] यह जीव [कर्ता] रागादि-अशुद्ध परिणामको करता है ऐसा भी है सो किस कारणसे ? [अज्ञानात् एव] कर्मजनित भावमें आत्मबुद्धि ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम, उसके कारण जीव कर्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—जीववस्तु रागादिविभावपरिणामका कर्ता है ऐसा जीवका स्वभावगुण नहीं है, परन्तु अशुद्धरूप विभावपरिणति है। "तदभावात् अकारकः" [तदभावात्] मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप विभावपरिणति मिटती है सो उसके मिटनेसे [अकारकः] जीव सर्वथा अकर्ता होता है ॥२-१९४॥

(शिखरिणी)

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ।३-१९५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं जीवः अकर्ता इति स्वरसतः स्थितः" [अयं जीवः] विद्यमान है जो चैतन्यद्रव्य वह [अकर्ता] ज्ञानावरणादिका अथवा रागादि-अशुद्ध-परिणामका कर्ता नहीं है [इति] ऐसा सहज [स्वरसतः स्थितः] स्वभावसे अनादि-निधन ऐसा ही है। कैसा है ? "विशुद्धः" द्रव्यकी अपेक्षा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे

भिन्न है। "स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिच्छुरितभुवनाभोगभवनः" [**स्फुरत्**] प्रकाशरूप ऐसे [**चिज्ज्योतिर्भिः**] चेतनागुणके द्वारा [**छुरित**] प्रतिबिम्बित हैं [**भुवनाभोगभवनः**] अनन्त द्रव्य अपनी अतीत अनागत वर्तमान समस्त पर्यायसहित जिसमें, ऐसा है। "तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बन्धः स्यात्" [**तथापि**] शुद्ध है जीव द्रव्य तो भी [**किल**] निश्चयसे [**इह**] संसार अवस्थामें [**अस्य**] जीवको [**प्रकृतिभिः**] ज्ञानावरणादि कर्मरूप [**यत् असौ बन्धः स्यात्**] जो कुछ बन्ध होता है "सः खलु अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति" [**सः**] जो बन्ध होता है वह [**खलु**] निश्चयसे [**अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति**] मिथ्यात्वरूप विभावपरिणमनशक्तिका कोई ऐसा ही स्वभाव है। कैसा है ? "गहनः" असाध्य है। भावार्थ इस प्रकार है—जीव द्रव्य संसार अवस्थामें विभावरूप मिथ्यात्व, राग-द्वेष-मोह परिणामरूप परिणमा है, इस कारण जैसा परिणमा है वैसे भावोंका कर्ता होता है; अशुद्ध भावोंका कर्ता होता है। अशुद्ध भावोंके मिटनेपर जीवका स्वभाव अकर्ता है ॥३-१९५॥

(अनुष्टुप्)

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥४-१९६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य चितः भोक्तृत्वं स्वभावः न स्मृतः" [**अस्य चितः**] चेतनद्रव्यका, [**भोक्तृत्वं**] ज्ञानावरणादि कर्मके फलका अथवा सुख-दुःखरूप कर्मफलचेतनाका अथवा रागादि अशुद्धपरिणामरूप कर्मचेतनाका भोक्ता जीव है ऐसा [**स्वभावः**] जीव द्रव्यका सहज गुण, ऐसा तो [**न स्मृतः**] गणधरदेवने नहीं कहा है, जीवका भोक्ता स्वभाव नहीं है ऐसा कहा है; दृष्टान्त कहते हैं—"कर्तृत्ववत्" जिस प्रकार जीवद्रव्य कर्मका कर्ता भी नहीं है। "अयं जीवः भोक्ता" यही जीव द्रव्य अपने सुख-दुःखरूप परिणामको भोगता है ऐसा भी है सो किस कारणसे ? "अज्ञानात् एव" अनादिसे कर्मका संयोग है, इसलिए मिथ्यात्व राग द्वेष अशुद्ध विभावरूप परिणमा है, इस कारण भोक्ता है। "तदभावात् अवेदकः" मिथ्यात्वरूप विभावपरिणामका नाश होनेसे जीव द्रव्य साक्षात् अभोक्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीव द्रव्यका अनन्तचतुष्टय स्वरूप है उस प्रकार कर्मका कर्तापन—भोक्तापन स्वरूप नहीं है। कर्मकी उपाधिसे विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है, इसलिए विनाशीक है। उस

विभावपरिणतिके विनाश होनेपर जीव अकर्ता है, अभोक्ता है। आगे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यकर्मका अथवा भावकर्मका कर्ता है, सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं है ऐसा कहते हैं ॥४-१९६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः ।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥५-१९७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां" [निपुणैः] सम्यग्दृष्टि जीवोंको [अज्ञानिता] परद्रव्यमें आत्मबुद्धि ऐसी मिथ्यात्वपरिणति [त्यज्यतां] जिस प्रकार मिटे उस प्रकार सर्वथा मेटने योग्य है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "महसि अचलितैः" शुद्ध चिद्रूपके अनुभवमें अखण्ड धारारूप मग्न हैं। कैसा है शुद्ध चिद्रूपका अनुभव ? "शुद्धैकात्ममये" [शुद्ध] समस्त उपाधिसे रहित ऐसा जो [एकात्म] अकेला जीवद्रव्य [मये] उसके स्वरूप है। और क्या करना है ? "ज्ञानिता आसेव्यतां" शुद्ध वस्तुके अनुभवरूप सम्यक्त्वपरिणतिरूप सर्वकाल रहना उपादेय है। क्या जानकर ऐसा होवे ? "इति एवं नियमं निरूप्य" [इति] जिस प्रकार कहते हैं— [एवं नियमं] ऐसे वस्तुस्वरूप परिणामनके निश्चयको [निरूप्य] अवधार करके । वह वस्तुका स्वरूप कैसा ? "अज्ञानी नित्यं वेदकः भवेत्" [अज्ञानी] मिथ्यादृष्टि जीव [नित्यं] सर्वकाल [वेदकः भवेत्] द्रव्यकर्मका, भावकर्मका भोक्ता होता है ऐसा निश्चय है; मिथ्यात्वका परिणमन ऐसा ही है । कैसा है अज्ञानी ? "प्रकृतिस्वभावनिरतः" [प्रकृति] ज्ञानावरणादि आठ कर्मके [स्वभाव] उदय होनेपर नाना प्रकार चतुर्गतिशरीर रागादिभाव, सुख-दुःखपरिणति इत्यादिमें [निरतः] आपा जान एकत्वबुद्धिरूप परिणमा है। "तु ज्ञानी जातु वेदकः नो भवेत्" [तु] मिथ्यात्वके मिटने पर ऐसा भी है कि [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव [जातु] कदाचित् [वेदकः नो भवेत्] द्रव्यकर्मका, भावकर्मका भोक्ता नहीं होता; ऐसा वस्तुका स्वरूप है। कैसा है ज्ञानी ? "प्रकृतिस्वभावविरतः" [प्रकृति] कर्मके [स्वभाव] उदयके कार्यमें [विरतः] हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवके सम्यक्त्व होनेपर अशुद्धपना मिटा है, इसलिए भोक्ता नहीं है ॥५-१९७॥

(वसन्ततिलका)

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ।।६-१९८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी कर्म न करोति च न वेदयते" [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव [**कर्म न करोति**] रागादि अशुद्ध परिणामोंका कर्ता नहीं है । [**च**] और [**न वेदयते**] सुख दुःखसे लेकर अशुद्ध परिणामोंका भोक्ता नहीं है । कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "किल अयं तत्स्वभावं इति केवलं जानाति" [**किल**] निश्चयसे [**अयं**] जो शरीर, भोग, रागादि, सुख दुःख इत्यादि समस्त [**तत्स्वभावं**] कर्मका उदय हैं, जीवका स्वरूप नहीं है–[**इति केवलं जानाति**] सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा जानता है, परन्तु स्वामित्वरूप नहीं परिणमता है । "हि सः मुक्तः एव" [**हि**] तिस कारणसे [**सः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**मुक्तः एव**] जैसे निर्विकार सिद्ध हैं वैसा है । कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "परं जानन्" जितनी है पर द्रव्यकी सामग्री उसका ज्ञायकमात्र है, मिथ्यादृष्टिके समान स्वामीरूप नहीं है । और कैसा है ? "शुद्धस्वभावनियतः" [**शुद्धस्वभाव**] शुद्ध चैतन्यवस्तुमें [**नियतः**] आस्वादरूप मग्न है । किस कारणसे ? "करणवेदनयोः अभावात्" [**करण**] कर्मका करना, [**वेदन**] कर्मका भोग—ऐसे भाव [**अभावात्**] सम्यग्दृष्टि जीवके मिटे हैं इस कारण । भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व संसार है, मिथ्यात्वके मिटनेपर जीव सिद्धसदृश है ।।६-१९८।।

(अनुष्टुप्)

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तेषां मोक्षः न" [**तेषां**] ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंको [**न मोक्षः**] कर्मका विनाश, शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति नहीं है । कैसे हैं वे जीव ? "मुमुक्षतां अपि" जैनमताश्रित हैं, बहुत पढ़े हैं, द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्षके अभिलाषी हैं तो भी उन्हें मोक्ष नहीं है । किनके समान ? "सामान्यजनवत्" जिस प्रकार तापस, योगी, भरड़ा इत्यादि जीवोंको मोक्ष नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई

जानेगा कि जैनमतआश्रित हैं, कुछ विमेष होगा, सो विशेष तो कुछ नहीं है। कैसे हैं वे जीव ? "तु ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति" [तु] जिस कारण ऐसा है कि [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [आत्मानं] जीवद्रव्यको [कर्तारं पश्यन्ति] वह ज्ञानावरणादि कर्मको रागादि अशुद्ध परिणामको करता है ऐसा जीवद्रव्यका स्वभाव है—ऐसा मानते हैं, प्रतीति करते हैं, आस्वादते हैं। और कैसे हैं ? "तमसा ततः" मिथ्यात्वभाव ऐसे अन्धकारसे व्याप्त हैं, अन्ध हुए हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि वे महामिथ्यादृष्टि हैं जो जीवका स्वभाव कर्तारूप मानते हैं; कारण कि कर्तापन जीवका स्वभाव नहीं है, विभाव-रूप अशुद्ध परिणति है; सो भी परके संयोगसे है, विनाशीक है ॥७-१९९॥

(अनुष्टुप्)

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८-२००॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् परद्रव्यात्मतत्त्वयोः कर्तृता कुतः" [तत्] तिस कारणसे [परद्रव्य] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलका पिण्ड और [आत्मतत्त्वयोः] शुद्ध जीवद्रव्य, उनमें [कर्तृता] जीवद्रव्य पुद्गलकर्मका कर्ता, पुद्गलद्रव्य जीवभावका कर्ता—ऐसा सम्बन्ध [कुतः] कैसे होवे ? अपि तु कुछ नहीं होता। किस कारणसे ? "कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे" [कर्तृ] जीव कर्ता, [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्म—ऐसा है जो [सम्बन्ध] दो द्रव्योंका एक सम्बन्ध, ऐसा [अभावे] द्रव्यका स्वभाव नहीं है तिस कारण। वह भी किस कारणसे ? "सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति" [सर्वः] जो कोई वस्तु हैं वह [अपि] यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि [सम्बन्धः नास्ति] अपने अपने स्वरूप है, कोई द्रव्य किसी द्रव्यके साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है, ऐसा वस्तुका स्वरूप है। इस कारण जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं है ॥८-२००॥

(वसन्ततिलका)

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः ।
तत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥९-२०१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति" [तत्] तिस कारणसे [वस्तुभेदे] जीवद्रव्य चेतनस्वरूप, पुद्‌गलद्रव्य अचेतनस्वरूप–ऐसे भेदको अनुभवते हुए [कर्तृकर्मघटना] जीवद्रव्य कर्ता, पुद्‌गलपिण्ड कर्म–ऐसा व्यवहार [न अस्ति] सर्वथा नहीं है। तो कैसा है ? "मुनयः जनाः तत्त्वं अकर्तृ पश्यन्तु" [मुनयः जनाः] सम्यग्दृष्टि हैं जो जीव वे [तत्त्वं] जीवस्वरूपको [अकर्तृ पश्यन्तु] 'कर्ता नहीं है' ऐसा अनुभवो–आस्वादो। किस कारणसे ? "यतः एकस्य वस्तुनः अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्बन्धः निषिद्धः एव" [यतः] जिस कारणसे [एकस्य वस्तुनः] शुद्ध जीवद्रव्यका [अन्यतरेण सार्द्धं] पुद्‌गल द्रव्यके साथ [सकलः अपि] द्रव्यरूप, गुणरूप अथवा पर्यायरूप [सम्बन्धः] एकत्वपना [निषिद्धः एव] अतीत-अनागत-वर्तमान कालमें वर्जा है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिनिधन जो द्रव्य जैसा है वह वैसा ही है, अन्य द्रव्यके साथ नहीं मिलता है, इसलिए जीवद्रव्य पुद्‌गलकर्मका अकर्ता है ॥९-२०१॥

(वसन्ततिलका)

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो वत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥१०-२०२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"वत ते वराकाः कर्म कुर्वन्ति [वत] दुःखके साथ कहते हैं कि, [ते वराकाः] ऐसी जो मिथ्यादृष्टि जीवराशि [कर्म कुर्वन्ति] मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणति करती हैं। कैसी है "अज्ञानमग्नमहसः" [अज्ञान] मिथ्यात्वरूप भावके कारण [मग्न] आच्छादा गया है [महसः] शुद्ध चैतन्यप्रकाश जिसका, ऐसी है; "तु ये इमं स्वभावनियमं न कलयन्ति" [तु] क्योंकि [ये] जो, [इमं स्वभाव-नियमं] जीवद्रव्य ज्ञानावरणादि पुद्‌गलपिण्डका कर्ता नहीं है—ऐसे वस्तुस्वभावको [न कलयन्ति] स्वानुभव प्रत्यक्षरूपसे नहीं अनुभवती है। भावार्थ इस प्रकार है कि—मिथ्यादृष्टि जीवराशि शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है, इसलिए पर्यायरत है, इसलिए मिथ्यात्वरागद्वेष अशुद्ध–परिणामरूप परिणमती है। "ततः भावकर्मकर्ता चेतन एव स्वयं भवति न अन्यः" [ततः] तिस कारण [भावकर्म] मिथ्यात्वरागद्वेष–अशुद्ध चेतनारूप परिणामका, [कर्ता चेतन एव स्वयं भवति] व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है

ऐसा जीवद्रव्य, आप कर्ता होता है, [न अन्यः] पुद्गलकर्म कर्ता नहीं होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ जैसे अशुद्ध भावरूप परिणमता है वैसे भावोंका कर्ता होता है ऐसा सिद्धान्त है ॥१०-२०२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥११-२०३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म" [ततः] तिस कारणसे [अस्य] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामके [जीवः कर्ता] जीव द्रव्य उस कालमें व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है [च] और [तत्] रागादि अशुद्ध परिणमन [चिदनुगं] अशुद्धरूप है, चेतनारूप है, इसलिए [जीवस्य एव कर्म] उस कालमें व्याप्य-व्यापकरूप जीव द्रव्य आप परिणमता है, इसलिए जीवका किया है । किस कारणसे ? "यत् पुद्गलः ज्ञाता न" [यत्] जिस कारणसे [पुद्गलः ज्ञाता न] पुद्गल द्रव्य चेतनारूप नहीं है; रागादि परिणाम चेतनारूप है, इसलिए जीवका किया है । कहा है भाव उसे गाढ़ा-पक्का करते हैं—"कर्म अकृतं न" [कर्म] रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणाम [अकृतं न] अनादिनिधन आकाश द्रव्यके समान स्वयंसिद्ध है ऐसा भी नहीं है, किसीके द्वारा किया हुआ होता है । ऐसा है किस कारणसे ? "कार्यत्वात्" कारण कि घटके समान उपजता है, विनशता है । इसलिए प्रतीति ऐसी जो करतूतिरूप है । [च] तथा "तत् जीव-प्रकृत्योः द्वयोः कृतिः न" [तत्] रागादि अशुद्ध चेतन परिणमन [जीव] चेतनद्रव्य और [प्रकृत्योः] पुद्गलद्रव्य ऐसे [द्वयोः] दो द्रव्योंकी [कृतिः न] करतूति नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि जीव तथा कर्मके मिलने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम होता है, इसलिए दोनों द्रव्य कर्ता हैं । समाधान इस प्रकार है कि दोनों द्रव्य कर्ता नहीं हैं, कारण कि रागादि अशुद्ध परिणामोंका बाह्य कारण—निमित्तमात्र पुद्गल कर्मका उदय है; अन्तरंग कारण व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य विभावरूप परिणमता है; इसलिए जीवका कर्तापना घटित होता

है, पुद्गल कर्मका कर्तापना घटित नहीं होता है; कारण कि "अज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्य-फलभुग्भावानुषङ्गात्" [अज्ञायाः] अचेतनद्रव्यरूप है जो [प्रकृतेः] ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्म, उसके [स्वकार्य] अपनी करतूतिके [फल] सुख-दुःखके [भुग्भाव] भोक्तापनेका [अनुषङ्गात्] प्रसंग प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो द्रव्य जिस भावका कर्ता होता है वह उस द्रव्यका भोक्ता भी होता है। ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव-कर्म दोनोंने मिलकर किया होवे तो दोनों भोक्ता होंगे सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं। कारण कि जीव द्रव्य चेतन है तिस कारण सुख दुःखका भोक्ता होवे ऐसा घटित होता है, पुद्गल द्रव्य अचेतन होनेसे सुख दुःखका भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतन परिणमनका अकेला संसारी जीव कर्ता है, भोक्ता भी है। इसी अर्थको और गाढ़ा-पक्का करते हैं—"एकस्याः प्रकृतेः कृतिः न" [एकस्याः प्रकृतेः] अकेले पुद्गलकर्मकी [कृतिः न] करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम अकेले पुद्गलकर्मका किया है। उत्तर ऐसा है कि ऐसा भी नहीं है; कारण कि "अचित्त्वलसनात्" अनुभव ऐसा आता है कि पुद्गल-कर्म अचेतन द्रव्य है, रागादि परिणाम अशुद्ध चेतनारूप है; इसलिए अचेतन द्रव्यका परिणाम अचेतनरूप होता है, चेतनरूप नहीं होता। इस कारण रागादि अशुद्ध परिणाम-का कर्ता संसारी जीव है, भोक्ता भी है ॥११-२०३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता चैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥१२-२०४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"वस्तुस्थितिः स्तूयते" [वस्तु] जीवद्रव्यके [स्थितिः] स्वभावकी मर्यादा [स्तूयते] जैसी है वैसी कहते हैं। कैसी है ? "स्याद्वादप्रतिबन्ध-लब्धविजया" [स्याद्वाद] जीवकर्ता है, अकर्ता भी है—ऐसा अनेकान्तपना, उसकी [प्रतिबन्ध] सावधानरूपसे की गई स्थापना, उससे [लब्ध] पाया है [विजया] जीतपना जिसने, ऐसी है। किस निमित्त कहते हैं ? "तेषां बोधस्य संशुद्धये" [तेषां] जो जीवको सर्वथा अकर्ता कहते हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंकी [बोधस्य संशुद्धये] विपरीत बुद्धिके छुड़ानेके निमित्त जीवका स्वरूप साधते हैं। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि ?

ऐसा जीवद्रव्य, आप कर्ता होता है, [न अन्यः] पुद्गलकर्म कर्ता नहीं होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ जैसे अशुद्ध भावरूप परिणमता है वैसे भावोंका कर्ता होता है ऐसा सिद्धान्त है ॥१०-२०२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥११-२०३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म" [ततः] तिस कारणसे [अस्य] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामके [जीवः कर्ता] जीव द्रव्य उस कालमें व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है [च] और [तत्] रागादि अशुद्ध परिणमन [चिदनुगं] अशुद्धरूप है, चेतनारूप है, इसलिए [जीवस्य एव कर्म] उस कालमें व्याप्य-व्यापकरूप जीव द्रव्य आप परिणमता है, इसलिए जीवका किया है। किस कारणसे ? "यत् पुद्गलः ज्ञाता न" [यत्] जिस कारणसे [पुद्गलः ज्ञाता न] पुद्गल द्रव्य चेतनारूप नहीं है; रागादि परिणाम चेतनारूप है, इसलिए जीवका किया है। कहा है भाव उसे गाढ़ा-पक्का करते हैं—"कर्म अकृतं न" [कर्म] रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणाम [अकृतं न] अनादिनिधन आकाश द्रव्यके समान स्वयंसिद्ध है ऐसा भी नहीं है, किसीके द्वारा किया हुआ होता है। ऐसा है किस कारणसे ? "कार्यत्वात्" कारण कि घटके समान उपजता है, विनशता है। इसलिए प्रतीति ऐसी जो करतूतिरूप है। [च] तथा "तत् जीव-प्रकृत्योः द्वयोः कृतिः न" [तत्] रागादि अशुद्ध चेतन परिणमन [जीव] चेतनद्रव्य और [प्रकृत्योः] पुद्गलद्रव्य ऐसे [द्वयोः] दो द्रव्योंकी [कृतिः न] करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि जीव तथा कर्मके मिलने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम होता है, इसलिए दोनों द्रव्य कर्ता हैं। समाधान इस प्रकार है कि दोनों [illegible] कर्ता [illegible] हैं, कारण कि रागादि अशुद्ध परिणामोंका बाह्य कारण-नि[illegible] [illegible]य है; अन्तरंग कारण व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य [illegible] वह [illegible] कर्तापना घटित होता

है, पुद्गल कर्मका कर्तापना घटित नहीं होता है; कारण कि "अज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्" [अज्ञायाः] अचेतनद्रव्यरूप है जो [प्रकृतेः] ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्म, उसके [स्वकार्य] अपनी करतूतिके [फल] सुख-दुःखके [भुग्भाव] भोक्तापनेका [अनुषङ्गात्] प्रसंग प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो द्रव्य जिस भावका कर्ता होता है वह उस द्रव्यका भोक्ता भी होता है। ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव–कर्म दोनोंने मिलकर किया होवे तो दोनों भोक्ता होंगे सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं। कारण कि जीव द्रव्य चेतन है तिस कारण सुख दुःखका भोक्ता होवे ऐसा घटित होता है, पुद्गल द्रव्य अचेतन होनेसे सुख दुःखका भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतन परिणमनका अकेला संसारी जीव कर्ता है, भोक्ता भी है। इसी अर्थको और गाढ़ा-पक्का करते हैं—"एकस्याः प्रकृतेः कृतिः न" [एकस्याः प्रकृतेः] अकेले पुद्गलकर्मकी [कृतिः न] करतूति नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम अकेले पुद्गलकर्मका किया है। उत्तर ऐसा है कि ऐसा भी नहीं है; कारण कि "अचित्त्वलसनात्" अनुभव ऐसा आता है कि पुद्गल-कर्म अचेतन द्रव्य है, रागादि परिणाम अशुद्ध चेतनारूप है; इसलिए अचेतन द्रव्यका परिणाम अचेतनरूप होता है, चेतनरूप नहीं होता। इस कारण रागादि अशुद्ध परिणाम-का कर्ता संसारी जीव है, भोक्ता भी है ॥११-२०३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता चैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥१२-२०४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"वस्तुस्थितिः स्तूयते" [वस्तु] जीवद्रव्यके [स्थितिः] स्वभावकी मर्यादा [स्तूयते] जैसी है वैसी कहते हैं। कैसी है ? "स्याद्वादप्रतिवन्धलव्धविजया" [स्याद्वाद] जीवकर्ता है, अकर्ता भी है—ऐसा अनेकान्तपना, उसकी [प्रतिवन्ध] सावधानरूपसे की गई स्थापना, उससे [लव्ध] पाया है [विजया] जीतपना जिसने, ऐसी है। किस निमित्त कहते हैं ? "तेषां वोधस्य संशुद्धये" [तेषां] जो जीवको सर्वथा अकर्ता कहते हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंकी [वोधस्य संशुद्धये] विपरीत वुद्धिके छुड़ानेके निमित्त जीवका स्वरूप साधते हैं। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि ?

"उद्धतमोहमुद्रितधियां" [उद्धत] तीव्र [illegible] [मोह] [illegible] [मुद्रित]
आच्छादित है [धियां] [illegible] । और
कैसी है ? "एष आत्मा कथञ्चित् कर्ता इति [illegible] कोपिता" [एषः आत्मा]
चेतनास्वरूपमात्र जीवद्रव्य [कथञ्चित् कर्ता] किसी [illegible]
[इति] इस प्रकार [कैश्चित् श्रुतिः] जिनके [illegible]
[कोपिता] अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता है । कैसा [illegible] है ? "[illegible]" [illegible]
गाढ़ा है, अमिट है । जिसने ऐसा मानते हैं—"आत्मनः कर्तृतां [illegible]" [आत्मनः]
जीवका [कर्तृतां] अपने रागादि अशुद्ध भावोंका कर्तापना [क्षिप्त्वा] [illegible]
(न मानकर) क्रोध करते हैं । और कैसा मानते हैं—"कर्म एव कर्तृ इति प्रवितर्क्य"
[कर्म एव] अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [कर्तृ] रागादि अशुद्ध परिणामोंका अपने-
में व्याप्य-व्यापक होकर कर्ता है [इति प्रवितर्क्य] ऐसा [illegible] करते हैं—प्रतीति करते
हैं । सो ऐसी प्रतीति करते हुए कैसे हैं ? "हतकैः" अपने घातक हैं, क्योंकि मिथ्या-
दृष्टि हैं ॥१२-२०४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादधः ।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥१३-२०५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा था कि स्याद्वाद स्वरूपके द्वारा जीवका स्वरूप कहेंगे । उसका उत्तर है—"अमी आर्हताः अपि पुरुषं अकर्तारं मा स्पृशन्तु" [अमी] विद्यमान जो [आर्हताः अपि] जैनोक्त स्याद्वादस्वरूपको अंगीकार करते हैं ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे भी [पुरुषं] जीवद्रव्यको [अकर्तारं] रागादि–अशुद्ध परिणामोंका सर्वथा कर्ता नहीं है ऐसा [मा स्पृशन्तु] मत अंगीकार करो । किनके समान ? "सांख्या इव" जिस प्रकार सांख्य मतवाले जीवको सर्वथा अकर्ता मानते हैं उसी प्रकार जैन भी सर्वथा अकर्ता मत मानो । जैसा मानने योग्य है वैसा कहते हैं—"सदा तं भेदावबोधात् अधः कर्तारं किल कलयन्तु तु ऊर्ध्वं एनं च्युतकर्तृभावं पश्यन्तु" [सदा] सर्व काल द्रव्यका स्वरूप ऐसा है कि [तं] जीवद्रव्यको, [भेदावबोधात् अधः] शुद्ध-स्वरूप परिणमनरूप सम्यक्त्वसे भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि होता हुआ मोह राग द्वेषरूप परिणमता

है उतने काल, [कर्तारं किल कलयन्तु] मोह, राग, द्वेषरूप अशुद्धचेतन परिणामका कर्ता जीव है ऐसा अवश्य मानो–प्रतीति करो। [तु] वही जीव [ऊर्ध्वं] जब मिथ्यात्व परिणाम छूटकर अपने शुद्ध स्वरूप सम्यक्त्व भावरूप परिणमता है तब [एनं च्युतकर्तृ-भावं] छोड़ा है रागादि अशुद्ध भावोंका कर्तापन जिसने ऐसी [पश्यन्तु] श्रद्धा करो–प्रतीति करो–ऐसा अनुभव करो। भावार्थ इस प्रकार है कि—जिस प्रकार जीवका ज्ञानगुण स्वभाव है, वह ज्ञानगुण संसार अवस्था अथवा मोक्ष अवस्थामें नहीं छूटता; उस प्रकार रागादिपना जीवका स्वभाव नहीं है तथापि संसार अवस्थामें जब तक कर्म का संयोग है तब तक मोह, राग, द्वेषरूप अशुद्धपनेसे विभावरूप जीव परिणमता है और तब तक कर्ता है। जीवके सम्यक्त्वगुणके परिणमनके बाद ऐसा जानना—"उद्धतबोध-धामनियतं" [उद्धत] सकल ज्ञेय पदार्थको जाननेके लिए उतावले ऐसे [बोधधाम] ज्ञानका प्रताप है [नियतं] सर्वस्व जिसका ऐसा है। और कैसा है? "स्वयं प्रत्यक्षं" आपको अपने आप प्रगट हुआ है। और कैसा है? "अचलं" चार गतिके भ्रमणसे रहित हुआ है। और कैसा है? "ज्ञातारं" ज्ञानमात्र स्वरूप है। और कैसा है? "परं एकं" रागादि अशुद्ध परिणतिसे रहित शुद्ध वस्तुमात्र है ॥१३-२०५॥

(मालिनी)

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ॥१४-२०६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रोः विभेदं विधत्ते" [इह] साम्प्रत विद्यमान है ऐसा [एकः] बौद्धमतको माननेवाला कोई जीव [निज-मनसि] अपने ज्ञानमें [कर्तृ-भोक्त्रोः] कर्तापना–भोक्तापनामें [विभेदं] भेद [विधत्ते] करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—वह ऐसा कहता है कि क्रियाका कर्ता कोई अन्य है, भोक्ता कोई अन्य है। ऐसा क्यों मानता है? "इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा" [इदं आत्मतत्त्वं] अनादिनिधन है जो चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य, उसको [क्षणिकं कल्प-यित्वा] क्षणिक मानता है अर्थात् जिस प्रकार अपने नेत्ररोगके कारण कोई श्वेत शंखको पीला देखता है उसी प्रकार अनादिनिधन जीवद्रव्यको मिथ्या भ्रान्तिके कारण ऐसा मानता है कि एक समयमात्रमें पूर्वका जीव मूलसे विनस जाता है, अन्य नया जीव

निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८-२१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्डका कर्ता जीव है कि नहीं ? उत्तर इस प्रकार है कि—कहनेको तो है, वस्तु-स्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं है। ऐसा कहते हैं—"व्यावहारिकदृशा एव केवलं" झूठा व्यवहारदृष्टिसे ही "कर्तृ" कर्ता "च" तथा "कर्म" किया गया कार्य "विभिन्नं इष्यते" भिन्न-भिन्न हैं। जीव ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मका कर्ता ऐसा कहनेके लिए सत्य है; कारण कि युक्ति ऐसी कि रागादि अशुद्ध परिणामोंको जीव करता है, रागादि अशुद्ध परिणामोंके होते समय ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल द्रव्य परिणमता है, इस कारण कहनेके लिए ऐसा है कि ज्ञानावरणादि कर्म जीवने किये। स्वरूपका विचार करने पर ऐसा कहना झूठा है; कारण कि "यदि निश्चयेन चिन्त्यते" [यदि] जो [**निश्चयेन**] सच्ची व्यवहार दृष्टिसे [**चिन्त्यते**] देखा जाय, क्या देखा जाय ? "वस्तु" स्वद्रव्य परिणाम परद्रव्य परिणामरूप वस्तुका स्वरूप, तो "सदा एव कर्तृ कर्म एकं इष्यते" [**सदा एव**] सर्व ही काल [**कर्तृ**] परिणमता है जो द्रव्य और [**कर्म**] द्रव्यका परिणाम [**एकं इष्यते**] एक है अर्थात् कोई जीव अथवा पुद्गल द्रव्य अपने परिणामोंके साथ व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है; वही कर्म है, क्योंकि परिणाम उस द्रव्यके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है; ऐसा [**इष्यते**] विचार करने पर घटित होता है–अनुभवमें आता है। अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्य कर्ता, अन्य द्रव्यका परिणाम अन्य द्रव्यका कर्म–ऐसा तो अनुभवमें घटता नहीं; कारण कि दो द्रव्योंका व्याप्य-व्यापकपना नहीं है ॥१८-२१०॥

(नर्दटक)

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ।१९-२११।*

---

* पण्डित श्री राजमलजीकी टीकामें आत्मख्यातिका यह श्लोक अनुवाद करनेसे रह गया है, अतः हिन्दी समयसारके आधारसे उक्त श्लोक अर्थ सहित यहां दिया गया है।

श्लोकार्थ—"ननु किल" वास्तवमें "परिणामः एव" परिणाम ही "विनिश्चयतः" निश्चयसे "कर्म" कर्म है, और "सः परिणामिनः एव भवेत्, अपरस्य न भवति" परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामीका ही होता है, अन्यका नहीं (क्योंकि परिणाम अपने अपने द्रव्यके आश्रित हैं, अन्यके परिणामका अन्य आश्रय नहीं होता); और "कर्म कर्तृशून्यं इह न भवति" कर्म कर्ताके विना नहीं होता, "च" तथा "वस्तुनः एकतया स्थितिः इह न" वस्तुकी एकरूप (कूटस्थ) स्थिति नहीं होती (क्योंकि वस्तु द्रव्य पर्याय स्वरूप होनेसे सर्वथा नित्यत्व बाधा सहित है); "ततः" इसलिए "तत् एव कर्तृ भवतु" वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्मका कर्ता है (यह निश्चित सिद्धान्त है) ॥१९-२११॥

(पृथ्वी)

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥२०-२१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जीवका स्वभाव ऐसा है कि सकल ज्ञेयको जानता है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा जानेगा कि ज्ञेय वस्तुको जानते हुए जीवके अशुद्धपना घटित होता है। उसका समाधान ऐसा है कि अशुद्धपना नहीं घटित होता है, जीव वस्तुका ऐसा ही स्वभाव है जो समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है। यहाँ से लेकर ऐसा भाव कहते हैं—"इह स्वभावचलनाकुलः मोहितः किं क्लिश्यते" [इह] जीव समस्त ज्ञेयको जानता है ऐसा देखकर [स्वभाव] जीवका शुद्ध स्वरूप, उससे [चलन] स्खलितपना जानकर [आकुलः] खेद-खिन्न हुआ मिथ्यादृष्टि जीव [मोहितः] मिथ्यात्वरूप अज्ञानपनाके अधीन हो [किं क्लिश्यते] क्यों खेद-खिन्न होता है ? कारण कि "यतः स्वभावनियतं सकलं एव वस्तु इष्यते" [यतः] जिस कारण [सकलं एव वस्तु] जो कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य इत्यादि है वह सब [स्वभावनियतं] नियमसे अपने स्वरूप है ऐसा [इष्यते] अनुभवगोचर होता है। यही अर्थ प्रगट करके कहते हैं—"यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं वहिर्लुठति" [यद्यपि] यद्यपि प्रत्यक्षरूपसे ऐसा है कि [स्फुटत्] सदा काल प्रगट है [अनन्तशक्तिः] अविनश्वर चेतनाशक्ति जिसकी ऐसा जीवद्रव्य [स्वयं वहिः लुठति] स्वयं समस्त ज्ञेयको जानकर ज्ञेयाकाररूप परिणमता है—ऐसा जीवका

स्वभाव है, "तथापि अन्यवस्त्वन्तरं" [तथापि] तो भी [अन्यवस्त्वन्तरं] एक कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य "अपरवस्तुनः न विशति" किसी अन्य द्रव्यमें प्रवेश नहीं करता है; वस्तुस्वभाव ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है ऐसा तो स्वभाव है, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता है, ज्ञेय भी ज्ञान द्रव्यरूप नहीं परिणमता है—ऐसी वस्तुकी मर्यादा है ॥२०-२१२॥

(रथोद्धता)

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥२१-२१३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अर्थ कहा था उसे गाढ़ा करते हैं—"येन इह एकं वस्तु अन्यवस्तुनः न" [येन] जिस कारणसे [इह] छह द्रव्योंमें कोई [एकं वस्तु] जीवद्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य सत्तारूप विद्यमान है वह [अन्यवस्तुनः न] [illegible] नहीं मिलता ऐसी द्रव्योंके स्वभावकी मर्यादा है। "तेन खलु वस्तु [illegible]" [तेन] जिस कारणसे [खलु] निश्चयसे [वस्तु] जो कोई द्रव्य [तत् तत्] [illegible] है—जिस प्रकार है उसी प्रकार है, "अयं निश्चयः" ऐसा तो [illegible] कहा है, अनुभवगोचर भी होता है। "कः अपरः बहिः लुठन् अपि [illegible] किं करोति" [कः अपरः] ऐसा कौन द्रव्य है जो [बहिः लुठन् अपि] यद्यपि [illegible] है तो भी [अपरस्य किं करोति] ज्ञेय वस्तुके साथ सम्बन्ध कर [illegible] नहीं कर सके। भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुस्वरूपकी [illegible] कोई द्रव्य किसी द्रव्यके साथ एकरूप नहीं होता है। इसके [illegible] ज्ञेय वस्तुको जाने ऐसा है तो रहो तो भी धोखा तो कुछ [illegible] जानता हुआ अपने स्वरूप है ॥२१-२१३॥

(रथोद्धता)

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम् ।

व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२२-२१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कोई आशंका करता है कि जैन सिद्धान्तमें भी ऐसा कहा है कि जीव ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मको करता है, भोगता है। उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहारसे कहनेको है। द्रव्यके स्वरूपका विचार करने पर परद्रव्यका कर्ता जीव नहीं है। "तु यत् वस्तु स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः किञ्चन अपि कुरुते" [तु] ऐसी भी कहावत है कि [यत् वस्तु] जो कोई चेतनालक्षण जीवद्रव्य [**स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः**] अपनी परिणाम शक्तिसे ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है ऐसे पुद्गल द्रव्यका [**किञ्चन अपि कुरुते**] कुछ करता है ऐसा कहना, "तत् व्यावहारिकदृशा" [तत्] जो कुछ ऐसा अभिप्राय है वह सब [व्यावहारिकदृशा] झूठी व्यवहारदृष्टिसे है। "निश्चयात् किं अपि नास्ति इह मतं" [निश्चयात्] वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर [किमपि नास्ति] ऐसा विचार—ऐसा अभिप्राय कुछ नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कुछ ही वात नहीं, मूलसे झूठ है [इह मतं] ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ ॥२२-२१४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः।२३-२१५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जनाः तत्त्वात् किं च्यवन्ते" [जनाः] समस्त संसारी जीव [तत्त्वात्] जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेयको जानती है ऐसे अनुभवसे [किं च्यवन्ते] क्यों भ्रष्ट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुका स्वरूप तो प्रगट है, भ्रम क्यों करते हैं। कैसे हैं जन ? "द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः" [द्रव्यान्तर] समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है जीव, इससे [चुम्बन] अशुद्ध हुआ है जीवद्रव्य ऐसा जानकर [आकुलधियः] ज्ञेय वस्तुका जानपना कैसे छूटे, जिसके छूटनेसे जीवद्रव्य शुद्ध होवे ऐसी हुई है बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। "तु" उसका समाधान ऐसा है कि "यत् ज्ञानं ज्ञेयं अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदयः" [यत्] जो ऐसा है कि [ज्ञानं ज्ञेयं अवैति] ज्ञान ज्ञेयको जानता है ऐसा प्रगट है [तत् अयं] सो यह [शुद्धस्वभावोदयः] शुद्ध जीव वस्तुका स्वरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस-

ज्योत्स्नारूप नहीं होती। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैलती है, समस्त भूमि श्वेत होती है तथापि ज्योत्स्नाका भूमिका सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है तथापि ज्ञानका ज्ञेयका सम्बन्ध नहीं है। ऐसा वस्तुका स्वभाव है। ऐसा कोई नहीं माने उसके प्रति युक्तिके द्वारा घटित करते हैं—"शुद्धद्रव्यस्वरस-भवनात्" शुद्ध द्रव्य अपने अपने स्वभावमें रहता है तो "स्वभावस्य शेषं किं" [स्वभावस्य] सत्तामात्र वस्तुका [शेषं किं] क्या बचा ? भावार्थ इस प्रकार है कि सत्तामात्र वस्तु निर्विभाग एकरूप है, जिसके दो भाग होते नहीं। "यदि वा" जो कभी "अन्यद्रव्यं भवति" अनादिनिधन सत्तारूप वस्तु अन्य सत्तारूप होवे तो "तस्य स्वभावः किं स्यात्" [तस्य] पहले साधी हुई सत्तारूप वस्तुका [स्वभावः किं स्यात्] जो पूर्वका सत्त्व अन्य सत्त्वरूप होवे तो पूर्व सत्तामांहेका क्या बचा ? अपि तु पूर्व सत्ताका विनाश सिद्ध होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य चेतना सत्तारूप है, निर्विभाग है सो चेतना सत्ता जो कभी पुद्गल द्रव्य—अचेतनारूप हो जाय तो चेतनासत्ताका विनाश होना कौन मेट सकता है ? सो वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नहीं है, इसलिए जो द्रव्य जैसा है जिस प्रकार है वैसा ही है अन्यथा होता नहीं। इसलिए जीवका ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है तो जानो तथापि जीव अपने स्वरूप है ॥२४-२१६॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः।२५-२१७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् रागद्वेषद्वयं तावत् उदयते" [एतत्] विद्यमान [राग] इष्टमें अभिलाष [द्वेष] अनिष्टमें उद्वेग ऐसे [द्वयं] दो जातिके अशुद्ध परिणाम [तावत् उदयते] तब तक होते हैं "यावत् ज्ञानं ज्ञानं न भवति" [यावत्] जब तक [ज्ञानं] जीवद्रव्य [ज्ञानं न भवति] अपने शुद्धस्वरूपके अनुभवरूप नहीं परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने काल तक जीव मिथ्यादृष्टि है उतने काल तक राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणमन नहीं मिटता। "तथा बोध्यं बोध्यतां यावत् न याति" [तथा] तथा [बोध्यं] ज्ञानावरणादि कर्म अथवा रागादि अशुद्ध परिणाम [बोध्यतां यावत् न याति] ज्ञेयमात्र बुद्धिको नहीं प्राप्त होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञाना-

द्रव्य विद्यमान है वैसे राग-द्वेष कोई द्रव्य नहीं, जीवकी विभाव परिणति है। वही जीव जो अपने स्वभावरूप परिणमे तो राग द्वेष सर्वथा मिटें। ऐसा होना सुगम है कुछ मुश्किल नहीं है—अशुद्ध परिणति मिटती है शुद्ध परिणति होती है ।।२६-२१८।।

(शालिनी)

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।।२७-२१६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानता है कि जीवका स्वभाव राग-द्वेषरूप परिणमनेका नहीं है, पर द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर भोगसामग्री वलात्कार जीवको राग-द्वेषरूप परिणमाते हैं सो ऐसा तो नहीं, जीवकी विभाव परिणाम शक्ति जीवमें है, इसलिए मिथ्यात्वके भ्रमरूप परिणमता हुआ राग-द्वेषरूप जीव द्रव्य आप परिणमता है, पर द्रव्यका कुछ सहारा नहीं है। ऐसा कहते हैं—"किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं तत्त्वदृष्ट्या रागद्वेषोत्पादकं न वीक्ष्यते" [**किञ्चन अपि अन्यद्रव्यं**] आठ कर्मरूप अथवा शरीर मन वचन नोकर्मरूप अथवा वाह्य भोग-सामग्री इत्यादिरूप है जितना पर द्रव्य वह [**तत्त्वदृष्ट्या**] द्रव्यके स्वरूपको देखते हुए सांची दृष्टिसे [**रागद्वेषोत्पादकं**] अशुद्ध चेतनारूप हैं जो राग-द्वेषपरिणाम उनको उत्पन्न करनेमें समर्थ [**न वीक्ष्यते**] नहीं दिखलाई देता। कहे हुए अर्थको गाढ़ा—दृढ़ करते हैं—"यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिःस्वस्वभावेन अन्तः चकास्ति" [**यस्मात्**] जिस कारणसे [**सर्वद्रव्य**] जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाशका [**उत्पत्तिः**] अखण्ड धारारूप परिणाम [**स्वस्वभावेन**] अपने-अपने स्वरूपसे है [**अन्तः चकास्ति**] ऐसा ही अनुभवमें निश्चित होता है और ऐसे ही वस्तु सधती है, अन्यथा विपरीत है। कैसी है परिणति ? "अत्यन्तं व्यक्ता" अति ही प्रगट है ।।२७-२१६।।

(मालिनी)

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।

स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥२८-२२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जीव द्रव्य संसार अवस्थामें राग द्वेष मोह अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है सो वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर जीवका दोष है, पुद्गल द्रव्यका दोष कुछ नहीं है, कारण कि जीव द्रव्य अपने विभाव मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ अपने अज्ञानपनाको लिए हुए राग द्वेष मोहरूप आप परिणमता है; जो कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप परिणवे, राग द्वेष मोहरूप न परिणवे तो पुद्गल द्रव्यका क्या चारा (इलाज) है। वही कहते हैं—"इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् अपि परेषां दूषणं नास्ति"[इह] अशुद्ध अवस्थामें [यत्] जो कुछ [**रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति**] रागादि अशुद्ध परिणति होती है [**तत्र**] उस अशुद्ध परिणतिके होनेमें [**कतरत् अपि**] अति ही थोड़ा भी [**परेषां दूषणं नास्ति**] जितनी ज्ञानावरणादि कर्मका उदय अथवा शरीर मन वचन अथवा पञ्चेन्द्रिय भोगसामग्री इत्यादि बहुत सामग्री है उसमें किसीका दूषण तो नहीं है। तो क्या है? "अयं स्वयं अपराधी तत्र अबोधः सर्पति" [**अयं**] संसारी जीव [**स्वयं अपराधी**] आप मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है। कर्मके उदयसे हुआ है अशुद्ध भाव, उसको आपरूप जानता है [**तत्र**] इस प्रकार अज्ञानका अधिकार होनेपर [**अबोधः सर्पति**] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव आप मिथ्यादृष्टि होता हुआ परद्रव्यको आप जानकर अनुभवे वहाँ राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिका होना कौन रोके? इसलिए पुद्गल कर्मका कौन दोष? [**विदितं भवतु**] ऐसा ही विदित होओ कि रागादि अशुद्ध परिणतिरूप जीव परिणमता है सो जीवका दोष है, पुद्गल द्रव्यका दोष नहीं। अब अगला विचार कुछ है कि नहीं है? उत्तर इसप्रकार है—अगला यह विचार है कि "अबोधः अस्तं यातु" मोह-राग-द्वेषरूप है जो अशुद्ध परिणति उसका विनाश होओ। उसका विनाश होनेसे 'बोधः अस्मि" मैं शुद्ध चिद्रूप अविनश्वर अनादिनिधन जैसा हूँ वैसा विद्यमान ही हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य शुद्धस्वरूप है। उसमें मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति होती है। उस अशुद्ध परिणतिके मेटनेका उपाय यह कि सहज ही द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणवे तो अशुद्ध परिणति मिटे। और तो कोई करतूति—उपाय नहीं है। उस अशुद्ध [illegible] मिटने पर जीवद्रव्य जैसा है वैसा है, कुछ घट-बढ़ तो नहीं ॥२८-२२०॥

(रथोद्धता)

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते ।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं
शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥२९-२२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कहे हुए अर्थको गाढ़ा—दृढ़ करते हैं—"ते मोहवाहिनीं न हि उत्तरन्ति" [ते] ऐसी मिथ्यादृष्टि जीवराशि [मोहवाहिनीं] मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति ऐसी जो शत्रुकी सेना उसको [न हि उत्तरन्ति] नहीं मेट सकती है । कैसे हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव ? "शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः" [शुद्ध] सकल उपाधिसे रहित जीव वस्तुके [बोध] प्रत्यक्षका अनुभवसे [विधुर] रहित होनेसे [अन्ध] सम्यक्त्वसे शून्य है [बुद्धयः] ज्ञान सर्वस्व जिनका, ऐसे हैं । उनका अपराध कौनसा ? उत्तर—ऐसा अपराध है; वही कहते हैं—"ये रागजन्मनि परद्रव्यं निमित्ततां एव कलयन्ति" [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसे हैं—[रागजन्मनि] राग द्वेष मोह अशुद्ध परिणति-रूप परिणमनेवाले जीवद्रव्यके विषयमें [परद्रव्यं] आठ कर्म शरीर आदि नोकर्म तथा बाह्य भोगसामग्रीरूप [निमित्ततां कलयन्ति] पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है ऐसी श्रद्धा करती है जो कोई जीवराशि वे मिथ्यादृष्टि हैं—अनन्त संसारी हैं, जिससे ऐसा विचार है कि संसारी जीवके रागादि अशुद्धरूप परिणमनशक्ति नहीं है, पुद्गलकर्म बलात्कार ही परिणमाता है । जो ऐसा है तो पुद्गल-कर्म तो सर्वकाल विद्यमान ही है । जीवको शुद्ध परिणामका अवसर कौन ? अपि तु कोई अवसर नहीं ॥२९-२२१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ।३०-२२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीवद्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेयको जानता है, इसलिए परद्रव्यको

जानते हुए कुछ थोड़ा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणतिका विकार होता होगा ? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्यको जानते हुए तो एक निरंशमात्र भी नहीं है, अपनी विभाव परिणति करनेसे विकार है। अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है। ऐसा कहते हैं—"एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां उदासीनतां किं मुञ्चन्ति" [**एते अज्ञानिनः**] विद्यमान हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव वे [**किं रागद्वेषमयीभवन्ति**] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिमें मग्न ऐसे क्यों होते हैं ? तथा [**सहजां उदासीनतां किं मुञ्चन्ति**] सहज ही है सकल परद्रव्यसे भिन्नपना ऐसी प्रतीतिको क्यों छोड़ते हैं ? भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुका स्वरूप तो प्रगट है, (लोग) विचलित होते हैं सो पूरा अचम्भा है। कैसे हैं अज्ञानी जीव ? "तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणाः" [**तद्वस्तु**] शुद्ध जीव द्रव्यकी [**स्थिति**] स्वभावकी मर्यादाके [**बोध**] अनुभवसे [**वन्ध्य**] शून्य है [**धिषणाः**] बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। जिस कारणसे "अयं बोधा" विद्यमान है जो चेतनामात्र जीवद्रव्य वह "बोध्यात्" समस्त ज्ञेयको जानता है, इस कारण "कामपि विक्रियां न यायात्" राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप नहीं परिणमता है। कैसा है जीवद्रव्य ? "पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा" [**पूर्ण**] नहीं है खण्ड जिसका, [**एक**] समस्त विकल्पसे रहित [**अच्युत**] अनन्त काल पर्यन्त स्वरूपसे नहीं चलायमान [**शुद्ध**] द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे रहित ऐसा जो [**बोध**] ज्ञानगुण वही है [**महिमा**] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। दृष्टान्त कहते हैं—"ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव" [**ततः इतः**] बाएँ-दाहिने ऊपर-तले आगे-पीछे [**प्रकाश्यात्**] दीपकके प्रकाशसे देखते हैं घड़ा कपड़ा इत्यादि उस कारण [**दीपः इव**] जिस प्रकार दीपकमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार दीपक प्रकाशस्वरूप है, घट-पट आदि अनेक वस्तुओंको प्रकाशता है। प्रकाशते हुए जो अपना प्रकाशमात्र स्वरूप था वैसा ही है, विकार तो कुछ देखा नहीं जाता। उसी प्रकार जीवद्रव्य ज्ञानस्वरूप है, समस्त ज्ञेयको जानता है। जानते हुए जो अपना ज्ञानमात्र स्वरूप था वैसा ही है। ज्ञेयको जानते हुए विकार कुछ नहीं है ऐसा वस्तुका स्वरूप जिनको नहीं भासित होता वे मिथ्यादृष्टि हैं ॥३०-२२२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात् ।

दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम् ।३१-२२३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"नित्यं स्वभावस्पृशः ज्ञानस्य सञ्चेतनां विन्दन्ति" [नित्यं स्वभावस्पृशः] निरन्तर शुद्ध स्वरूपका अनुभव है जिन्हें ऐसे हैं जो सम्यग्दृष्टि जीव, वे [ज्ञानसञ्चेतनां] राग-द्वेष-मोहसे रहित शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तुको [विन्दन्ति] प्राप्त करते हैं—आस्वादते हैं। कैसी है ज्ञानचेतना ? "स्वरसाभिषिक्तभुवनां" अपने आत्मीक रससे जगतको मानो सिञ्चन करती है। और कैसी है ? "चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं" [चञ्चत्] सकल ज्ञेयको जाननेमें समर्थ ऐसा जो [चिदर्चिः] चैतन्यप्रकाश, ऐसा है [मयीं] सर्वस्व जिसका, ऐसी है। ऐसी चेतनाका जो कारण है उसे कहते हैं—"दूरारूढचरित्रवैभवबलात्" [दूर] अति गाढ़—दृढ़ [आरूढ] प्रगट हुआ जो [चरित्र] राग द्वेष अशुद्ध परिणतिसे रहित जीवका जो चारित्रगुण, उसके [वैभव] प्रतापकी [बलात्] सामर्थ्यसे। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चारित्र तथा शुद्ध ज्ञानचेतनाको एक वस्तुपना है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "रागद्वेषविभावमुक्तमहसः" [रागद्वेष] जितनी अशुद्ध परिणति है उसरूप जो [विभाव] जीवका विकारभाव, उससे [मुक्त] रहित हुआ है [महसः] शुद्ध ज्ञान जिनका, ऐसे हैं। और कैसे हैं ? "पूर्वागामिसमस्त-कर्मविकलाः" [पूर्व] जितना अतीत काल [आगामि] जितना अनागत काल तत्-सम्बन्धी [समस्त] नानाप्रकार असंख्यात लोकमात्र [कर्म] रागादिरूप अथवा सुख-दुःखरूप अशुद्धचेतना विकल्प, उनसे [विकलाः] सर्वथा रहित हैं। और कैसे हैं ? "तदात्वोदयात् भिन्नाः" [तदात्वोदयात्] वर्तमान कालमें आये हुए उदयसे हुई है जो शरीर-सुख-दुःखरूप विषय भोगसामग्री इत्यादि, उससे [भिन्नाः] परम उदासीन हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव त्रिकालसम्बन्धी कर्मकी उदय सामग्रीसे विरक्त होकर शुद्ध चेतनाको प्राप्त करते हैं—आस्वादते हैं ॥३१-२२३॥

(उपजाति)

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम् ।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥३२-२२४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानचेतनाका फल अज्ञानचेतनाका फल कहते हैं—"नित्यं" निरन्तर "ज्ञानस्य सञ्चेतनया" राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिके बिना शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवरूप जो ज्ञानपरिणति उसके द्वारा "अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव" [अतीव शुद्धं ज्ञानं] सर्वथा निरावरण केवलज्ञान [प्रकाशते] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कारण सदृश कार्य होता है, इसलिए शुद्ध ज्ञानका अनुभव करनेपर शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है ऐसा घटित होता है, [एव] ऐसा ही है निश्चयसे। "तु" तथा "अज्ञानसञ्चेतनया बन्धः धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि" [अज्ञानसञ्चेतनया] राग-द्वेष-मोहरूप तथा सुख-दुःखादिरूप जीवकी अशुद्ध परिणतिके द्वारा [बन्धः धावन्] ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध अवश्य होता हुआ [बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि] केवलज्ञानकी शुद्धताको रोकता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानचेतना मोक्षका मार्ग, अज्ञानचेतना संसारका मार्ग ॥३२-२२४॥

(आर्या)

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३३-२२५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कर्मचेतनारूप कर्मफलचेतनारूप है जो अशुद्ध परिणति उसे मिटानेका अभ्यास करता है—"परमं नैष्कर्म्य अवलम्बे" मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ। सकल कर्मकी उपाधिसे रहित ऐसा मेरा स्वरूप मुझे स्वानुभव प्रत्यक्षसे आस्वादमें आता है। क्या विचार कर ? "सर्वं कर्म परिहृत्य" जितना द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म है उन समस्तका स्वामित्व छोड़कर। अशुद्ध परिणतिका विवरण—"त्रिकालविषयं" एक अशुद्ध परिणति अतीत कालके विकल्परूप है जो मैं ऐसा किया ऐसा भोगा इत्यादि रूप है। एक अशुद्ध परिणति आगामी कालके विषयरूप है जो ऐसा करूँगा ऐसा करनेसे ऐसा होगा इत्यादिरूप है। एक अशुद्ध परिणति वर्तमान विषयरूप है जो मैं देव, मैं राजा, मेरे ऐसी सामग्री, मुझे ऐसा सुख अथवा दुःख इत्यादिरूप है। एक ऐसा भी विकल्प है कि "कृतकारितानुमननैः" [कृत] जो कुछ आपकी है हिंसादि क्रिया [कारित] जो अन्य जीवको उपदेश देकर करवाई हो [अनुमननैः] जो किसीने सहज ही की हुई क्रियासे सुख मानना। तथा एक ऐसा भी विकल्प है जो "मनोवचनकायैः" मनसे चिन्तवन करना, वचनसे बोलना, शरीरसे प्रत्यक्ष करना। ऐसे विकल्पों-

को परस्पर फैलाने पर उनचास ४९ भेद होते हैं, वे समस्त जीवका स्वरूप नहीं है, पुद्गलकर्मके उदयसे होते हैं ॥३३-२२५॥

भूतकालका विचार इसप्रकार करता है—

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् दुष्कृतं मे मिथ्या भवतु" [तत् दुष्कृतं] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [मे मिथ्या भवतु] स्वरूप-से भ्रष्ट होते हुए मैंने आपस्वरूप अनुभवा सो अज्ञानपना हुआ। साम्प्रत (अब) ऐसा अज्ञानपना जाओ। 'मैं शुद्धस्वरूप' ऐसा अनुभव होओ। पापके बहुत भेद हैं, उन्हें कहते हैं—"यत् अहं अकार्षं" [यत्] जो पाप [अहं अकार्षं] मैंने किया है। "यत् अहं अचीकरं" जो पाप अन्यको उपदेश देकर कराया है। तथा "अन्यं कुर्वन्तं समन्वज्ञासिषं" सहज ही किया है अन्य किसीने, उसमें मैंने सुख माना होवे "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे। यह सब जीवका स्वरूप नहीं है। इसलिए मैं तो स्वामी नहीं हूँ। इसका स्वामी तो पुद्गलकर्म है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवता है।

(आर्या)

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३४-२२६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहं आत्मना आत्मनि वर्ते" [अहं] चेतनामात्र स्वरूप हूँ जो मैं वस्तु वह मैं [आत्मना] अपनेपनेसे (अपने द्वारा) [आत्मनि वर्ते] रागादि अशुद्ध परिणति त्यागकर अपने शुद्ध स्वरूपमें अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ। कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "नित्यं चैतन्यात्मनि" [नित्यं] सर्व काल [चैतन्यात्मनि] ज्ञान-मात्र स्वरूप है। और कैसा है ? "निःकर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है। क्या करता हुआ ऐसे प्रवर्तता हूँ ? "तत्समस्तं कर्म प्रतिक्रम्य" पहले किया है जो कुछ अशुद्ध-पनारूप कर्म उसका त्यागकर। कौन कर्म ? "यत् अहं अकार्षं" जो आप किया है।

---

* श्री समयसारकी आत्मख्याति-टीकाका यह भाग गद्यरूप है, पद्यरूप अर्थात् कलश रूप नहीं है, इसलिये उसको नम्बर नहीं दिया गया है।

किस कारणसे ? "मोहात्" शुद्धस्वरूपसे भ्रष्ट होकर कर्मके उदयमें आत्मबुद्धि होनेसे ॥३४-२२६॥

वर्तमान कालकी आलोचना इस प्रकार है—

न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि
मनसा च वाचा च कायेन चेति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"न करोमि" वर्तमान कालमें होता है जो राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मबन्ध, उसको मैं नहीं करता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है—मेरा स्वामित्वपना नहीं है ऐसा अनुभवता है सम्यग्दृष्टि जीव। "न कारयामि" अन्यको उपदेश देकर नहीं करवाता हूँ। "अन्यं कुर्वन्तं अपि न समनुजानामि" अपनेसे सहज अशुद्धपनारूप परिणमता है जो कोई जीव उसमें मैं सुख नहीं मानता हूँ "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे। सर्वथा वर्तमान कर्मका मेरे त्याग है।

(आर्या)

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३५-२२७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहं आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते" [अहं] मैं [आत्मना] परद्रव्यकी सहाय विना अपनी सहायसे [आत्मनि] अपनेमें [वर्ते] सर्वथा उपादेय बुद्धिसे प्रवर्तता हूँ। क्या करके ? "इदं सकलं कर्म उदयत् आलोच्य" [इदं] वर्तमानमें उपस्थित [सकलं कर्म] जितना अशुद्धपना अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गल जो कि [उदयत्] वर्तमान कालमें उदयरूप है उसका [आलोच्य] शुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा विचार करते हुए स्वामित्वपना छोड़कर। कैसा है कर्म ? "मोहविलासविजृम्भितं" [मोह] मिथ्यात्वके [विलास] प्रभुत्वपनेके कारण [विजृम्भितं] फैला हुआ है। कैसा हूँ मैं आत्मा ? "चैतन्यात्मनि" शुद्ध चेतनामात्र स्वरूप हूँ और कैसा हूँ ? "निष्कर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित हूँ ॥३५-२२७॥

भविष्य कर्मका प्रत्याख्यान करता है—

---

* देखिये पदटिप्पण पृ० १९७।

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"न करिष्यामि" आगामी कालमें रागादि अशुद्ध परिणामोंको नहीं करूँगा "न कारयिष्यामि" न कराऊँगा "अन्यं कुर्वन्तं न समनुज्ञास्यामि" [अन्यं कुर्वन्तं] सहज ही अशुद्ध परिणतिको करता है जो कोई जीव उसको [न समनुज्ञास्यामि] अनुमोदन नहीं करूँगा "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे ।

(आर्या)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३६-२२८।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"निरस्तसम्मोहः आत्मना आत्मनि नित्यं वर्ते" [निरस्त] गई है [सम्मोहः] मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति जिसकी ऐसा हूँ जो मैं सो [आत्मना] अपने ज्ञानके बलसे [आत्मनि] अपने स्वरूपमें [नित्यं वर्ते] निरन्तर अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ । कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "चैतन्यात्मनि" शुद्ध चेतनामात्र है । और कैसा है ? "निःकर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है । क्या करके आत्मामें प्रवर्तता हूँ ? "भविष्यत् समस्तं कर्म प्रत्याख्याय" [भविष्यत्] आगामी कालसम्बन्धी [समस्त कर्म] जितने रागादि अशुद्ध विकल्प हैं वे [प्रत्याख्याय] शुद्ध स्वरूपसे अन्य हैं ऐसा जानकर अंगीकाररूप स्वामित्वको छोड़कर ।।३६-२२८।।

(उपजाति)

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे ।।३७-२२९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अथ विलीनमोहः चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे" [अथ] अशुद्ध परिणतिके मिटनेके उपरान्त [विलीनमोहः] मूलसे ही मिटा है मिथ्यात्व परिणाम

---

* देखिए पदटिप्पण पृ० १९७ ।

जिसका ऐसा मैं [चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे] ज्ञानस्वरूप जीव वस्तुको निरन्तर आस्वादता हूँ। कैसा आस्वादता हूँ ? "विकारैः रहितं" जो राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिसे रहित है। ऐसा कैसा हूँ मैं ? "शुद्धनयावलम्बी" [शुद्धनय] शुद्ध जीव वस्तुका [अवलम्बी] आलम्बन ले रहा हूँ, ऐसा हूँ। क्या करता हुआ ऐसा हूँ ? "इत्येवं समस्तं कर्म अपास्य" [इत्येवं] पूर्वोक्त प्रकारसे [समस्तं कर्म] जितने हैं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म रागादि भावकर्म उन्हें [अपास्य] जीवसे भिन्न जानकर—स्वीकारको त्यागकर। कैसा है रागादि कर्म ? "त्रैकालिकं" अतीत अनागत वर्तमान काल-सम्बन्धी है ॥३७-२२९॥

(आर्या)

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥३८-२३०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहं आत्मानं सञ्चेतये" मैं शुद्ध चिद्रूपको—अपनेको आस्वादता हूँ। कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "चैतन्यात्मानं" ज्ञानस्वरूपमात्र है। और कैसा है ? "अचलं" अपने स्वरूपसे स्खलित नहीं है। अनुभवका फल कहते हैं—"कर्म विषतरुफलानि मम भुक्ति अन्तरेण एव विगलन्तु" [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गल-पिण्डरूप [विषतरु] विषका वृक्ष—क्योंकि चैतन्य प्राणका घातक है—उसके [फलानि] फल अर्थात् उदयकी सामग्री [मम भुक्ति अन्तरेण एव] मेरे भोगे विना ही [विगलन्तु] मूलसे सत्तासहित नाश होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मका उदय है सुख अथवा दुःख, उसका नाम है कर्मफलचेतना, उससे भिन्न स्वरूप आत्मा ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव करता है ॥३८-२३०॥

(वसन्ततिलका)

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३९-२३१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मम एवं अनन्ता कालावली वहतु" [मम] मुझे [एवं] कर्मचेतना कर्मफलचेतनासे रहित होकर शुद्ध ज्ञानचेतना सहित विराजमानपनेसे

[अनन्ता कालावली वहतु] अनन्तकाल यों ही पूरा होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मचेतना कर्मफलचेतना हेय, ज्ञानचेतना उपादेय। कैसा हूँ मैं ? "सर्वक्रियान्तरविहार-निवृत्तवृत्तेः" [सर्व] अनन्त ऐसी [क्रियान्तर] शुद्ध ज्ञानचेतनासे अन्य—कर्मके उदय अशुद्ध परिणति, उसमें [विहार] विभावरूप परिणमता है जीव, उससे [निवृत्त] रहित ऐसी है [वृत्तेः] ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति जिसकी, ऐसा हूँ। किस कारणसे ऐसा हूँ ? निःशेषकर्मफलसंन्यसनात्" [निःशेष] समस्त [कर्म] ज्ञानावरणादिके [फल] संसारसम्बन्धी सुख-दुःखके [संन्यसनात्] स्वामित्वपनेके त्यागके कारण। और कैसा हूँ ? "भृशं आत्मतत्त्वं भजतः" [भृशं] निरन्तर [आत्मतत्त्वं] शुद्ध चैतन्य वस्तुका [भजतः] अनुभव है जिसको, ऐसा हूँ। कैसा है आत्मतत्त्व ? "चैतन्यलक्ष्म" शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। और कैसा है ? "अचलस्य" आगामी अनन्तकाल तक स्वरूपसे अमिट है ॥३९-२३१॥

(वसन्ततिलका)

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृः।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥४०-२३२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यः खलु पूर्वभावकृतकर्मविपद्रुमाणां फलानि न भुंक्ते" [यः] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [खलु] सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना [पूर्वभाव] मिथ्यात्वभावके द्वारा [कृत] उपार्जित [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूपी [विपद्रुम] चैतन्य प्राणघातक विषवृक्षके [फलानि] संसारसम्बन्धी सुख-दुःखको [न भुंक्ते] नहीं भोगता है। भावार्थ इस प्रकार है कि सुख-दुःखका ज्ञायकमात्र है, परन्तु पर द्रव्यरूप जानकर रंजक नहीं है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वतः एव तृप्तः" शुद्ध स्वरूपके अनुभवनेपर होता है अतीन्द्रिय सुख, उससे तृप्त अर्थात् समाधानरूप है। "सः दशान्तरं एति" [सः] वह सम्यग्दृष्टि जीव [दशान्तरं] निःकर्म अवस्थारूप निर्वाणपदको [एति] प्राप्त करता है। कैसी है दशान्तर ? "आपातकालरमणीयं" वर्तमानकालमें अनन्तसुख विराजमान है। "उदर्करम्यं" आगामी अनन्तकाल तक सुख-रूप है। और कैसी है अवस्थान्तर ? "निःकर्मशर्ममयं" सकलकर्मका विनाश होनेपर

प्रगट होता है जो द्रव्यका सहजभूत अतीन्द्रिय अनन्त सुख, उसमय है—उससे एक सत्तारूप है ॥४०-२३२॥

(स्रग्धरा)

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ।४१-२३३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इत: प्रशमरसं सर्वकालं पिबन्तु" [**इतः**] यहाँ से लेकर [**सर्वकालं**] आगामी अनन्तकाल पर्यन्त [**प्रशमरसं पिबन्तु**] अतीन्द्रिय सुखको आस्वादो । वे कौन ? "स्वां ज्ञानसञ्चेतनां सानन्दं नाटयन्त:" [**स्वां**] आपसम्बन्धी है जो [**ज्ञानसञ्चेतनां**] शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति, उसको [**सानन्दं नाटयन्तः**] आनन्द सहित नचाते हैं अर्थात् अतीन्द्रिय सुखसहित ज्ञानचेतनारूप परिणमते हैं, ऐसे हैं जो जीव । क्या करके ? "स्वभावं पूर्णं कृत्वा" [**स्वभावं**] केवल ज्ञान उसको [**पूर्णं कृत्वा**] आवरण सहित था सो निरावरण किया । कैसा है स्वभाव ? "स्वरसपरिगतं" चेतनारसका निधान है । और क्या करके ? "कर्मण: च तत्फलात् अत्यन्तं विरतिं भावयित्वा" [**कर्मणः**] ज्ञानावरणादि कर्मसे [**च**] और [**तत्फलात्**] कर्मके फल सुख-दुःखसे [**अत्यन्तं**] अतिशयरूपसे [**विरतिं**] शुद्ध स्वरूपसे भिन्न है ऐसा अनुभव होनेपर स्वामित्वपनेके त्यागको [**भावयित्वा**] भाकर अर्थात् ऐसा सर्वथा निश्चय करके "अविरतं" जिस प्रकार एक समयमात्र खण्ड न होवे उस प्रकार सर्वकाल । और क्या करके ? "अखिलाज्ञानसञ्चेतनाया: प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा" सर्व मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिका भले प्रकार विनाश करके । भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष-परिणति विनशती है, शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट होती है, अतीन्द्रिय सुखरूप जीव परिणमता है । इतना कार्य जब होता है तब एक ही साथ होता है ॥४१-२३३॥

(वंशस्थ)

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्-
विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।

समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्-
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४२-२३४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इत: इह ज्ञानं अवतिष्ठते" [इतः] अज्ञानचेतनाके विनाश होनेके उपरान्त [इह] आगामी सर्वकाल [ज्ञानं] शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु [अवतिष्ठते] विराजमान प्रवर्तती है। कैसा है ज्ञान (ज्ञानमात्र जीववस्तु) ? "विवेचितं" सर्वकाल समस्त परद्रव्यसे भिन्न है। किस कारणसे ऐसा जाना ? "समस्तवस्तुव्यतिरेक-निश्चयात्" [समस्तवस्तु] जितनी परद्रव्यकी उपाधि है उससे [व्यतिरेक] सर्वथा भिन्नरूप ऐसी है [निश्चयात्] अवश्य द्रव्यकी शक्ति उसके कारण। कैसा है ज्ञान ? "एकं" समस्त भेद विकल्पसे रहित है। और कैसा है ? "अनाकुलं" अनाकुलत्वलक्षण है अतीन्द्रिय सुख उससे विराजमान है। और कैसा है ? "ज्वलत्" सर्वकाल प्रकाशमान है। ऐसा क्यों है ? "पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना" [पदार्थ] जितने विषय उनका [प्रथना] विस्तार—पाँच वर्ण पाँच रस दो गन्ध आठ स्पर्श शरीर मन वचन सुख-दुःख इत्यादि—उसका [अवगुण्ठनात्] मालारूप गूँथना, उससे [विना] रहित है अर्थात् सर्वमालासे भिन्न है जीववस्तु। कैसी है विषयमाला ? "कृतेः" पुद्गल द्रव्यकी पर्याय-रूप है ॥४२-२३४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।४३-२३५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानं तथा अवस्थितं यथा अस्य महिमा नित्यो-दित: तिष्ठति" [एतत् ज्ञानं] शुद्ध ज्ञान [तथा अवस्थितं] उस प्रकार प्रगट हुआ [यथा अस्य महिमा] जिस प्रकार शुद्ध ज्ञानका प्रकाश [नित्योदितः तिष्ठति] आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर जैसा है वैसा ही रहेगा। कैसा है ज्ञान ? "अमलं" ज्ञानावरण कर्ममलसे रहित है। और कैसा है ज्ञान ? "आदानोज्झनशून्यं" [आदान] परद्रव्यका ग्रहण [उज्झन] स्वस्वरूपका त्याग उनसे [शून्यं] रहित है। और कैसा है ज्ञान ? "पृथक् वस्तुतां बिभ्रत" सकल परद्रव्यसे भिन्न सत्तारूप है। और कैसा है ? "अन्येभ्यः व्यतिरिक्तं" कर्मके उदयसे हैं जितने भाव उनसे भिन्न है। और कैसा है ? "आत्म-

नियतं" अपने स्वरूपसे अमिट है। कैसी है ज्ञानकी महिमा ? "मध्याद्यन्तविभागमुक्त-सहजस्फारप्रभासुरः" [मध्य] वर्तमान [आदि] पहला [अन्त] आगामी ऐसे [विभाग] भेदसे [मुक्त] रहित [सहज] स्वभावरूप [स्फारप्रभा] अनन्त ज्ञान-शक्तिसे [भासुरः] साक्षात् प्रकाशमान है। और कैसा है ? "शुद्धज्ञानघनः" चेतनाका समूह है ॥४३-२३५॥

(उपजाति)

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्
तथात्तमादेयमशेषतस्तत् ।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः
पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ॥४४-२३६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् आत्मनः इह आत्मनि सन्धारणं" [यत्] जो [आत्मनः] अपने जीवका [इह आत्मनि] अपने स्वरूपमें [सन्धारणं] स्थिर होना है "तत्" एतावन्मात्र समस्त 'उन्मोच्यं उन्मुक्त" जितना हेयरूपसे छोड़ना था सो छूटा। "अशेषतः" कुछ छोड़नेकें लिए वाकी नहीं रहा। "तथा तत् आदेयं अशेषतः आत्तं" [तथा] उसी प्रकार [तत् आदेयं] जो कुछ ग्रहण करनेके लिए था [अशेषतः आत्तं] सो समस्त ग्रहण किया। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव सर्व कार्य-सिद्धि। कैसा है आत्मा ? "संहृतसर्वशक्तेः" [संहृत] विभावरूप परिणमे थे वे ही हुए हैं स्वभावरूप ऐसे हैं [सर्वशक्तिः] अनन्तगुण जिसके, ऐसा है। और कैसा है ? "पूर्णस्य" जैसा था वैसा प्रगट हुआ ॥४४-२३६॥

(अनुष्टुप्)

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शंक्यते ।४५-२३७।*

श्लोकार्थ—"एवं" इस प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) "ज्ञानं परद्रव्यात् व्यतिरिक्तं अवस्थितं" ज्ञान पर द्रव्यसे पृथक् अवस्थित (-निश्चल रहा हुआ) है; "तत्" वह (ज्ञान) "आहारकं" आहारक (अर्थात् कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला) "कथं स्यात्" कैसे

* पण्डित श्री राजमलजी कृत टीकामें यह श्लोक छूट गया है। अतः उक्त श्लोक अर्थ सहित, हिन्दी समयसारके आधारसे यहाँ दिया गया है।

हो सकता है "येन" कि जिससे "अस्य देहः शंक्यते" उसके देहकी शंका की जा सके ? (ज्ञानके देह हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके कर्म-नोकर्मरूप आहार ही नहीं है) ॥४५-२३७॥

(अनुष्टुप्)

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥४६-२३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः देहमयं लिङ्गं ज्ञातुः मोक्षकारणं न" [**ततः**] तिस कारणसे [**देहमयं लिङ्गं**] द्रव्यक्रियारूप यतिपना अथवा गृहस्थपना [**ज्ञातुः**] जीवके [**मोक्षकारणं न**] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षका कारण तो नहीं है। किस कारणसे ? कारण कि "एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य" पूर्वोक्त प्रकारसे साधा है जो शुद्धस्वरूप जीव उसके "देह एव न विद्यते" शरीर ही नहीं है अर्थात् शरीर है वह भी जीवका स्वरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यक्रियाको मोक्षका कारण मानता है उसे समझाया है ॥४६-२३८॥

(अनुष्टुप्)

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥४७-२३९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मुमुक्षुणा एक एव मोक्षमार्गः सदा सेव्यः" [**मुमुक्षुणा**] मोक्षको उपादेय अनुभवता है ऐसा जो पुरुष, उसके द्वारा [**एक एव**] शुद्धस्वरूपका अनुभव [**मोक्षमार्गः**] सकल कर्मोंके विनाशका कारण है ऐसा जानकर [**सदा सेव्यः**] निरन्तर अनुभव करने योग्य है। वह मोक्षमार्ग क्या है ? "आत्मनः तत्त्वं" शुद्ध जीवका स्वरूप है। और कैसा है आत्मतत्त्व ? "दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र उन तीन स्वरूपकी एक सत्ता है आत्मा (सर्वस्व) जिसका, ऐसा है ॥४७-२३९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।

तस्मिन्नेव निरन्तरं विरहति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥४८-२४०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विंदति" [सः] ऐसा है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह [नित्योदयं] नित्य उद्योतरूप [समयस्य सारं] सकल कर्मका विनाशकर प्रगट हुआ है जो शुद्ध चैतन्यमात्र उसको [अचिरात्] अति ही थोड़े कालमें [अवश्यं विन्दति] सर्वथा आस्वादता है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाणपदको प्राप्त होता है। कैसा है ? "यः तत्र एव स्थितिं एति" [यः] जो सम्यग्दृष्टि जीव [तत्र] शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुमें [एव] एकाग्र होकर [स्थितिं एति] स्थिरता करता है, "च तं अनिशं ध्यायेत्" [च] तथा [तं] शुद्ध चिद्रूपको [अनिशं ध्यायेत्] निरन्तर अनुभवता है, "च तं चेतति" [तं चेतति] वार वार उस शुद्धस्वरूपका स्मरण करता है [च] और "तस्मिन् एव निरन्तरं विहरति" [तस्मिन्] शुद्ध चिद्रूपमें [एव] एकाग्र होकर [निरन्तरं विहरति] अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है। कैसा होता हुआ ? "द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्" जितनी कर्मके उदयसे नाना प्रकारकी अशुद्ध परिणति उसको सर्वथा छोड़ता हुआ। वह चिद्रूप कौन है ? "यः एषः दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः" [यः एषः] जो यह ज्ञानके प्रत्यक्ष है [दृग्] दर्शन [ज्ञप्ति] ज्ञान [वृत्त] चारित्र, वही है [आत्मकः] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। और कैसा है ? "मोक्षपथः" जिसके शुद्धस्वरूप परिणमनेपर सकल कर्मोंका क्षय होता है। और कैसा है ? "एकः" समस्त विकल्पसे रहित है। और कैसा है ? "नियतं" द्रव्यार्थिकदृष्टिसे देखनेपर जैसा है वैसा ही है, उससे हीनरूप नहीं है, अधिक नहीं है ॥४८-२४०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगेद्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ।४९-२४१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते समयस्य सारं अद्यापि न पश्यन्ति" [ते] ऐसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि वह [समयस्य सारं] सकल कर्मोंसे विमुक्त है जो परमात्मा उसे [अद्यापि] द्रव्यव्रत धारण किया है, बहुतसे शास्त्र पढ़े हैं तो भी [न पश्यन्ति]

नहीं प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाण पदको नहीं प्राप्त होती है। कैसा है समयसार ? "नित्योद्योतं" सर्वकाल प्रकाशमान है। और कैसा है ? "अखण्डं" जैसा था वैसा है। और कैसा है ? "एकं" निर्विकल्प सत्तारूप है। और कैसा है ? "अतुलालोकं" जिसकी उपमाका दृष्टान्त तीन लोकमें कोई नहीं है। और कैसा है ? "स्वभावप्रभाप्राग्भारं" [स्वभाव] चेतनास्वरूप उसका [प्रभा] प्रकाश उसका [प्राग्भारं] एक पुंज है। और कैसा है ? "अमलं" कर्ममलसे रहित है। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि ? 'ये लिङ्गे ममतां वहन्ति" [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीवराशि [लिङ्गे] द्रव्यक्रियामात्र है जो यतिपना उसमें [ममतां वहन्ति] मैं यति हूँ, हमारी क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीति करती है। कैसा है लिङ्ग ? "द्रव्यमये" शरीरसम्बन्धी है—बाह्य क्रियामात्रका अवलम्बन करता है। कैसे हैं वे जीव ? "तत्त्वाववोधच्युताः" [तत्त्व] जीवका शुद्ध स्वरूप उसका [अवबोध] प्रत्यक्षपने अनुभव उससे [च्युताः] अनादि कालसे भ्रष्ट हैं। द्रव्यक्रियाको करते हुए आपको कैसे मानते हैं ? "संवृतिपथ-प्रस्थापितेन आत्मना" [संवृतिपथ] मोक्षमार्गमें [प्रस्थापितेन आत्मना] अपनेको स्थापित किया है अर्थात् मैं मोक्षमार्गमें चढ़ा हूँ ऐसा मानते हैं, ऐसा अभिप्राय रखकर क्रिया करते हैं। क्या करके ? "एनं परिहृत्य" शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभव छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीति नहीं करते हैं ॥४९-२४१॥

(वियोगिनी)

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् । ५०-२४२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जनाः" कोई ऐसे हैं मिथ्यादृष्टि जीव जो "परमार्थं" शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीतिको "नो कलयन्ति" नहीं अनुभवते हैं। कैसे हैं ? "व्यवहारविमूढदृष्टयः" [व्यवहार] द्रव्यक्रियामात्र उसमें [विमूढ] क्रिया मोक्षका मार्ग है इस प्रकार मूर्खपनेरूप झूठी है [दृष्टयः] प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं। दृष्टान्त कहते हैं—जिस प्रकार "लोके" वर्तमान कर्मभूमिमें 'तुषबोधविमुग्धबुद्धयः जनाः" [तुष] धानके ऊपरके तुषमात्रके [बोध] ज्ञानसे—ऐसे ही मिथ्याज्ञानने [विमुग्ध] विकल हुई है [बुद्धयः] मति जिनकी, ऐसे हैं [जनाः] कितने ही मूर्ख लोग। "इह" वस्तु जैसी

(रथोद्धता)

द्रव्यलिंगममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न ।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥५१-२४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैः समयसारः न दृश्यते एव" [द्रव्यलिङ्ग] क्रियारूप यतिपना [ममकार] मैं यति, मेरा यतिपना मोक्षका मार्ग ऐसा जो अभिप्राय उसके कारण [मीलितैः] अन्धे हुए हैं अर्थात् परमार्थ दृष्टिसे अन्ध हुए हैं जो पुरुष उन्हें [समयसारः] शुद्ध जीववस्तु [न दृश्यते] प्राप्तिगोचर नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्षकी प्राप्ति उनके लिए दुर्लभ है । किस कारणसे ? "यत् द्रव्यलिंगं इह अन्यतः हि इदं एकं ज्ञानं स्वतः" [यत्] जिस कारणसे [द्रव्य लिंगं] क्रियारूप यतिपना [इह] शुद्ध ज्ञानका विचार करनेपर [अन्यतः] जीवसे भिन्न है, पुद्गलकर्म-सम्वन्धी है । इस कारण द्रव्यलिंग हेय है और [हि] जिस कारण [इदं] अनुभव-गोचर [एकं ज्ञानं] शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु [स्वतः] अकेला जीवका सर्वस्व है, इसलिए उपादेय है, मोक्षका मार्ग है । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीवके स्वरूपका अनुभव अवश्य करना योग्य है ॥५१-२४३॥

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥५२-२४४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह अयं एकः परमार्थः नित्यं चेत्यतां" [इह] सर्व तात्पर्य ऐसा है कि [अयं एकः परमार्थः] बहुत प्रकारसे कहा है तथापि कहेंगे शुद्ध जीवके अनुभवरूप अकेला मोक्षका कारण उसको [नित्यं चेत्यतां] अन्य जो नाना प्रकारके

अभिप्राय उन समस्तको मेटकर इसी एकको नित्य अनुभवो। वह कौन परमार्थ ? "खलु समयसारात् उत्तरं किञ्चित् न अस्ति" [**खलु**] निश्चयसे [**समयसारात्**] शुद्ध जीवके स्वरूपके अनुभवके समान [**उत्तरं**] द्रव्यक्रिया अथवा सिद्धान्तका पढ़ना लिखना इत्यादि [**किञ्चित् न अस्ति**] कुछ नहीं है अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग सर्वथा है, अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। कैसा है समयसार ? "स्वरसविसरपूर्णज्ञान-विस्फूर्तिमात्रात्" [**स्वरस**] चेतनाके [**विसर**] प्रवाहसे [**पूर्ण**] सम्पूर्ण ऐसा [**ज्ञान-विस्फूर्ति**] केवलज्ञानका प्रगटपना [**मात्रात्**] इतना है स्वरूप जिसका, ऐसा है। आगे ऐसा मोक्षमार्ग है, इससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहता है वह वहिरात्मा है, उसे वर्जित करते हैं—"अतिजल्पैः अलं अलं" [**अतिजल्पैः**] वहुत वोलनेसे [**अलं अलं**] वस करो वस करो। यहाँ दो वारके कहनेसे अत्यन्त वर्जित करते हैं कि चुप रहो चुप रहो। कैसे हैं अतिजल्प ? "दुर्विकल्पैः" झूठसे भी झूठ उठती हैं चित्तकल्लोलमाला जिनमें, ऐसे हैं। और कैसे हैं ? "अनल्पैः" शक्तिभेदसे अनन्त हैं ॥५२-२४४॥

(अनुष्टुप्)

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ॥५३-२४५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदं पूर्णतां याति" शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकारका आरम्भ किया था वह पूर्ण हुआ। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "एकं" निर्विकल्प है। और कैसा है ? "जगच्चक्षुः" जितनी ज्ञेय वस्तु उन सवका ज्ञाता है। और कैसा है ? "अक्षयं" शाश्वत है। और कैसा है ? "विज्ञानघनं अध्यक्षतां नयत्" [**विज्ञान**] ज्ञानमात्रके [**घनं**] समूहरूप आत्मद्रव्यको [**अध्यक्षतां नयत्**] प्रत्यक्षरूपसे अनुभवता हुआ ॥५३-२४५॥

(अनुष्टुप्)

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम् ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमवाधितम् ॥५४-२४६॥*

---

* पण्डित श्री राजमलजी कृत टीका में यह श्लोक छूट गया है। अतः यह श्लोक हिन्दी समयसार से लेकर अर्थ सहित यहाँ दिया गया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदम् आत्मनः तत्त्वं ज्ञानमात्रम् अवस्थितम् इति" [**इदम्**] प्रत्यक्ष है जो [**आत्मनः तत्त्वं**] शुद्ध जीवका स्वरूप वह [**ज्ञानमात्रम्**] शुद्ध-ज्ञानमात्र है ऐसा [**अवस्थितम् इति**] पूर्ण नाटक समयसार शास्त्र कहनेपर इतना सिद्धांत सिद्ध हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहने पर ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। कैसा है आत्मतत्त्व ? "अखण्डम्" अबाधित है। और कैसा है ? "एकम्" निर्वि-कल्प है। और कैसा है ? "अचलं" अपने स्वरूपसे अमिट है। और कैसा है ? "स्वसंवेद्यम्" ज्ञान गुणसे स्वानुभवगोचर होता है, अन्यथा कोटि यत्न करनेपर ग्राह्य नहीं है। और कैसा है ? "अबाधितम्" सकल कर्मसे भिन्न होनेपर कोई बाधा करनेको समर्थ नहीं है इस कारण ॥५४-२४६॥



[११]

स्याद्वाद-अधिकार

(अनुष्टुप्)

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।१-२४७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"भूयः अपि मनाक् चिन्त्यते" [भूयः अपि] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहता हुआ समयसार नाम शास्त्र समाप्त हुआ। तदुपरान्त [मनाक् चिन्त्यते] कुछ थोड़ासा अर्थ दूसरा कहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जो गाथासूत्रका कर्ता है कुन्दकुन्दाचार्यदेव, उनके द्वारा कथित गाथासूत्रका अर्थ सम्पूर्ण हुआ। साम्प्रत टीकाकर्ता है अमृतचन्द्र सूरि, उन्होंने टीका भी कही। तदुपरान्त अमृतचन्द्र सूरि कुछ कहते हैं। क्या कहते हैं—"वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः" [वस्तु] जीवद्रव्यका [तत्त्व] ज्ञानमात्र स्वरूप [व्यवस्थितिः] जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं। "च" और क्या कहते हैं—"उपायोपेयभावः" [उपाय] मोक्षका कारण जिस प्रकार है उस प्रकार [उपेयभावः] सकल कर्मोंका विनाश होनेपर जो वस्तु निष्पन्न होती है उस प्रकार कहते हैं। कहनेका प्रयोजन क्या ऐसा कहते हैं—"अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं" [अत्र] ज्ञानमात्र जीवद्रव्यमें [स्याद्वादशुद्ध्यर्थं] स्याद्वाद—एक सत्तामें अस्तिनास्ति एक-अनेक नित्य-अनित्य इत्यादि अनेकान्तपना [शुद्धि] ज्ञानमात्र जीवद्रव्यमें जिस प्रकार घटित हो उस प्रकार [अर्थं] कहनेका है अभिप्राय जहाँ ऐसे प्रयोजनस्वरूप कहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई आशंका करता है कि जैनमत स्याद्वादमूलक है। यहाँ तो ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहा सो ऐसा कहते हुए एकान्तपना हुआ, स्याद्वाद तो प्रगट हुआ है नहीं? उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहते हुए अनेकान्तपना घटित होता है। जिस प्रकार घटित होता है उस प्रकार यहाँ से लेकर कहते हैं, सावधान होकर सुनो ।।१-२४७।।

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥२-२४८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जो ज्ञानमात्र जीवका स्वरूप है उसमें भी चार प्रश्न विचारणीय हैं। वे प्रश्न कौन ? एक तो प्रश्न ऐसा कि ज्ञान ज्ञेयके सहारेका है कि अपने सहारेका है ? दूसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान एक है कि अनेक है ? तीसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान अस्तिरूप है कि नास्तिरूप है ? चौथा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान नित्य है कि अनित्य है ? उनका उत्तर इस प्रकार है कि जितनी वस्तु हैं वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप हैं। इसलिए ज्ञान भी द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। उसका विवरण— द्रव्यरूप कहनेपर निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु, पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेयको जानता हुआ ज्ञेयकी आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयको जाननेरूप परिणति ज्ञानकी पर्याय, इसलिए ज्ञानको पर्यायरूपसे कहनेपर ज्ञान ज्ञेयके सहारेका है। (ज्ञानको) वस्तुमात्रसे कहनेपर अपने सहारेका है। एक प्रश्नका समाधान तो इस प्रकार है। दूसरे प्रश्नका समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायमात्रसे कहनेपर ज्ञान अनेक है, वस्तुमात्रसे कहने पर एक है। तीसरे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायरूपसे कहनेपर ज्ञान नास्तिरूप है, ज्ञानको वस्तुरूपसे विचारनेपर ज्ञान अस्तिरूप है। चौथे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायमात्र-से कहनेपर ज्ञान अनित्य है, वस्तुमात्रसे कहनेपर ज्ञान नित्य है। ऐसा प्रश्न करनेपर ऐसा समाधान करना, स्याद्वाद इसका नाम है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है तथा इस प्रकार साधनेपर वस्तुमात्र सधती है। जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव वस्तुको वस्तुरूप है तथा वही वस्तु पर्यायरूप है ऐसा नहीं मानते हैं, सर्वथा वस्तुरूप मानते हैं अथवा सर्वथा पर्याय-मात्र मानते हैं वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। कारण कि वस्तुमात्रको माने विना पर्यायमात्रके माननेपर पर्यायमात्र भी नहीं सधती है; वहाँ अनेक प्रकार साधन-बाधन है, अवसर पाकर कहेंगे। अथवा पर्यायरूप माने विना वस्तुमात्र मानने-पर वस्तुमात्र भी नहीं सधती है। वहाँ भी अनेक युक्तियाँ हैं। अवसर पाकर कहेंगे। इसी बीच कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानको पर्यायरूप मानता है, वस्तुरूप नहीं मानता है।

ऐसा मानता हुआ ज्ञानको ज्ञेयका सहारेका मानता है, उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि इस प्रकार तो एकान्तरूपसे ज्ञान सधता नहीं। इसलिए ज्ञान अपने सहारेका है ऐसा कहते हैं—"पशोः ज्ञानं सीदति" [पशोः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जैसा मानता है कि ज्ञान पर ज्ञेयके सहारेका है सो ऐसा माननेपर [ज्ञानं] शुद्ध जीवकी सत्ता [सीदति] नष्ट होती है अर्थात् अस्तित्वपना वस्तुरूपताको नहीं पाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकान्तवादीके कथनानुसार वस्तुका अभाव सधता है, वस्तुपना नहीं सधता। कारण कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है। कैसा है ज्ञान ? "बाह्यार्थैः परिपीतं" [बाह्यार्थैः] ज्ञेय वस्तुके द्वारा [परिपीतं] सर्व प्रकार निगला गया है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि ज्ञान वस्तु नहीं है, ज्ञेयसे है। सो भी उसी क्षण उपजता है, उसी क्षण विनशता है। जिस प्रकार घटज्ञान घटके सद्भावमें है। प्रतीति इस प्रकार होती है कि जो घट है तो घटज्ञान है। जब घट नहीं था तब घटज्ञान नहीं था। जब घट नहीं होगा तब घटज्ञान नहीं होगा। कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानवस्तुको बिना माने ज्ञानको पर्यायमात्र मानता हुआ ऐसा मानता है। और ज्ञानको कैसा मानता है—"उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्" [उज्झित] मूलसे नाश हो गया है [निजप्रव्यक्ति] ज्ञेयके जानपनेमात्रसे ज्ञान ऐसा पाया हुआ नाममात्र, उस कारण [रिक्तीभवत्] ज्ञान ऐसे नामसे भी विनष्ट हो गया है ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव। और ज्ञानको कैसा मानता है—"परितः पररूपे एव विश्रान्तं" [परितः] मूलसे लेकर [पररूपे] ज्ञेय वस्तुरूप निमित्तमें [एव] एकान्तसे [विश्रान्तं] विश्रान्त हो गया—ज्ञेयसे उत्पन्न हुआ, ज्ञेयसे नष्ट हो गया। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार भीतमें चित्राम जब भीत नहीं थी तब नहीं था, जब भीत है तब है, जब भीत नहीं होगी तब नहीं होगा। इससे प्रतीति ऐसी उत्पन्न होती है कि चित्रके सर्वस्वका कर्ता भीत है। उसी प्रकार जब घट है तब घटज्ञान है, जब घट नहीं था तब घटज्ञान नहीं था, जब घट नहीं होगा तब घटज्ञान नहीं होगा। इससे ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है कि ज्ञानके सर्वस्वका कर्ता ज्ञेय है। कोई अज्ञानी एकान्तवादी ऐसा मानता है, इसलिए ऐसे अज्ञानीके मतमें ज्ञान वस्तु ऐसा नहीं पाया जाता। स्याद्वादीके मतमें ज्ञानवस्तु ऐसा पाया जाता है। "पुनः स्याद्वादिनः तत् पूर्णं समुन्मज्जति" [पुनः] एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है, स्याद्वादी कहता है उस प्रकार है। [स्याद्वादिनः] एक सत्ताको द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानते हैं ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव

उनके मतमें [तत्] ज्ञानवस्तु [पूर्ण] जैसी ज्ञेयसे होती कही, विनशती कही वैसी नहीं है, जैसी है वैसी ही है, ज्ञेयसे भिन्न स्वयंसिद्ध अपनेसे है। [समुन्मज्जति] एकान्तवादीके मतमें मूलसे लोप हो गया था वही ज्ञान स्याद्वादीके मतमें ज्ञान वस्तुरूप प्रगट हुआ। किस कारणसे प्रगट हुआ ? "दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः" [दूर] अनादिसे लेकर [उन्मग्न] स्वयंसिद्ध वस्तुरूप प्रगट है ऐसा [घन] अमिट [स्वभाव] ज्ञानवस्तुका सहज उसके [भरतः] न्याय करनेपर, अनुभव करनेपर ऐसा ही है ऐसे सत्यपनेके कारण। कैसा न्याय कैसा अनुभव ये दोनों जिस प्रकार होते हैं उस प्रकार कहते हैं—"यत् तत् स्वरूपतः तत् इति" [यत्] जो वस्तु [तत्] वह वस्तु [स्वरूपतः तत्] अपने स्वभावसे वस्तु है। [इति] ऐसा अनुभव करनेपर अनुभवभी उत्पन्न होता है, युक्ति भी प्रगट होती है। अनुभव निर्विकल्प है। युक्ति ऐसी कि ज्ञानवस्तु द्रव्यरूपसे विचार करनेपर अपने स्वरूप है, पर्यायरूपसे विचार करनेपर ज्ञेयसे है। जिस प्रकार ज्ञानवस्तु द्रव्यरूपसे ज्ञानमात्र है पर्यायरूपसे घटज्ञानमात्र है, इसलिए पर्यायरूपसे देखनेपर घटज्ञान जिस प्रकार कहा है, कि घटके सद्भावमें है, घटके नहीं होने पर नहीं है—वैसे ही है। द्रव्यरूपसे अनुभव करनेपर घटज्ञान ऐसा न देखा जाय, ज्ञान ऐसा देखा जाय तो घटसे भिन्न अपने स्वरूपमात्र स्वयंसिद्ध वस्तु है। इस प्रकार अनेकान्तके साधने पर वस्तु-स्वरूप सधता है। एकान्तसे जो घट घटज्ञानका कर्ता है, ज्ञानवस्तु नहीं है तो ऐसा होना चाहिए कि जिस प्रकार घटके पास बैठे पुरुषको घटज्ञान होता है उसी प्रकार जिस किसी वस्तुको घटके पास रखा जाय उसे घटज्ञान होना चाहिए। ऐसा होनेपर स्तम्भके पास घटके होनेपर स्तम्भको घटज्ञान होना चाहिए सो (-परन्तु) ऐसा तो नहीं दिखाई देता। तिस कारण ऐसा भाव प्रतीतिमें आता है कि जिसमें ज्ञानशक्ति विद्यमान है उसको घटके पास बैठकर घटके देखने विचारनेपर घटज्ञानरूप इस ज्ञानकी पर्याय परिणमती है। इसलिए स्याद्वाद वस्तुका साधक है, एकान्तपना वस्तुका नाश-कर्ता है ॥२-२४८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥३-२४९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो ज्ञानको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है । इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्यको ज्ञानवस्तुरूपसे मानता है उस प्रकार ज्ञेय जो पुद्गल धर्म अधर्म आकाश कालद्रव्य उनको भी ज्ञेय वस्तु नहीं मानता है, ज्ञानवस्तु मानता है । उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेयको जानता है ऐसा ज्ञानका स्वभाव है तथापि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं है—"पशुः स्वच्छन्दं आचेष्टते" [**पशुः**] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [**स्वच्छन्दं**] स्वेच्छाचाररूप–कुछ हेयरूप कुछ उपादेयरूप ऐसा भेद नहीं करता हुआ, समस्त त्रैलोक्य उपादेय ऐसी बुद्धि करता हुआ–[**आचेष्टते**] ऐसी प्रतीति करता हुआ निःशंकपने प्रवर्तता है । किसके समान ? [**पशुः इव**] तिर्यञ्चके समान । कैसा होकर प्रवर्तता है ? [**विश्वमयः भूत्वा**] 'अहं विश्वं' ऐसा जान आप विश्वरूप हो प्रवर्तता है । ऐसा क्यों है ? कारण कि "सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा" [**सकलं**] समस्त ज्ञेयवस्तुको [**स्वतत्त्वाशया**] ज्ञानवस्तुकी बुद्धिरूपसे [**दृष्ट्वा**] प्रगाढ़ प्रतीतिकर । ऐसी प्रगाढ़ प्रतीति क्यों होती है ? कारण कि "विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य" त्रैलोक्यरूप जो कुछ है वह ज्ञानवस्तुरूप है ऐसा जानकर । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु पर्यायरूपसे ज्ञेयाकार होती है सो मिथ्यादृष्टि पर्यायरूप भेद नहीं मानता है, समस्त ज्ञेयको ज्ञानवस्तुरूप मानता है । उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं है । यही कहते हैं—"पुनः स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत्" [**पुनः**] एकान्तवादी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार ज्ञानको वस्तुपना नहीं सिद्ध होता है । स्याद्वादी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार वस्तुपना ज्ञानको सधता है । कारण कि एकान्तवादी ऐसा मानता है कि समस्त ज्ञानवस्तु है, सो इसके माननेपर लक्ष्य-लक्षणका अभाव होता है, इसलिए लक्ष्य-लक्षणका अभाव होनेपर वस्तुकी सत्ता नहीं सधती है । स्याद्वादी ऐसा मानता है कि ज्ञानवस्तु है, उसका लक्षण है—समस्त ज्ञेयका जानपना, इसलिए इसके कहनेपर स्वभाव सधता है, स्वस्वभावके सधनेपर वस्तु सधती है, अतएव ऐसा कहा जो स्याद्वाददर्शी [**स्वतत्त्वं स्पृशेत्**] वस्तुको द्रव्य-पर्यायरूप मानता है, ऐसा स्याद्वाददर्शी अर्थात् अनेकांतवादी जीव ज्ञान वस्तु है ऐसा साधनेके लिए समर्थ होता है । स्याद्वादी ज्ञानवस्तुको कैसी मानता है ? "विश्वात् भिन्नं" [**विश्वात्**] समस्त ज्ञेयसे [**भिन्नं**] निराला है । और कैसा मानता है ? "अविश्वविश्वघटितं" [**अविश्व**] समस्त ज्ञेयसे भिन्नरूप [**विश्व**] अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे [**घटितं**] जैसा है वैसा अनादिसे स्वयंसिद्ध निष्पन्न है—ऐसी

है ज्ञानवस्तु। ऐसा क्यों मानता है ? "यत् तत्" जो जो वस्तु है "तत् पररूपतः न तत्" वह वस्तु पर वस्तुकी अपेक्षा वस्तुरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्ञानवस्तु ज्ञेयरूपसे नहीं है, ज्ञानरूपसे है। उसी प्रकार ज्ञेयवस्तु भी ज्ञानवस्तुसे नहीं है, ज्ञेयवस्तुरूप है। इसलिए ऐसा अर्थ प्रगट हुआ कि पर्यायद्वारसे ज्ञान विश्वरूप है, द्रव्यद्वारसे आपरूप है। ऐसा भेद स्याद्वादी अनुभवता है। इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूपका साधक है, एकान्तपना वस्तुका घातक है ॥३-२४९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुटचन् पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदा व्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसय-
न्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥४-२५०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमात्रको वस्तु मानता है, वस्तुको नहीं मानता है, इसलिए ज्ञानवस्तु अनेक ज्ञेयको जानती है, उसको जानती हुई ज्ञेयाकार परिणमती है ऐसा जानकर ज्ञानको अनेक मानता है, एक नहीं मानता है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि एक ज्ञानको माने विना अनेक ज्ञान ऐसा नहीं सधता है, इसलिए ज्ञानको एक मानकर अनेक मानना वस्तुका साधक है ऐसा कहते हैं—"पशुःनश्यति" एकांतवादी वस्तुको नहीं साध सकता है। कैसा है ? "अभितः त्रुटचन्" जैसा मानता है उस प्रकार वह झूठा ठहरता है। और कैसा है ? "विष्वग्विचित्रोल्लसद्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिः" [विश्वक्] जो अनन्त हैं [विचित्र] अनन्त प्रकारका है [उल्लसत्] प्रगट विद्यमान है ऐसा जो [ज्ञेय] छह द्रव्योंका समूह उसके [आकार] प्रतिबिम्बरूप परिणमी है ऐसी जो ज्ञानपर्याय [विशीर्णशक्तिः] एतावन्मात्र ज्ञान है ऐसी श्रद्धा करनेपर गल गई है वस्तु साधनेकी सामर्थ्य जिसकी, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। ऐसा क्यों है ? "बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतः" [बाह्यार्थ] जितनी ज्ञेय वस्तु उनका [ग्रहण] जानपना, उसकी आकृतिरूप ज्ञानका परिणाम ऐसा जो है [स्वभाव] वस्तुका सहज जो कि [भरतः] किसीके कहनेसे वर्जा न जाय (छूटे नहीं) ऐसा अमिटपना, उसके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानका स्वभाव है कि समस्त ज्ञेयको जानता हुआ ज्ञेयके आकाररूप परिणमना। कोई एकांत-

वादी एतावन्मात्र वस्तुको जानता हुआ ज्ञानको अनेक मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञानका एकपना साधता है—"अनेकांतविद् ज्ञानं एकं पश्यति" [अनेकांतविद्] एक सत्ताको द्रव्य-पर्यायरूप मानता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं एकं पश्यति] ज्ञानवस्तु यद्यपि पर्यायरूपसे अनेक है तथापि द्रव्यरूपसे एकरूप अनुभवता है। कैसा है स्याद्वादी ? "भेदभ्रमं ध्वंसयन्" ज्ञान अनेक है ऐसे एकान्त पक्षको नहीं मानता है। किस कारणसे ? "एकद्रव्यतया" ज्ञान एक वस्तु है ऐसे अभिप्रायके कारण। कैसा है अभिप्राय ? "सदा व्युदितया" सर्वकाल उदयमान है। कैसा है ज्ञान ? "अबाधितानुभवनं" अखण्डित है अनुभव जिसमें, ऐसी है ज्ञानवस्तु ॥४-२५०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षयास्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतःक्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकांतवित् ॥५-२५१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकांतवादी ऐसा है कि वस्तुको द्रव्यरूप मात्र मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है। इसलिए ज्ञानको निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है, ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञानकी पर्याय नहीं मानता है, इसलिए ज्ञेय वस्तुको जानते हुए ज्ञानका अशुद्धपना मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञानका द्रव्यरूप एक पर्यायरूप अनेक ऐसा स्वभाव साधता है ऐसा कहते हैं—"पशुः ज्ञानं न इच्छति" [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [न इच्छति] नहीं साध सकता है—अनुभवगोचर नहीं कर सकता है। कैसा है ज्ञान ? "स्फुटं अपि" प्रकाशरूपसे प्रगट है यद्यपि। कैसा है एकांतवादी ? "प्रक्षालनं कल्पयन्" कलंक प्रक्षालनेका अभिप्राय करता है। किसमें ? "ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति" [ज्ञेय] जितनी ज्ञेयवस्तु है उस [आकार] ज्ञेयको जानते हुए हुआ है उसकी आकृतिरूप ज्ञान ऐसा जो [कलंक] कलंक उसके कारण [मेचक] अशुद्ध हुआ है, ऐसी है [चिति] जीववस्तु, उसमें। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयको जानता है ज्ञान, उसको एकांतवादी मिथ्यादृष्टि जीव स्वभाव नहीं मानता है, अशुद्धपनेरूपसे मानता है। एकान्तवादीका अभिप्राय ऐसा क्यों है ? "एकाकारचिकीर्षया" क्योंकि [एकाकार] समस्त ज्ञेयके

जानपनेसे रहित होता हुआ निर्विकल्परूप ज्ञानका परिणाम [निकीर्णता] जब ऐसा होवे तब ज्ञान शुद्ध है ऐसा है अभिप्राय एकांतवादीका। उसके प्रति एक-अनेकरूप ज्ञानका स्वभाव साधता है स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव—"अनेकांतविद् ज्ञानं पश्यति" [अनेकांतविद्] स्याद्वादी जीव [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [पश्यति] साध सकता है–अनुभव कर सकता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वतः क्षालितं" सहज ही शुद्धस्वरूप है। स्याद्वादी ज्ञानको कैसा जानकर अनुभवता है ? "तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकतां उपगतं परिमृशन्" [तत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु [वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां] अनेक ज्ञेयाकारकी अपेक्षा पर्यायरूप अनेक है तथापि द्रव्यरूप एक है, [पर्यायैः अनेकतां उपगतं] यद्यपि द्रव्यरूप एक है तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्यायकी अपेक्षा अनेकपनाको प्राप्त होती है ऐसे स्वरूपको अनेकांतवादी साध सकता है–अनुभवगोचर कर सकता है। [परिमृशन्] ऐसी द्रव्यरूप पर्यायरूप वस्तुको अनुभवता हुआ स्याद्वादी ऐसा नाम प्राप्त करता है ॥५-२५१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ।६-२५२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो पर्यायमात्रको वस्तुरूप मानता है, इसलिए ज्ञेयको जानते हुए ज्ञेयाकार परिणमी है जो ज्ञानकी पर्याय उसका, ज्ञेयके अस्तित्वपनेसे अस्तित्वपना मानता है, ज्ञेयसे भिन्न निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तुको नहीं मानता है। इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्यके अस्तित्वसे ज्ञानका अस्तित्व है, ज्ञानके अस्तित्वसे ज्ञानका अस्तित्व नहीं है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार कि ज्ञानवस्तुका अपने अस्तित्वसे अस्तित्व है। उसके भेद चार हैं—ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति, स्वक्षेत्रपने अस्ति, स्वकालपने अस्ति, स्वभावपने अस्ति। परद्रव्यपने नास्ति, परक्षेत्रपने नास्ति, परकालपने नास्ति, परभावपने नास्ति। उनका लक्षण—स्वद्रव्य–निर्विकल्प मात्र वस्तु, स्वक्षेत्र–आधारमात्र वस्तुका प्रदेश, स्वकाल–वस्तुमात्रकी मूल अवस्था, स्वभाव–वस्तुकी मूलकी सहज शक्ति।

पर द्रव्य—सविकल्प भेद-कल्पना, परक्षेत्र—जो वस्तुका आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तु-मात्ररूपसे कहा था वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पनासे परप्रदेश बुद्धिगोचररूपसे कहा जाता है। परकाल—द्रव्यकी मूलकी निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना-से परकाल कहलाता है। परभाव—द्रव्यकी सहज शक्तिके पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे परभाव कहा जाता है। "पशुः नश्यति" एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूपको नहीं साध सकता है। कैसा है? "परितः शून्यः" सर्व प्रकार तत्त्वज्ञानसे शून्य है। किस कारण से? "स्वद्रव्यानवलोकनेन" [स्वद्रव्य] निर्विकल्प वस्तुमात्रके [**अनवलोकनेन**] नहीं प्रतीति करनेके कारण। और कैसा है? "प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः" [प्रत्यक्ष] असहायरूपसे [आलिखित] लिखे हुएके समान [स्फुट] जैसेका तैसा [स्थिर] अमिट जो [परद्रव्य] ज्ञेयाकार ज्ञानका परिणाम उससे माना जो [अस्तिता] अस्तित्व उससे [वञ्चितः] ठगा गया है ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। "तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति" [तु] एकांत-वादी कहता है उस प्रकार नहीं है [स्याद्वादी] सम्यग्दृष्टि जीव [पूर्णो भवन्] पूर्ण होता हुआ [जीवति] ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा साध सकता है—अनुभव कर सकता है। किसके द्वारा? "स्वद्रव्यास्तितया" [स्वद्रव्य] निर्विकल्प ज्ञानशक्तिमात्र वस्तु उसके [अस्तितया] अस्तित्वपनेके द्वारा। क्या करके? "निपुणं निरूप्य" ज्ञानमात्र जीववस्तुका अपने अस्तित्वसे किया है अनुभव जिसने ऐसा होकर। किसके द्वारा? "विशुद्धबोधमहसा" [विशुद्ध] निर्मल जो [बोध] भेदज्ञान उसके [महसा] प्रतापके द्वारा। कैसा है? "सद्यः समुन्मज्जता" उसी कालमें प्रगट होता है ॥६-२५२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥७-२५३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है, इसलिए समस्त ज्ञेय वस्तु ज्ञानमें गर्भित मानता है। ऐसा कहता है—उष्णको जानता हुआ ज्ञान उष्ण है, शीतल-को जानता हुआ ज्ञान शीतल है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेयका

ज्ञायकमात्र तो है, परन्तु ज्ञेयका गुण ज्ञेयमें है, ज्ञानमें ज्ञेयका गुण नहीं है। यही कहते हैं–"किल पशुः विश्राम्यति" [किल] अवश्य कर [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [विश्राम्यति] वस्तु स्वरूपको साधनेके लिए असमर्थ होता हुआ अत्यन्त खेदखिन्न होता है। किस कारणसे ? "परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः" [परद्रव्येषु] ज्ञेयको जानते हुए ज्ञेयकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान, ऐसी जो ज्ञानकी पर्याय, उसमें [स्वद्रव्य] निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होनेकी [भ्रमतः] होती है भ्रांति। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार उष्णको जानते हुए उष्णकी आकृतिरूप ज्ञान परिणमता है ऐसा देख कर ज्ञानका उष्णस्वभाव मानता है मिथ्यादृष्टि जीव। कैसा होता हुआ ? "दुर्वासनावासितः" [दुर्वासना] अनादिका मिथ्यात्व संस्कार उससे [वासितः] हुआ है स्वभावसे भ्रष्ट ऐसा। ऐसा क्यों है ? "सर्वद्रव्यमयं पुरुषं प्रपद्य" [सर्वद्रव्य] जितने समस्त द्रव्य हैं उनका जो द्रव्यपना [मयं] उस मय जीव है अर्थात् उतने समस्त स्वभाव जीवमें हैं ऐसा [पुरुषं] जीव वस्तुको [प्रपद्य] प्रतीतिरूप मान कर। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव मानता है। "तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव" [तु] एकान्तवादी मानता है वैसा नहीं है, स्याद्वादी मानता है वैसा है। यथा–[स्याद्वादी] अनेकान्तवादी [स्वद्रव्यं आश्रयेत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा साध सकता है–अनुभव कर सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव [एव] ऐसा ही है। कैसा है स्याद्वादी ? "समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्" [समस्तवस्तुषु] ज्ञानमें प्रतिबिम्बित हुआ है समस्त ज्ञेयका स्वरूप, उसमें [परद्रव्यात्मना] अनुभवता है ज्ञानवस्तुसे भिन्नपना, उसके कारण [नास्तितां जानन्] नास्तिपना अनुभवता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त ज्ञेय ज्ञानमें उद्दीपित होता है परन्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं हुआ है। कैसा है स्याद्वादी ? "निर्मलशुद्धबोधमहिमा" [निर्मल] मिथ्यादोषसे रहित तथा [शुद्ध] रागादि अशुद्ध परिणतिसे रहित ऐसा जो [बोध] अनुभवज्ञान उससे है [महिमा] प्रताप जिसका ऐसा है ॥७-२५३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः ।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ।८-२५४।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि जो वस्तुको पर्यायरूप मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है, इसलिए जितना समस्त वस्तुका है आधारभूत प्रदेशपुञ्ज, उसको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान। इसका नाम परक्षेत्र है। उस क्षेत्रको ज्ञानका क्षेत्र मानता है। एकांतवादी मिथ्यादृष्टि जीव उस क्षेत्रसे सर्वथा भिन्न है चैतन्य प्रदेशमात्र ज्ञानका क्षेत्र, उसे नहीं मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि ज्ञान वस्तु परक्षेत्रको जानती है परन्तु अपने क्षेत्ररूप है। परका क्षेत्र ज्ञानका क्षेत्र नहीं है। वही कहते हैं—"पशुः सीदति एव" [**पशुः**] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [**सीदति**] ओलोंके समान गलता है। ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा नहीं साध सकता है। [**एव**] निश्चयसे ऐसा ही है। कैसा है एकान्तवादी ? "भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः" [**भिन्नक्षेत्र**] अपने चैतन्य प्रदेशसे अन्य है जो समस्त द्रव्योंका प्रदेशपुञ्ज उससे [**निषण्ण**] उसकी आकृतिरूप परिणमा है ऐसा जो [**बोध्यनियतव्यापार**] ज्ञेय-ज्ञायकका अवश्य सम्बन्ध, उसमें [**निष्ठः**] निष्ठ है अर्थात् एतावन्मात्रको जानता है ज्ञानका क्षेत्र, ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। "सदा" अनादि कालसे ऐसा ही है। और कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव ? "अभितः बहिः पतन्तं पुमांसं पश्यन्" [**अभितः**] मूलसे लेकर [**बहिः पतन्तं**] परक्षेत्ररूप परिणमा है ऐसे [**पुमांसं**] जीववस्तुको [**पश्यन्**] मानता है—अनुभवता है, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। "पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति" [**पुनः**] एकान्तवादी जैसा कहता है वैसा नहीं है किन्तु [**स्याद्वादवेदी**] अनेकान्तवादी [**तिष्ठति**] जैसा मानता है वैसी वस्तु है। भावार्थ इस प्रकार है कि वह वस्तुको साध सकता है। कैसा है स्याद्वादी ? "स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः" [**स्वक्षेत्र**] समस्त परद्रव्यसे भिन्न अपने स्वरूप चैतन्यप्रदेश उसकी [**अस्तितया**] सत्तारूपसे [**निरुद्धरभसः**] परिणमा है ज्ञानका सर्वस्व जिसका, ऐसा है स्याद्वादी। और कैसा है ? "आत्मनिखातबोध्यनियत व्यापारशक्तिः भवन्" [**आत्म**] ज्ञानवस्तुमें [**निखात**] ज्ञेय प्रतिबिम्बरूप है जो ऐसा [**बोध्यनियतव्यापार**] ज्ञेय-ज्ञायकरूप अवश्य सम्बन्ध, ऐसा [**शक्तिः**] जाना है ज्ञानवस्तुका सहज जिसने ऐसा [**भवन्**] होता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीव वस्तु परक्षेत्रको जानता है ऐसा सहज है। परन्तु अपने प्रदेशोंमें है पराये प्रदेशों में नहीं है ऐसा मानता है स्याद्वादी जीव, इसलिए वस्तुको साध सकता है—अनुभव कर सकता है ॥८-२५४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥६-२५५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव ऐसा है कि वस्तुको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है, इसलिए ज्ञेय वस्तुके प्रदेशोंको जानता हुआ ज्ञानको अशुद्धपना मानता है । ज्ञानका ऐसा ही स्वभाव है–वह ज्ञानकी पर्याय है ऐसा नहीं मानता है । उसके प्रति उत्तर ऐसा कि ज्ञान वस्तु अपने प्रदेशोंमें है, ज्ञेयके प्रदेशोंको जानती है ऐसा स्वभाव है, अशुद्धपना नहीं है ऐसा मानता है स्याद्वादी । यही कहते हैं—"पशुः प्रणश्यति" [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [प्रणश्यति] वस्तुमात्र साधनेसे भ्रष्ट है–अनुभव करनेसे भ्रष्ट है। कैसा होकर भ्रष्ट है ? "तुच्छीभूय" तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर । और कैसा है ? "अर्थैः सह चिदाकारान् वमन्" [अर्थैः सह] ज्ञानगोचर हैं जो ज्ञेयके प्रदेश उनके साथ [चिदाकारान्] ज्ञानकी शक्तिको अथवा ज्ञानके प्रदेशोंको [वमन्] मूलसे वमन किया है अर्थात् उनका नास्तिपना जाना है जिसने ऐसा है । और कैसा है ? "पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्" [पृथग्विधि] पर्यायरूप जो [परक्षेत्र] ज्ञेय वस्तुके प्रदेशोंको जानते हुए होती है उनकी आकृतिरूप ज्ञानकी परिणति उसरूप [स्थित] परिणमती जो [अर्थ] ज्ञानवस्तु उसको [उज्झनात्] ऐसा ज्ञान अशुद्ध है ऐसी बुद्धि कर त्याग करता हुआ, ऐसा है एकान्तवादी । किसके निमित्त ज्ञेय परिणति ज्ञानको हेय करती है ? "स्वक्षेत्रस्थितये" [स्वक्षेत्र] ज्ञानके चैतन्य प्रदेशकी [स्थितये] स्थिरताके निमित्त । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु ज्ञेयके प्रदेशोंके जानपनासे रहित होवे तो शुद्ध होवे ऐसा मानता है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव । उसके प्रति स्याद्वादी कहता है—"तु स्याद्वादी तुच्छतां न अनुभवति" [तु] एकान्तवादी मानता है वैसा नहीं है, स्याद्वादी मानता है वैसा है । [स्याद्वादी] अनेकान्तदृष्टि जीव [तुच्छतां] ज्ञानवस्तु ज्ञेयके क्षेत्रको जानती है, अपने प्रदेशोंमें सर्वथा शून्य है ऐसा [न अनुभवति] नहीं मानता है । ज्ञानवस्तु ज्ञेयके क्षेत्रको जानती है, ज्ञेय क्षेत्ररूप नहीं है ऐसा मानता है । कैसा है स्याद्वादी ? "त्यक्तार्थः अपि" ज्ञेय क्षेत्रकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान ऐसा

मानता है तो भी ज्ञान अपने क्षेत्ररूप है ऐसा मानता है। और कैसा है स्याद्वादी ? "स्वधामनि वसन्" ज्ञान वस्तु अपने प्रदेशोंमें है ऐसा अनुभवता है। और कैसा है ? "परक्षेत्रे नास्तितां विदन्" [**परक्षेत्रे**] ज्ञेय वस्तुकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान उसमें [**नास्तितां विदन्**] नास्तिपना मानता है अर्थात् जानता है तो जानो तथापि एतावन्मात्र ज्ञानका क्षेत्र नहीं है ऐसा मानता है स्याद्वादी। और कैसा है ? "परात् आकारकर्षी" परक्षेत्रकी आकृतिरूप परिणमी है ज्ञानकी पर्याय, उससे भिन्न रूपसे ज्ञानवस्तुके प्रदेशोंका अनुभव करनेमें समर्थ है, इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूपका साधक, एकान्तपना वस्तुस्वरूपका घातक। इस कारण स्याद्वाद उपादेय है ॥९-२५५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥१०-२५६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है। तिस कारण ज्ञेय वस्तुके अतीत अनागत वर्तमान कालसम्बन्धी अनेक अवस्थाभेद हैं, उनको जानते हुए ज्ञानके पर्यायरूप अनेक अवस्था भेद होते हैं। उनमें ज्ञेयसम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। उस अवस्थाभेदके विनाश होनेपर उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञानपर्यायका अवस्थाभेद भी विनशता है। उसके–अवस्थाभेदके विनाश होनेपर एकान्तवादी मूलसे ज्ञान वस्तुका विनाश मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु अवस्थाभेदद्वारा विनशती है, द्रव्यरूपसे विचारनेपर अपना जानपनारूप अवस्थाद्वारा शाश्वत है, न उपजती है न विनशती है ऐसा समाधान स्याद्वादी करता है। यही कहते हैं—'पशुः सीदति एव" [**पशुः**] एकान्तवादी [**सीदति**] वस्तुके स्वरूपको साधनेके लिए भ्रष्ट है। [**एव**] अवश्य ऐसा है। कैसा है एकान्तवादी ? "अत्यन्ततुच्छः" वस्तुके अस्तित्वके ज्ञानसे अति ही शून्य है। और कैसा है ? "न किञ्चन अपि कलयन्" [**न किञ्चन**] ज्ञेय अवस्थाका जानपनामात्र ज्ञान है, उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है [**अपि**] अंशमात्र भी नहीं है। [**कलयन्**]

ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है । और कैसा है ? "पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्" [पूर्व] किसी पहले अवसरमें [आलम्बित] जानकर उसकी आकृतिरूप हुई जो [बोध्य] ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय उसके [नाशसमये] विनाशसम्बन्धी किसी अन्य अवसरमें [ज्ञानस्य] ज्ञानमात्र जीववस्तुका [नाशं विदन्] नाश मानता है । ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव । उसको स्याद्वादी सम्बोधन करता है—"पुनः स्याद्वादवेदी पूर्णः तिष्ठति" [पुनः] एकान्तदृष्टि जिस प्रकार कहता है उस प्रकार नहीं है, स्याद्वादी जिस प्रकार मानता है उस प्रकार है – [स्याद्वादवेदी] अनेकान्त अनुभवशील जीव [पूर्णः तिष्ठति] त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा अनुभव करता हुआ उस पर दृढ़ है । कैसा दृढ़ है ? "बाह्यवस्तुषु मुहुः भूत्वा विनश्यत्सु अपि" [बाह्यवस्तुषु] समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमे ज्ञानपर्यायके अनेक भेद सो वे [मुहुः भूत्वा] अनेक पर्यायरूप होते हैं [विनश्यत्सु अपि] अनेक बार विनाशको प्राप्त होते हैं तो भी दृढ़ रहता है । और कैसा है ? "अस्य निजकालतः अस्तित्वं कलयन्" [अस्य] ज्ञानमात्र जीववस्तुका [निजकालतः] त्रिकाल शाश्वत ज्ञानमात्र अवस्थासे [अस्तित्वं कलयन्] वस्तुपना अथवा अस्तिपना अनुभवता है स्याद्वादी जीव ॥१०-२५६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ॥११-२५७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है, इसलिए ज्ञेयकी अनेक अवस्थाओंको जानता है ज्ञान । उनको जानता हुआ उन आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान । ये समस्त हैं ज्ञानकी पर्याय, उन पर्यायोंको ज्ञानका अस्तित्व मानता है मिथ्यादृष्टि जीव । उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञेयकी आकृतिरूप परिणमती हुई जितनी ज्ञानकी पर्याय हैं उनसे ज्ञानका अस्तित्व नहीं है ऐसा कहते हैं—"पशुः नश्यति" [पशुः] एकान्तवादी [नश्यति] वस्तुस्वरूपको साधनेसे भ्रष्ट है । कैसा है एकान्तवादी ? "ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्" [ज्ञेय] समस्त द्रव्यरूप

[आलम्बन] ज्ञेयके अवसर ज्ञानकी सत्ता ऐसा निश्चयरूप [लालसेन] है अभिप्राय जिसका ऐसे [मनसा] मनसे [बहिः भ्राम्यन्] स्वरूपसे बाहर उत्पन्न हुआ है भ्रम जिसको ऐसा है। और कैसा है ? "अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्वं कलयन् एव" [अर्थ] जीवादि समस्त ज्ञेय वस्तुको [आलम्बन] जानते [काले] समय ही [ज्ञानस्य] ज्ञान-मात्र वस्तुकी [सत्त्वं] सत्ता है [कलयन्] ऐसा अनुभव करता है। [एव] ऐसा ही है। उसके प्रति स्याद्वादी वस्तुकी सिद्धि करता है—"पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति" [पुनः] एकान्तवादी जैसा मानता है वैसा नहीं है, जैसा स्याद्वादी मानता है वैसा है। [स्याद्वादवेदी] अनेकान्तवादी [तिष्ठति] वस्तुस्वरूप साधनेके लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी ? अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्" [अस्य] ज्ञानमात्र जीव वस्तुका [परकालतः] ज्ञेयावस्थाके जानपने से [नास्तित्वं] नास्तिपना है ऐसी [कलयन्] प्रतीति करता है। स्याद्वादी। और कैसा है ? "आत्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्" [आत्म] ज्ञानमात्र जीववस्तुमें [निखात] अनादिसे एक वस्तुरूप [नित्य] अविनश्वर [सहज] उपाय विना द्रव्यके स्वभावरूप ऐसी जो [ज्ञान] जानपनारूप शक्ति तद्रूप [एकपुञ्जीभवन्] मैं जीव वस्तु हूँ, अविनश्वर ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा अनुभव करता हुआ। ऐसा है स्याद्वादी ॥११-२५७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः ।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाश मेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥१२-२५८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्या-दृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है, इसलिए जितनी समस्त ज्ञेय वस्तुओंके जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव उनको जानना है ज्ञान। जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है। इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ताको मानता है। उनसे भिन्न है अपनी शक्तिकी सत्तामात्र उसे नहीं मानता है। ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञान मात्र जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है ऐसा सहज है। परन्तु

अपनी ज्ञानशक्तिसे अस्तिरूप है ऐसा कहते हैं—"पशुः नश्यति एव" [पशुः] एकान्तवादी [नश्यति] वस्तुकी सत्ताको साधनेसे भ्रष्ट है। [एव] निश्चयसे। कैसा है एकान्तवादी ? "बहिः वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः" [बहिः वस्तुषु] समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमी है ज्ञानकी पर्याय, उसमें [नित्यं विश्रान्तः] सदा विश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्रको जानता है ज्ञानवस्तु, ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है। किस कारणसे ऐसा है ? "परभावभावकलनात्" [परभाव] ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय उसमें [भावकलनात्] अवधार किया है ज्ञानवस्तुका अस्तिपना ऐसे झूठे अभिप्रायके कारण। और कैसा है एकांतवादी ? "स्वभावमहिमनि एकान्तनिश्चेतनः" [स्वभाव] जीवकी ज्ञानमात्र निजशक्तिके [महिमनि] अनादिनिधन शाश्वत प्रतापमें [**एकांतनिश्चेतनः**] एकान्तनिश्चेतन है अर्थात् उससे सर्वथा शून्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वरूपसत्ताको नहीं मानता है ऐसा है एकान्तवादी, उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है—"तु स्याद्वादी नाशं न एति" [तु] एकान्तवादी मानता है उस प्रकार नहीं है, स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है। [**स्याद्वादी**] अनेकान्तवादी [**नाशं**] विनाशको [**न एति**] नहीं प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र वस्तुकी सत्ताको साध सकता है। कैसा है अनेकान्तवादी जीव ? "सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः" [**सहज**] स्वभाव शक्तिमात्र ऐसा जो अस्तित्व उस सम्बन्धी [**स्पष्टीकृत**] दृढ़ किया है [**प्रत्ययः**] अनुभव जिसने ऐसा है। और कैसा है ? "सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्" [**सर्वस्मात्**] जितने हैं [**नियतस्वभाव**] अपनी अपनी शक्ति विराजमान ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ उनकी [**भवन**] सत्ताकी आकृतिरूप परिणमी है ऐसी [**ज्ञानात्**] जीवके ज्ञानगुणकी पर्याय, उनसे [**विभक्तः भवन्**] भिन्न है ज्ञानमात्रसत्ता ऐसा अनुभव करता हुआ ॥१२-२५८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ॥१३-२५९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है। इसलिए जितनी

हैं ज्ञेय वस्तु, उनकी अनन्त हैं शक्ति, उनको जानता है ज्ञान; जानता हुआ ज्ञेयकी शक्ति-की आकृतिरूप परिणमता है, ऐसा देखकर जितनी ज्ञेयकी शक्ति उतनी ज्ञानवस्तु ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकांतवादी। उसके प्रति ऐसा समाधान करता है स्याद्वादी कि ज्ञानमात्र जीववस्तुका ऐसा स्वभाव है कि समस्त ज्ञेयकी शक्तिको जाने, जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है। परन्तु ज्ञेयकी शक्ति ज्ञेयमें है, ज्ञानवस्तुमें नहीं है। ज्ञानकी जाननेरूप पर्याय है, इसलिए ज्ञानवस्तुकी सत्ता भिन्न है ऐसा कहते हैं—"पशुः स्वैरं क्रीडति" [**पशुः**] मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी [**स्वैरं क्रीडति**] हेय उपादेय ज्ञानसे रहित होकर स्वेच्छाचाररूप प्रवर्तता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयकी शक्तिको ज्ञानसे भिन्न नहीं मानता है। जितनी ज्ञेयकी शक्ति है उसे ज्ञानमें मानकर नाना शक्ति-रूप ज्ञान है, ज्ञेय है ही नहीं ऐसी बुद्धिरूप प्रवर्तता है। कैसा है एकान्तवादी ? "शुद्ध-स्वभावच्युत:" [**शुद्धस्वभाव**] ज्ञानमात्र जीववस्तुसे [**च्युतः**] च्युत है अर्थात् उसको विपरीतरूप अनुभवता है। विपरीतपना क्यों है ? "सर्वभावभवनं आत्मनि अध्यास्य" [**सर्व**] जितनी जीवादि पदार्थरूप ज्ञेय वस्तु उनके [**भाव**] शक्तिरूप गुण पर्याय अंश-भेद उनकी [**भवनं**] सत्ताको [**आत्मनि**] ज्ञानमात्र जीव वस्तुमें [**अध्यास्य**] प्रतीति कर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगोचर है समस्त द्रव्यकी शक्ति। उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, इसलिए सर्व शक्ति ज्ञानकी है ऐसा मानता है। ज्ञेयकी तथा ज्ञानकी भिन्न सत्ता नहीं मानता है। और कैसा है ? "सर्वत्र अपि अनिवारितः गतभय:" [**सर्वत्र**] स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द ऐसा इन्द्रियविषय तथा मन वचन काय तथा नाना प्रकार ज्ञेयकी शक्ति, इनमें [**अपि**] अवश्य कर [**अनिवारितः**] मैं शरीर, मैं मन, मैं वचन, मैं काय, मैं स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द इत्यादि परभावको अपना जानकर प्रवर्तता है; [**गतभयः**] मिथ्यादृष्टिके कोई भाव परभाव नहीं है जिससे डर होवे; ऐसा है एकान्त-वादी। उसके प्रति समाधान करता है स्याद्वादी—"तु स्याद्वादी विशुद्ध एव लसति" [**तु**] जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी मानता है उस प्रकार नहीं है, जिस प्रकार स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है—[**स्याद्वादी**] अनेकान्तवादी जीव [**विशुद्ध एव लसति**] मिथ्यात्वसे रहित होकर प्रवर्तता है। कैसा है स्याद्वादी ? "स्वस्य स्वभावं भरात् आरूढ:" [**स्वस्य स्वभावं**] ज्ञानवस्तुकी जानपनामात्र शक्ति उनकी [**भरात् आरूढः**] अति ही प्रगाढ़रूपसे प्रतीति करता है। और कैसा है ? "परभावभावविरहव्यालोक-निःकम्पित:" [**परभाव**] समस्त ज्ञेयकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान,

इस रूप [भाव] मानता है जो ज्ञान वस्तुका परिणाम, तथा [विमल] विपरीत बुद्धिके त्यागसे हुई है [व्यालोक] सांची दृष्टि, उससे हुआ है [निःकम्पितः] साक्षात् अमिट अनुभव जिसको ऐसा है स्याद्वादी ॥१३-२५९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति ।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥१४-२६०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है, इसलिए अखण्ड धारा-प्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान, उसका होता है प्रति समय उत्पाद-व्यय । इसलिए पर्यायका विनाश होने पर जीवद्रव्यका विनाश मानता है । उसके प्रति स्याद्वादी ऐसा समाधान करता है कि पर्यायरूपसे देखनेपर जीव वस्तु उपजती है विनष्ट होती है, द्रव्यरूपसे देखनेपर जीव सदा शाश्वत है । ऐसा कहते हैं—"पशुः नश्यति" [पशुः] एकांतवादी जीव [नश्यति] शुद्ध जीववस्तुको साधनेसे भ्रष्ट है । कैसा है एकान्तवादी "प्रायः क्षण-भंगसंगपतितः" [प्रायः] एकांतरूपसे [क्षणभंग] प्रति समय होनेवाले पर्यायमें विनाश-से [संगपतितः] उस पर्यायके साथ-साथ वस्तुका विनाश मानता है । किस कारणसे ? "प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्" [प्रादुर्भाव] उत्पाद [विराम] विनाशसे [मुद्रित] संयुक्त [वहत्] प्रवाहरूप जो [ज्ञानांश] ज्ञान गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद उनके कारण हुए [नानात्मना] अनेक अवस्थाभेदके [निर्ज्ञानात्] ज्ञानपनेके कारण । ऐसा है एकान्तवादी, उसके प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधता है—"तु स्याद्वादी जीवति" [तु] जिस प्रकार एकांतवादी कहता है उस प्रकार एकान्तपना नहीं है । [स्याद्वादी] अनेकांतवादी [जीवति] वस्तुको साधनेके लिए समर्थ है । कैसा है स्याद्वादी ? "चिद्वस्तु नित्योदितं परिमृशन्" [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [नित्योदितं] सर्व काल शाश्वत ऐसा [परिमृशन्] प्रत्यक्षरूपसे आस्वादरूप अनुभवता हुआ । किस रूपसे ? "चिदात्मना" ज्ञानस्वरूप है जीववस्तु उसरूपसे । और कैसा है स्याद्वादी ? "टङ्कोत्कीर्ण-घनस्वभावमहिमज्ञानं भवन्" [टङ्कोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप ऐसे [घनस्वभाव] अमिट

किस कारणसे ? "वृत्तिक्रमात्" [वृत्ति] पर्यायके [क्रमात्] कोई पर्याय होती है कोई पर्याय नाशको प्राप्त होती है ऐसे भावके कारण । भावार्थ इस प्रकार है कि पर्यायद्वारा जीव वस्तु अनित्य है ऐसा अनुभवता है स्याद्वादी ॥१५-२६१॥

(अनुष्टुप्)

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन् ।

आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥१६-२६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव" [**इति**] पूर्वोक्त प्रकारसे [**अनेकान्तः**] स्याद्वाद [**स्वयं**] अपने प्रतापसे बलात्कार ही [**अनुभूयते**] अङ्गीकाररूप होता है, [**एव**] अवश्यकर । किनको अङ्गीकार होता है ? "अज्ञानविमूढानां" [**अज्ञान**] पूर्वोक्त एकान्तवादमें [**विमूढानां**] मग्न हुए हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव उनको । भावार्थ इस प्रकार है कि स्याद्वाद ऐसा प्रमाण है जिसे सुनते मात्र ही एकान्तवादी भी अङ्गीकार करते हैं । कैसा है स्याद्वाद ? "आत्मतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्" [**आत्मतत्त्वं**] जीवद्रव्यको [**ज्ञानमात्रं**] चेतना सर्वस्व [**प्रसाधयन्**] ऐसा प्रमाण करता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा स्याद्वाद साध सकता है, एकान्तवादी नहीं साध सकता ॥१६-२६२॥

(अनुष्टुप्)

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम् ।

अलंघ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७-२६३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं अनेकान्तः व्यवस्थितः" [**एवं**] इतना कहनेसे [**अनेकान्तः**] स्याद्वादको [**व्यवस्थितः**] कहनेका आरम्भ किया था सो पूर्ण हुआ । कैसा है अनेकान्त ? "स्वं स्वयं व्यवस्थापयन्" [**स्वं**] अनेकांतपनेको [**स्वयं**] अनेकांतपनेके द्वारा [**व्यवस्थापयन्**] बलजोरीसे प्रमाण करता हुआ । किसके साथ ? "तत्त्वव्यवस्थित्या" जीवके स्वरूपको साधनेके साथ । कैसा है अनेकान्त ? "जैनं" सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत है । और कैसा है ? "अलंघ्यशासनं" अमिट है उपदेश जिसका ऐसा है ॥१७-२६३॥



साध्य-साधक-अधिकार

(वसन्ततिलका)

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥१-२६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह तत् चिद् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति" [इह] विद्यमान [तत्] पूर्वोक्त [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य [द्रव्यपर्ययमयं अस्ति] द्रव्य-गुण-पर्यायरूप है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीव द्रव्यका द्रव्यपना कहा । कैसा है जीव द्रव्य ? "एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं" [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [क्रम] पहला विनशे तो अगला उपजे [अक्रम] विशेषणरूप है परन्तु न उपजे न विनशे, इसरूप है [विवर्ति] अंशरूप भेदपद्धति उससे [विवर्त] प्रवर्त रहा है [चित्रं] परम अचम्भा जिसमें ऐसा है । भावार्थ इस प्रकार है कि क्रमवर्ती पर्याय अक्रमवर्ती गुण इस प्रकार गुण–पर्यायमय है जीववस्तु । और कैसा है ? "यः भावः [illegible] अपि ज्ञानमात्रमयतां न जहाति" [यः भावः] [illegible] [इत्यादि] [illegible] गुण पर्याय इत्यादिसे लेकर [अनेकनिजशक्ति] [illegible] सूक्ष्मत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व सप्रदेशत्व [illegible] सामर्थ्य उससे [सुनिर्भरः] [illegible] [अपि] [illegible] [ज्ञानमात्रमयतां न जहाति] ज्ञानमात्र [illegible] इस प्रकार है कि जो गुण है अथवा पर्याय है [illegible] प्रमाण है । भावार्थ इस प्रकार है कि [illegible] कहेगा । उपाय–जीव वस्तुकी प्राप्ति [illegible] स्वरूप [illegible]

(वसन्ततिलका)

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ॥२-२६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सन्तः इति ज्ञानीभवन्ति" [सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीव [इति] इस प्रकार [ज्ञानीभवन्ति] अनादि कालसे कर्मबन्ध संयुक्त थे साम्प्रत सकल कर्मोंका विनाश कर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। कैसे हैं सन्त ? "जिननीतिं अलंघयन्तः" [जिन] केवलीका [नीति] कहा हुआ जो मार्ग [अलंघयन्तः] उसी मार्ग पर चलते हैं, उस मार्गको उल्लंघन कर अन्य मार्ग पर नहीं चलते हैं। कैसा करके ? "अधिकां स्याद्वादशुद्धिं अधिगम्य" [अधिकां] प्रमाण है ऐसा जो [स्याद्वादशुद्धिं] अनेकान्तरूप वस्तुका उपदेश उससे हुआ है ज्ञानका निर्मलपना उसकी [अधिगम्य] सहायता पाकर। कैसे हैं सन्त ? "वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिं स्वयं एव प्रविलोकयन्तः [वस्तु] जीवद्रव्यका [तत्त्व] जैसा है स्वरूप उसके [व्यवस्थितिं] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूपको [स्वयं एव प्रविलोकयन्तः] साक्षात् प्रत्यक्षरूपसे देखते हैं। कैसे नेत्रसे देखते हैं ? "नैकांतसंगतदृशा" [नैकांत] स्याद्वादसे [संगत] मिले हुए [दृशा] लोचनसे ॥२-२६५॥

(वसन्ततिलका)

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवंति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ॥३-२६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते सिद्धाः भवन्ति" [ते] ऐसे हैं जो जीव वे [सिद्धाः भवन्ति] सकल कर्मकलंकसे रहित मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। कैसे होकर ? "साधकत्वं अधिगम्य" शुद्ध जीवका अनुभवगर्भित है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारण रत्नत्रय, उसरूप परिणमा है आत्मा ऐसा होकर। और कैसे हैं वे ? "ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयन्ति" [ये] जो कोई [ज्ञानमात्र] चेतना है सर्वस्व जिसका ऐसे [निजभाव] जीवद्रव्यके अनुभवरूप [मयीं] कोई विकल्प नहीं है जिसमें ऐसी [भूमिं] मोक्षकी

कारणरूप अवस्थाको [**श्रयन्ति**] प्राप्त होते हैं–एकाग्र होकर उस भूमिरूप परिणमते हैं। कैसी है भूमि ? "अकम्पां" निर्द्वन्द्वरूप सुख गर्भित है। कैसे हैं वे जीव ? "कथं अपि अपनीतमोहाः" [**कथं अपि**] अनन्त काल भ्रमण करते हुए काललब्धिको पाकर [**अपनीत**] मिटा है [**मोहाः**] मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम जिनका ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसा जीव मोक्षका साधक होता है "तु मूढाः अमूं अनुपलभ्य परिभ्रमन्ति" [**तु**] कहे हुए अर्थको दृढ़ करते हैं—[**मूढाः**] नहीं है जीववस्तुका अनुभव जिनको ऐसे जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे [**अमूं**] शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवरूप अवस्थाको [**अनुपलभ्य**] पाये विना [**परिभ्रमन्ति**] चतुर्गति संसारमें रुलते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीव स्वरूपका अनुभव मोक्षका मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं है ॥३-२६६॥

(वसन्ततिलका)

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥४-२६७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसी अनुभव भूमिकाको कैसा जीव योग्य है ऐसा कहते हैं—"सः एकः इमां भूमिं श्रयति" [**सः**] ऐसा [**एकः**] वही एक जातिका जीव [**इमां भूमिं**] प्रत्यक्ष शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप अवस्थाके [**श्रयति**] [illegible] योग्य है, अर्थात् ऐसी अवस्थारूप परिणमनेका पात्र है। कैसा है वह जीव ? [illegible] भावयति" [**यः**] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [**स्वं**] [illegible] [**अहरहः भावयति**] निरन्तर अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनुभवता है। [illegible] ? "स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां" [**स्याद्वाद**] [illegible] का [**कौशल**] विपरीतपनासे रहित वस्तु [illegible] [**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**] समस्त रागादि अशुद्ध [illegible] और कैसा है ? "इह उपयुक्तः" [**इह**] [illegible] [**उपयुक्तः**] [illegible] काल एकाग्ररूपसे तल्लीन है। और कैसा है ? [illegible] [**ज्ञाननय**] शुद्ध जीवके स्वरूपका अनुभव [illegible] कोई क्रिया है वह सर्व मोक्षमार्गमें शून्य है [**क्रियानय**] [illegible]

त्याग प्राप्त हुए विना जो कोई शुद्ध स्वरूपका अनुभव कहता है वह समस्त झूठा है; अनुभव नहीं है, कुछ ऐसा ही अनुभवका भ्रम है, कारण कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव अशुद्ध रागादि परिणामको मेट कर होता है। ऐसा है जो ज्ञाननय तथा क्रियानय उनका है जो [**परस्परतीव्रमैत्री**] परस्पर अत्यन्त मित्रपना—शुद्ध स्वरूपका अनुभव है सो रागादि अशुद्ध परिणतिको मेट कर है, रागादि अशुद्धपरिणतिका विनाश शुद्ध स्वरूपके अनुभवको लिए हुए है, ऐसा अत्यन्त मित्रपना—उनका [**पात्रीकृतः**] पात्र हुआ है अर्थात् ज्ञाननय क्रियानयका एक स्थानक है। भावार्थ इस प्रकार है कि दोनों नयोंके अर्थसे विराजमान है ॥४-२६७॥

(वसन्ततिलका)

चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥५-२६८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तस्य एव आत्मा उदयति" [तस्य] पूर्वोक्त जीवको [एव] अवश्य कर [आत्मा] जीव पदार्थ [उदयति] सकल कर्मका विनाश कर प्रगट होता है, अनन्त चतुष्टयरूप होता है। और कैसा प्रगट होता है? "अचलार्चिः" सर्वकाल एकरूप है केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुञ्ज जिसका ऐसा है। और कैसा है? "चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः" [चित्पिण्ड] ज्ञानपुञ्जके [चण्डिम] प्रतापकी [विलासि] एकरूप परिणति ऐसा जो [विकास] प्रकाशस्वरूप उसका [हासः] निधान है। और कैसा है? "शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः" [शुद्धप्रकाश] रागादि अशुद्ध परिणतिको मेट कर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम उसकी [भर] वार वार जो शुद्धत्वरूप परिणति उससे [निर्भर] हुआ है [सुप्रभातः] साक्षात् उद्योत जिसमें ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार रात्रिसम्बन्धी अन्धकारके मिटने पर दिवस उद्योत स्वरूप प्रगट होता है उसी प्रकार मिथ्यात्व राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिको मेट कर शुद्धत्व परिणाम विराजमान जीवद्रव्य प्रगट होता है। और कैसा है? "आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपः" [आनन्द] द्रव्यके परिणामरूप अतीन्द्रिय सुखके कारण [सुस्थित] जो आकुलतासे रहितपना उससे [सदा] सर्वकाल [अस्खलित] अमिट है [एकरूपः] तद्रूप सर्वस्व जिसका ऐसा है ॥५-२६८॥

(वसन्ततिलका)

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै-
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥६-२६९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं स्वभावः परं स्फुरतु" [अयं स्वभावः] विद्यमान है जो जीव पदार्थ [परं स्फुरतु] यही एक अनुभवरूप प्रगट होओ। कैसा है? "नित्योदयः" सर्व काल एकरूप प्रगट है। और कैसा है? "इति मयि उदिते अन्यभावैः किं" [इति] पूर्वोक्त विधिसे [मयि उदिते] मैं शुद्ध जीवस्वरूप हूँ ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर [अन्यभावैः] अनेक हैं जो विकल्प उनसे [किं] कौन प्रयोजन है? कैसे हैं अन्य भाव? "बन्धमोक्षपथपातिभिः" [बन्धपथ] मोह-राग-द्वेष बन्धका कारण है, [मोक्षपथ] सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसे जो पक्ष उनमें [पातिभिः] पड़नेवाले हैं अर्थात् अपने अपने पक्षको कहते हैं, ऐसे हैं अनेक विकल्परूप। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसे विकल्प जितने काल तक होते हैं उतने काल तक शुद्ध स्वरूपका अनुभव नहीं होता। शुद्ध स्वरूपका अनुभव होने पर ऐसे विकल्प विद्यमान ही नहीं होते, विचार किसका किया जाय। कैसा हूँ मैं? "स्याद्वाददीपितलसन्महसि" [स्याद्वाद] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूपसे [दीपित] प्रगट हुआ है [लसत्] प्रत्यक्ष [महसि] ज्ञानमात्र स्वरूप जिसका। और कैसा हूँ? "प्रकाशे" सर्व काल उद्योत स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? "शुद्धस्वभावमहिमनि" [शुद्धस्वभाव] शुद्धताके कारण [महिमनि] प्रगटपना है जिसका ॥६-२६९॥

(वसन्ततिलका)

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंडयमानः ।
तस्मादखंडमनिराकृतखंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥७-२[illegible]॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तस्मात् [illegible]
कारणसे [अहं] मैं [चिन्महः अस्मि] ज्ञानमात्र [illegible]

"अखण्डं" अखण्डित प्रदेश हूँ। और कैसा हूँ ? "अनिराकृतखंडं" किसीके कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ, सहज ही अखण्डरूप हूँ। और कैसा हूं ? "एकं" समस्त विकल्पों से रहित हूं। और कैसा हूं ? "एकांतशान्तं" [एकांत] सर्वथा प्रकार [शान्तं] समस्त पर द्रव्योंसे रहित हूँ। और कैसा हूं ? "अचलं" अपने स्वरूपसे सर्व कालमें अन्यथा नहीं हूं। ऐसा चैतन्य स्वरूप मैं हूं। जिस कारणसे "अयं आत्मा नयेक्षणखण्डयमानः सद्यः प्रणश्यति" [अयं आत्मा] यह जीव वस्तु [नय] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्प वे हुए [ईक्षण] अनेक लोचन उनके द्वारा [खण्डयमानः] अनेकरूप देखा हुआ [सद्यः प्रणश्यति] खण्ड खण्ड होकर मूलसे खोज मिटा—नाशको प्राप्त होता है। इतने नय एकमें कैसे घटित होते हैं ? उत्तर इस प्रकार है—क्योंकि ऐसा है जीवद्रव्य—"चित्रात्मशक्तिसमुदायमयः" [चित्र] अनेक प्रकार अस्तिपना नास्तिपना एकपना अनेकपना ध्रुवपना अध्रुवपना इत्यादि अनेक हैं ऐसे जो [आत्मशक्ति] जीवद्रव्यके गुण उनका जो [समुदाय] द्रव्यसे अभिन्नपना [मयः] उस मय अर्थात् ऐसा है जीवद्रव्य; इसलिए एक शक्तिको कहता है एक नय, किन्तु अनन्त शक्तियाँ हैं, इस कारण एक एक नय करते हुए अनन्ता नय होते हैं। ऐसा करते हुए बहुत विकल्प उपजते हैं, जीवका अनुभव खो जाता है। इसलिए निर्विकल्प ज्ञान वस्तुमात्र अनुभव करने योग्य है ॥७-२७०॥

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि, न कालेन खंडयामि, न भावेन खंडयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि। *

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानमात्रः भावः अस्मि" [भावः अस्मि] मैं वस्तु स्वरूप हूं। और कैसा हूं ? [ज्ञानमात्रः] चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका ऐसा हूं। "एकः" समस्त भेद विकल्पोंसे रहित हूं। और कैसा हूं ? "सुविशुद्धः" द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप उपाधिसे रहित हूं। और कैसा हूं ? "द्रव्येण न खण्डयामि" जीव स्वद्रव्यरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूं। "क्षेत्रेण न खण्डयामि" जीव स्वक्षेत्ररूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूं। "कालेन न खण्डयामि" जीव स्वकालरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूं। "भावेन न खण्डयामि" जीव स्वभावरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूं। भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु स्वद्रव्य

* श्री समयसारकी आत्मख्याति टीकामें इस अंशको कलश रूप नहीं गिनकर गद्यरूप गिना गया है। अतः आत्मख्यातिमें उसको कलश रूपसे नम्बर नहीं दिया गया है।

स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावरूप चार प्रकारके भेदों द्वारा कही जाती है तथापि चार सत्ता नहीं है एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त—चार सत्ता इस प्रकारसे तो नहीं है कि जिस प्रकार एक आम्र फल चार प्रकार है। उसका विवरण—कोई अंश रस है, कोई अंश छिलका है, कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य है, कोई अंश जीवक्षेत्र है, कोई अंश जीवकाल है, कोई अंश जीवभाव है—इस प्रकार तो नहीं है। ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गलका पिण्ड है, इसलिए स्पर्शमात्रसे विचारने पर स्पर्शमात्र है, रसमात्रसे विचारने पर रसमात्र है, गन्धमात्रसे विचारने पर गन्धमात्र है, वर्णमात्रसे विचारने पर वर्णमात्र है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है, इसलिए स्वद्रव्यरूपसे विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है, स्वक्षेत्ररूपसे विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है, स्वकालरूपसे विचारने पर स्वकालमात्र है, स्वभावरूपसे विचारने पर स्वभावमात्र है। इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है वह अखण्डित है। अखण्डित शब्दका ऐसा अर्थ है।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥८-२७१॥

[परस्परसुसंहत] परस्पर मिली हुई है [प्रकटशक्ति] स्वानुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति उनका [चक्रं] समूह है जीव वस्तु। और कैसी है ? [स्फुरत्] सर्वकाल उद्योतमान है ॥९-२७२॥

(पृथ्वी)

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।१०-२७३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहो आत्मनः तत् इदं सहजं वैभवं अद्भुतं" [अहो] संबोधन वचन। [आत्मनः] जीव वस्तुकी [तत् इदं सहजं] अनेकान्त स्वरूप ऐसी [वैभवं] आत्माके गुणस्वरूप लक्ष्मी [अद्भुतं] अचम्भा उपजाती है। किस कारणसे ऐसी है ? "इतः अनेकतां गतं" [इतः] पर्यायरूप दृष्टिसे देखने पर [अनेकतां] अनेक है ऐसे भावको [गतं] प्राप्त हुई है। "इतः सदा अपि एकतां दधत्" [इतः] उसी वस्तुको द्रव्यरूपसे देखने पर [सदा अपि एकतां दधत्] सदा ही एक है ऐसी प्रतीतिको उत्पन्न करती है। और कैसी है ? "इतः क्षणविभंगुरं" [इतः] समय समय प्रति अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमती है ऐसी दृष्टिसे देखने पर [क्षणविभंगुरं] विनशती है उपजती है। "इतः सदा एव उदयात् ध्रुवं" [इतः] सर्व काल एक रूप है ऐसी दृष्टिसे देखने पर [सदा एव उदयात्] सर्व काल अविनश्वर है ऐसा विचार करने पर [ध्रुवं] शाश्वत है। "इतः" वस्तुको प्रमाणदृष्टिसे देखने पर "परमविस्तृतं" [illegible] प्रमाण है, ज्ञानसे ज्ञेयप्रमाण है। "इतः निजैः प्रदेशैः धृतं" [इतः] निज प्रमाणकी दृष्टिसे देखनेपर [निजैः प्रदेशैः] अपने प्रदेशमात्र [धृतं] [illegible]

(पृथ्वी)

महिमा ? "अद्भुतात् अद्भुतः" आश्चर्यसे आश्चर्यरूप है। वह कैसा है आश्चर्य ? "एकतः कषायकलिः स्खलति" [एकतः] विभावपरिणामशक्तिरूप विचारने पर [कषाय] मोह-राग-द्वेषका [कलिः] उपद्रव होकर [स्खलति] स्वरूपसे भ्रष्ट हो परिणमता है, ऐसा प्रगट ही है। "एकतः शान्तिः अस्ति" [एकतः] जीवके शुद्ध स्वरूपका विचार करने पर [शान्तिः अस्ति] चेतनामात्र स्वरूप है, रागादि अशुद्धपना विद्यमान ही नहीं है। और कैसा है ? "एकतः भवोपहतिः अस्ति" [एकतः] अनादि कर्मसंयोगरूप परिणमा है इस कारण [भव] संसार चतुर्गतिमें [उपहतिः] अनेक वार परिभ्रमण [अस्ति] है। "एकतः मुक्तिः स्पृशति" [एकतः] जीवके शुद्धस्वरूपका विचार करने पर [मुक्तिः स्पृशति] जीव वस्तु सर्वकाल मुक्त है ऐसा अनुभवमें आता है। और कैसा है ? "एकतः जगत्त्रितयं स्फुरति" [एकतः] जीवका स्वभाव स्वपरज्ञायक है ऐसा विचार करने पर [जगत्] समस्त ज्ञेय वस्तुकी [त्रितयं] अतीत अनागत वर्तमान कालगोचर पर्याय [स्फुरति] एक समय मात्र कालमें ज्ञानमें प्रतिविम्बरूप है। "एकतः चित् चकास्ति" [एकतः] वस्तुके स्वरूप सत्तामात्रका विचार करने पर [चित्] शुद्ध ज्ञानमात्र [चकास्ति] शोभित होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि व्यवहार मात्रसे ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है, निश्चयसे नहीं जानता है, अपना स्वरूपमात्र है, क्योंकि ज्ञेयके साथ व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है ।।११-२७४।।

(मालिनी)

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ।।१२-२७५।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एषः चिच्चमत्कारः जयति" अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीव वस्तु सर्व कालमें जयवन्त प्रवर्तो। भावार्थ इस प्रकार है कि साक्षात् उपादेय है। कैसी है ? "सहजतेजःपुञ्जमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पः" [सहजः] द्रव्यके स्वरूपभूत [तेजः पुञ्ज] केवलज्ञानमें [मज्जत्] ज्ञेयरूपसे मग्न जो [त्रिलोकी] समस्त ज्ञेय वस्तु उसके कारण [स्खलत्] उत्पन्न हुआ है [अखिलविकल्पः] अनेक प्रकार पर्यायभेद जिसमें ऐसी है ज्ञानमात्र जीववस्तु। "अपि" तो भी "एकः एव स्वरूपः" एक

ज्ञानमात्र जीववस्तु है। और कैसी है? "स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः" [स्वरस] चेतनास्वरूपकी [विसर] अनन्त शक्ति उससे [पूर्ण] समग्र है [अच्छिन्न] अनन्त काल तक शाश्वत है ऐसे [तत्त्व] जीव वस्तुस्वरूपकी [उपलम्भः] हुई है प्राप्ति जिसको ऐसी है। और कैसी है? "प्रसभनियमितार्चिः" [प्रसभ] ज्ञानावरण कर्मका विनाश होने पर प्रगट हुआ है [नियमित] जितना था उतना [अर्चिः] केवलज्ञान स्वरूप जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि परमात्मा साक्षात् निरावरण है ॥१२-२७५॥

(मालिनी)

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥१३-२७६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् अमृतचन्द्रज्योतिः उदितं" [एतत्] प्रत्यक्ष-रूपसे विद्यमान "अमृतचन्द्रज्योतिः" इस पदके दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ—[अमृत] मोक्षरूपी [चन्द्र] चन्द्रमाका [ज्योतिः] प्रकाश [उदितं] प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग ऐसे अर्थका प्रकाश हुआ। दूसरा अर्थ इस प्रकार है कि [अमृतचन्द्र] नाम है टीकाके कर्ता आचार्यका सो उनकी [ज्योतिः] बुद्धिका प्रकाशरूप [उदितं] शास्त्र सम्पूर्ण हुआ। [illegible] हैं—"निःसपत्नस्वभावं समन्तात् ज्वलतु" [निःसपत्न] [illegible] [स्वभाव] अबाधित स्वरूप [समन्तात्] सर्व काल [illegible] [ज्वलतु] [illegible] प्रताप संयुक्त प्रकाशमान होओ। कैसा है? "विमलपूर्णं" [विमल] [illegible] रूप मलसे रहित है तथा [पूर्ण] अपने गम्भीर [illegible] [ध्वस्त] [illegible] उखाड़ दी है [मोहं] भ्रान्तिको जिसने ऐसा है। [illegible] में शुद्ध जीवका स्वरूप निःसन्देहरूपने [illegible] आत्मानं अनवरतनिमग्नं धारयत्" [आत्मना] [illegible] शुद्ध जीवमें [आत्मानं] शुद्ध जीवको [अनवरतनिमग्नं धारयत्] [illegible] गोचर करता हुआ। कैसा है आत्मा? "अविचलितचिदात्मनि" [अविचलित] [illegible]

काल एकरूपजो [चित्] चेतना वही है [आत्मनि] स्वरूप जिसका ऐसा है। नाटक समयसारमें अमृतचन्द्र सूरिने कहा जो साध्य-साधक भाव सो सम्पूर्ण हुआ। नाटक समयसार शास्त्र पूर्ण हुआ। यह आशीर्वाद वचन है ॥१३-२७६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल।१४-२७७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"किल तत् किञ्चित् अखिलं क्रियायाः फलं अधुना तत् विज्ञानघनौघमग्नं खिन्ना न किञ्चित्" [किल] निश्चयसे [तत्] जिसका अवगुण कहेंगे ऐसा जो [किञ्चित् अखिलं क्रियायाः फलं] कुछ एक पर्यायार्थिक नयसे मिथ्या-दृष्टि जीवके अनादि कालसे लेकर नाना प्रकारकी भोग सामग्रीको भोगते हुए मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिके कारण कर्मका वन्ध अनादि कालसे होता था सो [अधुना] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे लेकर [तत् विज्ञानघनौघमग्नं] शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवमें समाता हुआ [खिन्ना] मिट गया सो [न किञ्चित्] मिटने पर कुछ है ही नहीं; जो था सो रहा। कैसा था क्रियाका फल ? "यस्मात् स्वपरयोः पुरा द्वैतं अभूत्" [यस्मात्] जिस क्रियाके फलके कारण [स्वपरयोः] यह आत्मस्वरूप यह परस्वरूप ऐसा [पुरा] अनादि कालसे लेकर [द्वैतं अभूत्] द्विविधापन हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष स्वचेतना परिणति जीवकी ऐसा माना। और क्रियाफलसे क्या हुआ ? "यतः अत्र अन्तरं भूतं" [यतः] जिस क्रियाफलके कारण [अत्र] शुद्ध जीववस्तुके स्वरूपमें [अन्तरं भूतं] अन्तराय हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वरूप तो अनन्त चतुष्टयरूप है। अनादिसे लेकर अनन्त काल गया, जीवने अपने स्वरूपको नहीं प्राप्त किया, चतुर्गति संसारका दुःख प्राप्त किया, सो वह भी क्रियाके फलके कारण। और क्रियाफलसे क्या हुआ ? "यतः रागद्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः जातं" [यतः] जिस क्रियाके फलसे [रागद्वेष] अशुद्ध परिणतिरूप [परिग्रहे] परिणाम हुआ। ऐसा [सति] होनेपर [क्रियाकारकैः जातं] जीव रागादि परिणामोंका कर्ता है तथा भोक्ता है इत्यादि जितने विकल्प उत्पन्न हुए उतने क्रियाके फलसे उत्पन्न हुए। और क्रियाके

फलके कारण क्या हुआ ? "यतः अनुभूतिः भुञ्जाना" [यतः] जिस क्रियाके फलके कारण [अनुभूतिः] आठ कर्मोंके उदयका स्वाद [भुञ्जाना] भोगा। भावार्थ इस प्रकार है कि आठ ही कर्मोंके उदयसे जीव अत्यन्त दुःखी है सो भी क्रियाके फलके कारण ॥१४-२७७॥

(उपजाति)

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥१५-२७८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अमृतचन्द्रसूरेः किञ्चित् कर्तव्यं न अस्ति एव" [अमृतचन्द्रसूरेः] ग्रन्थकर्ताका नाम अमृतचन्द्रसूरि है, उनका [किञ्चित्] नाटक समयसारका [कर्तव्यं] करना [न अस्ति एव] नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि नाटक समयसार ग्रन्थकी टीकाका कर्ता अमृतचन्द्र नामक आचार्य प्रगट है तथापि महान् हैं, बड़े हैं, संसारसे विरक्त हैं, इसलिए ग्रन्थ करनेका अभिमान नहीं करते हैं। कैसे हैं अमृतचन्द्रसूरि ? "स्वरूपगुप्तस्य" द्वादशांगरूप सूत्र अनादिनिधन है, किसीने किया नहीं है ऐसा जानकर अपनेको ग्रन्थका कर्तापना नहीं माना है जिन्होंने ऐसे हैं। इस प्रकार क्यों है ? कारण कि "समयस्य इयं व्याख्या शब्दैः कृता" [समयस्य] शुद्ध जीवस्वरूपकी [इयं व्याख्या] नाटक समयसार नामक ग्रन्थरूप व्याख्या [शब्दैः कृता] वचनात्मक ऐसी शब्दराशिसे की गई है। कैसी है शब्दराशि ? "स्वशक्तिसंसूचित-वस्तुतत्त्वैः" [स्वशक्ति] शब्दोंमें है अर्थको सूचित करनेकी शक्ति उससे [संसूचित] प्रकाशमान हुआ है [वस्तु] जीवादि पदार्थोंका [तत्त्वैः] [illegible] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा हेय-उपादेयरूप निश्चय [illegible] ॥१५-२७८॥





शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	८	पिवतीव	पिवतीव
३९	२४	कुम्भाभयाने	कुम्भाभिधाने
७७	२०	भरती	भरतो
१४९	१३	अनना	अनेना
१६६	४	कुटः	कुतः
१६६	५	कुटः	कुतः
१७७	१९	चैश्चित्	कंश्चित्
१८१	११	बलाद्गुद्धि	[illegible]
१८२	१४	नञ्चित्त्व	[illegible]
२०१	१४	नुः	[illegible]



हमारे प्रकाशन



१.	प्रवचनसार गुजराती	—	—	१५००
२.	पंचास्तिकाय गुजराती	—	—	१०००
३.	प्रवचनसार हिन्दी	—	—	२०००
४.	पंचास्तिकाय हिन्दी	—	—	२५००
५.	समयसार नाटक हिन्दी	—	—	३०००
६.	अष्टपाहुड़ हिन्दी	—	—	२०००
७.	अनुभवप्रकाश गुजराती	—	—	२१००
८.	परमात्मप्रकाश गुजराती	—	—	२२००
९.	आत्मावलोकन गुजराती	—	—	२२००
१०.	वृहद् द्रव्यसंग्रह हिन्दी	—	—	२०००
११.	समयसार कलश हिन्दी	—	—	२०००

